प्रकाशक
मार्तंड उपाध्याय, मंत्री
सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

तीसरी बार
नया संस्करण १९५०
मूल्य
अजिल्द . तीन रुपये
सजिल्द . साढे तीन रुपये

मुद्रक—
कृष्णप्रसाद दर
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

प्रकाशककी ओरसे

भारतको गाधीजीकी अनेक देनोमें से 'सत्याग्रह' उनकी एक विशेष देन है। इस शब्दका आविष्कार दक्षिण अफ्रीकामे हिंदुस्तानियोंके मान-मर्यादा और मानवोचित अधिकारोके लिए किये गये सग्रामके दिनोंमे हुआ था और वहीपर सबसे पहले राजनीतिके क्षेत्रमे बडे पैमानेपर इसका प्रयोग किया गया था।

दक्षिण अफ्रीकाकी इस लड़ाईको हुए यद्यपि एक युग बीत चुका है, तथापि उसके अनुभव, उसकी शिक्षा, उसके निष्कर्ष आज भी ताजे हैं। इसी पुस्तकके द्वितीय खण्डकी प्रस्तावनामें गाधीजीने लिखा है, "मै इस बातको अक्षरश सत्य मानता हूँ कि सत्यका पालन करनेवालेके सामने सपूर्ण जगतकी समृद्धि रहती है और वह ईश्वरका साक्षात्कार करता है। अहिंसाके सान्निध्यमे वैर-भाव टिक नही सकता, इस वचनको भी मै अक्षरश. सत्य मानता हू। कष्ट सहन करनेवालोके लिए कुछ भी अशक्य नही होता, इस सूत्रका मै उपासक हू। . " जीवनकी कठोरतम साधनासे उद्‌भूत ये मूल-मत्र इतने वर्षों बाद आज भी ताजे है और हमेशा ताजे रहेंगे।

दक्षिण अफ्रीकासे आनेके बाद भारतमे गाधीजीने जो लड़ाइयां लड़ी, उन्हें गहराईसे समझनेके लिए दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास जानना आवश्यक है। कारण कि जिन मूलभूत सिद्धातोपर बादकी लडाइया लडी गईं, उनका मूलसूत्र दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहमे मिलता है।

पुस्तकका अनुवाद मूल गुजरातीसे श्रीकालिकाप्रसादजीने किया है और अंग्रेजी-संस्करणके आधारपर बहुतसे परिवर्द्धन करके उसे यथा-संभव पूर्ण बनानेका प्रयत्न किया गया है।

—मंत्री

विषय-सूची

प्रथम खण्ड — १-२४०

	प्रास्ताविक	३
१.	भूगोल	६
२	इतिहास	१५
३.	दक्षिण अफ्रीकामें भारतीयोका आगमन	३२
४.	मुसीबतोका सिंहावलोकन—१	३८
५	मुसीबतोंका सिंहावलोकन—२	४५
६	भारतीयोंने क्या किया ?—१	५३
७.	भारतीयोने क्या किया ?—२	६६
८	भारतीयोंने क्या किया ?—३	८६
९.	बोअर-युद्ध	८९
१०	लड़ाईके बाद	१०४
११	भलमनसीका बदला—खूनी कानून	१२५
१२.	सत्याग्रहका जन्म	१३३
१३.	'सत्याग्रह' बनाम 'पैसिव रेजिस्टेंस'	१४३
१४.	विलायतको शिष्ट-मण्डल	१५०
१५.	वक्रराजनीति अथवा क्षणिक हर्ष	१६०
१६.	अहमद मुहम्मद काछलिया	१६४
१७	पहली फूट	१७३
१८	पहला सत्याग्रही कैदी	१७७
१९.	'इंडियन ओपीनियन'	१८१

पृष्ठ

२०. पकड-धकड १८५
२१ पहला समझौता १९७
२२ समझौतेका विरोध : मुझपर हमला २०१
२३ गोरे सहायक २२१
२४ और भीतरी कठिनाइया २३४

द्वितीय खंड २४१-४१८

प्रस्तावना २४३
१ जनरल स्मट्सका विश्वासघात (?) २४७
२ युद्धकी पुनरावृत्ति २५८
३. ऐच्छिक परवानोंकी होली २६३
४. कौमपर नया सवाल उठानेका आरोप २६७
५ सोरावजी शापुरजी अडाजनिया २७२
६ सेठ दाऊद मुहम्मद आदिका लडाईमें शामिल होना २७९
७ देशनिकाला २८५
८ फिर शिष्ट-मण्डल २९२
९ टाल्स्टाय फार्म—१ २९८
१०. टाल्स्टाय फार्म—२ ३०१
११. टाल्स्टाय फार्म—३ ३१०
१२. गोखलेकी यात्रा—१ ३२९
१३ गोखलेकी यात्रा—२ ३३९
१४ वचन-भग ३४३
१५ ब्याह ब्याह नही रहा ३४९
१६. स्त्रिया जेलमें ३५६
१७. मजदूरोंकी धारा ३६०

पृष्ठ

१८ खानमालिकोंके पास और उसके बाद ३६६

१९ ट्रांसवालमें प्रवेश—१ ३७३

२०. ट्रांसवालमे प्रवेश—२ ३७७

२१ सभी कैद ३८३

२२. कसौटी ३९१

२३ अंतका आरम्भ ३९८

२४ प्राथमिक समझौता ४०६

२५ पत्र-व्यवहार ४०९

२६ युद्धका अंत ४१४

उपसंहार ४१७

दक्षिण अफ्रीकाका सत्याग्रह

प्रथम खण्ड

प्रास्ताविक

दक्षिण अफ्रीकामे हिंदुस्तानियोकी सत्याग्रहकी लड़ाई आठ बरस चली। इस संग्रामके लिए ही 'सत्याग्रह' शब्दकी खोज की गई और प्रयोग किया गया। बहुत दिनोसे मेरी इच्छा थी कि इस संग्रामका इतिहास लिखूं। उसका कितना ही अंश तो केवल मैं ही लिख सकता हूं। कौन-सी बात किस हेतुसे की गई, इसका पता तो युद्धका संचालन करनेवालेको ही हो सकता है। राजनीतिक क्षेत्रमें बड़े पैमानेपर यह पहला ही प्रयोग था। इसलिए इस सत्याग्रहके सिद्धातका विकास कैसे हुआ इसकी जानकारी लोगोको हो जाना हर हालतमे जरूरी समझा जायगा।

पर इस वक्त तो हिंदुस्तानमे सत्याग्रहके लिए विशाल क्षेत्र है। वीरमगाम[1] की चुंगीकी एक छोटी-सी लड़ाईसे इसका अनिवार्य क्रम आरंभ हुआ है।

वीरमगामकी चुगीकी लड़ाईमे निमित्त था वढवाण[2] का साधुचरित परोपकारी दरजी भाई मोतीलाल। १९१५मे मैं विलायतसे वापस आकर काठियावाड जा रहा था। तीसरे दर्जेमे सवार था। वढवाण स्टेशनपर यह दरजी अपनी छोटी-सी टोली लेकर आया था। वीरमगामकी कथा थोडी-सी सुनाकर उसने मुझसे कहा—"इस कष्टको काटिए। आपने काठियावाडमें जन्म लिया है, इसे सार्थक कीजिए।" उसकी आखोमे दृढता और करुणा दोनो थी।

मैंने पूछा, "तुम जेल जानेको तैयार हो?"

तुरत जवाब मिला—"हम फासी चढनेतकके लिए तैयार है।"

---

[1] वीरमगाम अहमदाबादसे ४० मील पश्चिममें एक कसबा है।

[2] वढवाण वीरमगामसे ४० मील पश्चिममें पड़ता है।

मैं—"मेरे लिए तो जेल ही काफी है; पर देखना, विश्वासघात न हो।"

मोतीलाल—"यह तो काम पड़नेपर मालूम होगा।"

मैं राजकोट पहुचा। वहा अधिक ब्यौरे मालूम किये और सरकारके साथ लिखा-पढी शुरू कर दी। वगसरा[1] आदिके भाषणोमें मैंने लोगोको सलाह दी कि वीरमगामकी चुगीके मामलेमें सत्याग्रह करना पड़े तो वे उसके लिए तैयार रहे। सरकारकी वफादार खुफिया पुलिसने ये भाषण उसके दफ्तरमें पहुचाए। पहुचानेवालेने सरकारके साथ अनजानमें जनताकी भी सेवा की। अतमें लार्ड चेम्सफर्डके साथ इस विषयमें बातचीत हुई और उन्होने दिए हुए वचनका पालन किया। औरोने भी कोशिश की, यह मैं जानता हू। पर मेरी पक्की राय है कि इस मामलेको लेकर सत्याग्रह किये जानेकी सभावना थी, इसीसे यह चुगी रद्द हुई।

वीरमगामके बाद गिरमिटके कानूनसे लड़ना पड़ा। इस कानूनको रद्द करानेके लिए भरपूर कोशिश की गई थी। इस लडाईको जोर पहुचानेके लिए सार्वजनिक आदोलन भी अच्छा-खासा हुआ था। बम्बईमें हुई सभामें गिरमिट यानी शर्तबद कुलीप्रथाको बद करानेके लिए १९१७ की ३१ वी जुलाईकी तारीख तै की गई थी। यह तिथि कैसे नियत हुई इसका इतिहास यहा नही दिया जा सकता। इस आदोलनके अतर्गत वाइसरायके पास पहले बहनोका प्रतिनिधिमडल गया। इसमें खास कोशिश किसकी थी यह लिखे बिना नही रहा जा सकता। वह थी चिरस्मरणीय बहन जाइजी पेटिटकी। इस लड़ाईमे केवल सत्याग्रहकी तैयारीसे ही हमारी विजय हो गई। पर उसके विषयमें सार्वजनिक आदोलनकी आवश्यकता थी, यह अतर याद रखने लायक है। गिरमिटको बद कराना वीरमगामकी चुगी उठवानेसे ज्यादा वजनदार मामला था।

---

[1]काठियावाड़का एक स्थान।

लार्ड चेम्सफर्डने रौलट कानूनके बाद गलतियां करनेमें कसर नहीं की। फिर भी आज मेरा यही खयाल है कि वे चतुर और समझदार वाइसराय थे। सिविल सर्विसके स्थायी अधिकारियोंके पजेसे अंततक कौन वाइसराय बच सकता है?

तीसरी लड़ाई थी चंपारनकी। इसका ब्यौरेवार इतिहास राजेन्द्रबाबूने लिखा है। इसमें सत्याग्रह करना पड़ा, केवल तैयारी काफी नहीं हुई; पर विपक्षका स्वार्थ कितना बड़ा था! चंपारनके लोगोंने कितनी शांति रखी, यह बात लिखने लायक है। सभी नेताओंने मन, वचन और कायासे पूरी तरह शांति रखी, इसका साक्षी मैं स्वयं हूं। तभी तो यह सदियोंकी बुराई छः महीनेंमें नामशेष हो गई।

चौथी लड़ाई थी अहमदाबादके मिलमजदूरोंकी। उसका इतिहास गुजरात न जाने तो दूसरा कौन जान सकता है। मजदूरोंने कैसी शांति रखी! उनके नेताओंके बारेमें क्या मुझे कुछ कहनेकी जरूरत है? पर यह सब होते हुए भी इस विजयको मैं दोषपूर्ण मानता हूं। इसलिए कि मजदूरोंकी प्रतिज्ञाका पालन करानेके लिए मैंने जो उपवास किया वह मालिकोंपर दबाव-सा हो गया। उनके और मेरे बीच जो स्नेह था वह उपवासका असर उनपर डाले बिना रह ही नहीं सकता था। फिर भी इस संघर्षका सार तो स्पष्ट ही है। मजदूर शांतिके साथ अपनी प्रतिज्ञापर अटल रहते तो उनकी जीत होती ही और वे मालिकोंका मन हर लेते। वे मालिकोंका दिल नहीं जीत सके, क्योंकि वे मन-वचन-कर्मसे निर्दोष—शांत रहे, यह नहीं कहा जा सकता। वे शरीरसे शांत रहे, यह भी बहुत माना जायगा।

पांचवीं लड़ाई खेड़ामें लड़ी गई, इसमें सभी नेताओंने शुद्ध सत्यका पालन किया, यह मैं नहीं कह सकता। हां, शांति अवश्य बनाए रखी गई। किसानोंकी शांति कुछ मजदूरोंकी तरह केवल कायिक ही थी। इससे महज आबरू सलामत रही। जनतामें जबर्दस्त जागृति फैली। पर खेड़ाने

शातिका पूरा पाठ नही पढा था। मजदूर शातिका शुद्ध रूप नही समझ पाए थे। इससे रौलट ऐक्टके विरुद्ध सत्याग्रह करते समय लोगोको कष्ट सहना पडा। मुझे अपनी हिमालय-जैसी भूल कबूल करनी पडी और उपवास करना-कराना पडा।

छठी लडाई रौलट कानूनके विरुद्ध हुई। उसमे हमारे भीतरके दोष बाहर आ गए, पर असल बुनियाद पक्की थी। मैंने अपनी सब गलतिया कबूल की, प्रायश्चित्त किया। रौलट कानूनपर अमल तो कभी हो न सका और अतमें यह काला कानून रद्द भी हो गया। इस सग्रामसे हमें बहुत बडा सबक मिला।

हमारी सातवी लडाई थी खिलाफत, पजाब और स्वराज्यकी। वह अभी चल रही है। उसमें एक भी सत्याग्रही अविचलित रहा तो हमारी विजय निश्चित है, यह मेरा अटल विश्वास है।

पर जो युद्ध चल रहा है वह महाभारत है। उसकी तैयारी विना इरादेके किस तरह हो गई इसका क्रम मैने ऊपर दे दिया है। वीरमगामका चुगीकी लडाईके समय क्या खबर थी कि मुझे और भी लडाइयाँ लडनी होगी। वीरमगामका भी दक्षिण अफ्रीकामें मुझे कहा पता था? सत्याग्रहकी यही तो खूबी है। वह खुद हमारे पास आ जाता है। हमें उसे ढूढने नही जाना पडता। यह गुण उसके सिद्धातमें ही निहित है। जिसमें कुछ छिपा हुआ नही है, जिसमे कोई चालाकी नही करनी होती, जिसमे असत्यके लिए तो स्थान ही नही, ऐसा धर्मयुद्ध अनायास ही अपने पास आता है और धर्ममे आस्था रखनेवाला जन उसके स्वागतके लिए सदा तैयार रहता है। जिसकी रचना पहलेसे करनी पडे वह धर्मयुद्ध नही हो सकता। धर्मयुद्धकी रचना करनेवाला और सचालक तो स्वय ईश्वर है। यह युद्ध ईश्वरके ही नामपर चल सकता है और जब सत्याग्रहीकी सारी बुनियाद ढीली हो जाती है, जब वह नितात निर्बल हो जाता है, जब उसके चारो ओर अधकार छा जाता है, तभी ईश्वर उसकी मददको

पहुंचता है। मनुष्य जब अपने आपको रजकणसे भी छोटा मानता है तभी ईश्वर उसकी सहायता करता है। राम निर्बलको ही बल देते है।

इस सत्यका अनुभव तो अभी हमे होना है। इसलिए मै मानता हूं कि दक्षिण अफ्रीकाका इतिहास हमारे लिए सहायकरूप है।

जो-जो अनुभव वर्तमान सग्राममे अबतक हुए है, पाठक देखेंगे कि उससे मिलते-जुलते अनुभव दक्षिण अफ्रीकामे भी हुए थे। दक्षिण अफ्रीका-का इतिहास हमे यह भी बतायेगा कि अभीतक हमारे सग्राममे नैराश्यका एक भी कारण नही है। विजयके लिए बस इतना ही जरूरी है कि हम अपनी योजनापर दृढताके साथ आरूढ़ रहे।

यह प्रस्तावना मै जुहू[1] मे बैठा लिख रहा हू। इतिहासके ३० प्रकरण यरवडा जेलमे लिखे थे। मै बोलता गया और भाई इन्दुलाल याज्ञिक लिखते गए। बाकीके प्रकरण पीछे लिखनेकी सोचता हूं। जेलमे मेरे पास आधारके लिए पुस्तके न थी। यहा भी उन्हे इकट्ठा करनेकी इच्छा नही है। ब्यौरेवार इतिहास लिखनेकी मुझे फुरसत नही है। उत्साह या इच्छा भी नही है। मेरा उद्देश्य इतना ही है कि हमारे वर्तमान सग्राममें इससे मदद मिले और कभी किसी फुरसतवाले साहित्यविलासीके हाथो यह इतिहास विस्तारपूर्वक लिखा जाय तो उसके काममें मेरा यह प्रयत्न पतवार—पथप्रदर्शक—रूप हो सके। यद्यपि यह बिना आधारके लिखी हुई चीज है, फिर भी कोई यह न समझे कि इसमें एक भी ऐसी बात है जो सही नही है या एक जगह भी अतिशयोक्ति की गई है, यह मेरी प्रार्थना है।

जुहू, बुधवार,
फाल्गुन वदी १३, स० १९८०,
२ अप्रैल, १९२४

—मोहनदास करमचंद गांधी

---

[1] बम्बईका उपनगर।

दक्षिण अफ्रीकाका सत्याग्रह

प्रथम खण्ड

: १ :

भूगोल

अफ्रीका दुनियाके बड़े-से-बड़े भूखंडोमेंसे एक है। हिंदुस्तान भी एक भूखंडके बराबर विस्तारवाला देश माना जाता है, पर महज रकबेकी दृष्टिसे देखे तो अफ्रीकामें चार या पांच हिंदुस्तान समा जाएगे। दक्षिण अफ्रीका अफ्रीकाका ठेठ दक्षिणी भाग है। हिंदुस्तानकी तरह अफ्रीका भी प्रायद्वीप है। अतः दक्षिण अफ्रीकाका बड़ा हिस्सा समुद्रसे घिरा हुआ है। अफ्रीकाके बारेमे आम खयाल यह है कि वहां ज्यादा-से-ज्यादा गरमी पड़ती है और एक दृष्टिसे यह बात सही भी है। भूमध्यरेखा अफ्रीकाके बीचसे होकर गुजरती है और इस रेखाके आसपासकी गरमीका अंदाजा हिंदुस्तानके रहनेवालोंको नही हो सकता। हिंदुस्तानके ठेठ दक्षिणमे जिस गरमीका अनुभव हम करते है उससे भूमध्यरेखाके पासकी गरमीका कुछ अंदाजा किया जा सकता है। पर दक्षिण अफ्रीकामे वैसी गरमी बिलकुल नही, क्योंकि अफ्रीकाका यह भाग भूमध्यरेखासे बहुत दूर है। उसके बड़े भागकी आब-हवा तो इतनी सुंदर और ऐसी मोतदिल है कि वहां यूरोपकी जातिया सुखसे घर बना सकती है। हिंदुस्तानमे बसना उनके लिए नामुमकिन-सा है। इसके सिवा

दक्षिण अफ्रीकामे तिब्बत या काश्मीरके जैसे बहुतसे ऊचे प्रदेश है, फिर भी वे तिब्बत या काश्मीरकी तरह दससे चौदह हजार फुटतककी ऊचाईवाले नही है। इससे वहांकी हवा खुश्क और बर्दाश्त होने लायक ठडी रहती है। इसीलिए दक्षिण अफ्रीकाके कितने ही भाग क्षयरोगियोके लिए अत्युत्तम माने जाते है। दक्षिण अफ्रीकाकी स्वर्णपुरी जोहान्सबर्ग ऐसे ही भागोमेसे एक है। जमीनके जिस टुकडेपर जोहान्सबर्ग आबाद है वह आजसे ५० साल पहले बिलकुल वीरान और सूखी घासका मैदान था, पर जब वहा सोनेकी खानोकी खोज हुई तब वहा, जादूके महलकी तरह, मकान-पर-मकान बनने लगे और आज तो वह सुदर बगलोका विशाल नगर है। वहाके धनिकोने दक्षिण अफ्रीकाके उपजाऊ भागों और यूरोपसे भी एक-एक पौधेके १५-१५ रुपये देकर पेड़-पौधे मंगाये और लगाए है। उसका पिछला इतिहास न जाननेवाले यात्रीको आज यही जान पडेगा कि ये पेड-पौधे हजारो सालसे वहां लग रहे होगे।

दक्षिण अफ्रीकाके सभी विभागोका वर्णन मै यहा नही करना चाहता। जिन विभागोके साथ हमारे विषयका कुछ सबध है केवल उन्हीका थोडा परिचय दे रहा हू। दक्षिण अफ्रीकामे दो हुकूमते है—ब्रिटिश और पुर्तगीज। पुर्तगीज हिस्सेको डेलागोआबे कहते है, और हिंदुस्तानसे जाते हुए वह दक्षिण अफ्रीकाका पहला बदरगाह माना जाता है। वहासे थोडा दक्षिणकी ओर और बढिये, नीचे उतरिये तो पहला ब्रिटिश राज्य नेटाल आता है। उसका बदरगाह पोर्ट नेटाल कहलाता है, पर हम उसे डर्बनके नामसे जानते है और दक्षिण अफ्रीकामे भी वह आम तौरसे इसी नामसे ख्यात है। नेटालका यह सबसे बडा नगर है। नेटालकी राजधानीका नाम पीटर मारित्सबर्ग है। वह डर्बनसे

अंदरकी ओर आगे जाते हुए लगभग ६० मीलके फासलेपर पड़ता है। समुद्रकी सतहसे उसकी ऊंचाई अंदाजन् २ हजार फुट है। डर्बनकी आब-हवा कुछ-कुछ बंबईसे मिलती हुई मानी जा सकती है, पर बंबईसे वहांकी हवामें कुछ अधिक ठंड अवश्य है। नेटालसे आगे बढ़कर और अंदर जानेपर ट्रांसवाल आता है जिसकी जमीन आज दुनियाको सबसे ज्यादा सोना दे रही है। कुछ वरस पहले वहां हीरेकी खानें भी मिली हैं, जिनसे दुनियाका बड़े-से-बड़ा हीरा निकला है। वह कोहेनूरसे भी बड़ा हीरा रूसके पास है, ऐसा समझा जाता है। उसका नाम खानके मालिकके नामपर रखा गया है और वह क्लीनन[1] हीरा कहलाता है।

पर जोहान्सबर्ग 'स्वर्णपुरी' है और हीरेकी खानें भी उसके पास ही हैं, फिर भी वह ट्रांसवालकी राजधानी नहीं है। उसकी राजधानी प्रिटोरिया है। यह जोहान्सबर्गसे ३६ मीलके फासलेपर है और वहां खासकरके राजदरबारी आदमियों तथा उनसे संबंध रखनेवालोंकी बस्ती है। इससे वहांका वातावरण कुछ शांत माना जाता है। जोहान्सबर्गका वातावरण तो अतिशय अशांत कहा जाता है। जैसे हिंदुस्तानके किसी शांतिभरे गांव या छोटेसे नगरसे कोई बंबई जैसे महानगरमें पहुंचे तो वहांके धूम-धड़क्के और अशांतिसे घबरा जाता है; प्रिटोरियासे जानेवालेको जोहान्सबर्गका दृश्य भी वैसा ही मालूम होता है। अगर यह कहें कि जोहान्सबर्गके लोग चलते नहीं, बल्कि दौड़ते हैं तो यह अतिशयोक्ति नहीं मानी जायगी। किसीको किसीकी ओर देखने तककी

---

[1] क्लीनन हीरेका वजन ३ हजार कैरट है। कोहेनूरका वजन १००कैरटके और रूसके राजमुकुटके हीरे 'ओर्लफ' का २०० कैरटके लगभग है।

फुरसत नही होती और हर एक इसी धुनमें गर्क दिखाई देता है कि कैसे कम-से-कम समयमे अधिक-से-अधिक पैसा कमा ले। ट्रांसवालको छोड़कर पश्चिमकी ओर और भी अंदर जाइए तो आरेंज फ्री स्टेट अथवा आरेंजियाका उपनिवेश आता है। इसकी राजधानी ब्लूमफोंटीन है। यह अतिशय शात और छोटा-सा नगर है। आरेंजियामे कोई खान-वान नही है। वहासे रेलपर कुछ घंटेकी यात्रासे ही हम केप कॉलोनीकी सरहदपर पहुच जाते है। केप कॉलोनी दक्षिण अफ्रीकाका सबसे बड़ा उपनिवेश है। उसकी राजधानी और सबसे बड़ा बंदरगाह केप टाउनके नामसे प्रसिद्ध है। 'केप आव गुड होप' नामका अतरीप इसी राज्यमे है। गुड होपके मानी है शुभाशा। वास्को डी गामा जब पुर्तगालसे हिंदुस्तानकी खोजमे निकला तब उसने यही पहुचकर अपने जहाजका लगर डाला और यही उसे यह आशा बधी कि अब अपनी मुराद जरूर पूरी होगी। इसीसे इस स्थानका नाम 'शुभाशा अंतरीप' रखा।

इन चार मुख्य ब्रिटिश उपनिवेशोंके अतिरिक्त और कई प्रदेश है जो ब्रिटिश साम्राज्यके सरक्षणमे है और जिनमें उन लोगोकी वस्ती है जो दक्षिण अफ्रीकाके यूरोपियनोंके आगमनके पहलेसे इस देशमे रहते थे।

दक्षिण अफ्रीकाका मुख्य धंधा खेती ही माना जायगा। खेतीके लिए यह बहुत ही अच्छा देश है। कितने ही भाग तो अतिशय उपजाऊ और सुहावने है। अनाजोमे सबसे अधिक और आसानीसे उपजनेवाली फसल मकईकी है। मकई दक्षिण अफ्रीकाके हबशी बाशिंदोका मुख्य आहार है। कुछ हिस्सोमे गेहू भी पैदा होता है। फलोके लिए तो दक्षिण अफ्रीका प्रसिद्ध है। नेटालमे बहुत किस्मोके और बहुत बढिया केले, पपीते और अनन्नास पकते है और इतनी इफरातसे कि गरीब-से-गरीब आदमीको भी मिल सकें। नेटाल और दूसरे

उपनिवेशोंमें भी नारगी, संतरा, 'पीच' और एप्रिकाट (जर्दालू) इतने बड़े परिमाणमे पैदा होते है कि हजारों आदमी सामान्य श्रमसे देहातमे उन्हे बिना पैसेके पा सकते है। केप कॉलोनी तो अंगूर और बड़े बेर का देश है। वहां जैसे अगूर शायद ही और कही उपजते हो। मौसममे वे इतने सस्ते हो जाते है कि गरीब आदमी भी जी भरकर खा सके। जहां हिंदुस्तानी बसते हो वहां आम न हों, यह हो नही सकता। हिंदुस्तानियोने आमकी गुठलिया बोई और इसका फल यह हुआ कि दक्षिण अफ्रीकामे आज आम्र भी अच्छी मात्रामे उपलभ्य है। उनकी कुछ किस्मे तो बेशक बबईके 'हापुस-पायरी' के साथ मुकाबला कर सकती है। साग-भाजी भी इस रसीली भूमिमे इफरातसे उपजती है और कह सकते है कि शौकीन हिंदुस्तानियोने हिंदुस्तानकी लगभग सभी साग-तरकारिया यहा उपजा ली है।

मवेशियोंकी तादाद भी यहा काफी कही जा सकती है। गाय-बैल हिंदुस्तानके गाय-बैलोसे बड़े डील-डौलवाले और अधिक बलवान होते है। गोरक्षाका दावा करनेवाले हिंदुस्तानमे कितने ही गाय-बैलोको हिंदुस्तानके लोगोकी तरह ही दुबला-सूखा देखकर मैने शर्मसे सिर झुकाया है और अनेक बार मेरा दिल उनकी दशा देखकर रोया है। दक्षिण अफ्रीकामें दुबली गाय या दुबला बैल मैने कही देखा हो, ऐसा मुझे याद नही आता, गोकि मै अपनी आखे प्रायः खुली रखकर उसके सभी भागोमे फिरा हूं। प्रकृतिने अपनी दूसरी देनोके साथ-साथ इस भूमिको सृष्टि-सौन्दर्यसे संवारनेमे भी कोताही नही की है। डर्बनका दृश्य तो बहुत ही सुदर माना जाता है; पर केप कॉलोनी उससे भी बढ-चढ़कर है। केप टाउन नगर 'टेबल माउटेन' नामक पहाड़की तलहटीमें बसा हुआ है जो न बहुत नीचा है और न बहुत ऊंचा। दक्षिण

अफ्रीकाकी पूजा करनेवाली एक विदुषीने इस पहाड़पर एक कविता लिखी है, जिसमे वह कहती है कि जो अलौकिकता मैंने 'टेबल माउटेन' मे अनुभव की है वह मुझे किसी और पर्वतमे नही मिली। इसमें अतिशयोक्ति भले ही हो— मैं मानता हू कि है—पर इस विदुषी बहनकी एक बात मेरे मनमे बैठ गई है। वह कहती है कि टेबुल माउटेन केप टाउन-निवासियोके मित्रका काम करता है। यह पर्वत बहुत ऊचा नही है। इससे डरावना नही लगता। लोगोको दूरसे ही उसका पूजन करके सतोष नही करना पडता, बल्कि वे इस पहाड़पर ही घर बनाकर रहते है और बिलकुल समुद्रके किनारे होनेसे समुद्र सदा अपने स्वच्छ जलसे उसके पाव पखारा और उसका चरणामृत पिया करता है। बच्चे और बूढे, स्त्री और पुरुष सब निर्भय होकर लगभग सारे पहाडपर विचर सकते है और हजारो नगरवासियोके कोलाहलसे सारा पर्वत प्रतिदिन गूज उठता है। इसके विशाल वृक्ष, सुगध-भरे और रग-बिरगे फूल सारे पहाडको इस तरह सवार देते है कि उसकी सुषमा निरखते और उसपर विचरते लोग अघाते ही नही।

दक्षिण अफ्रीकामे इतनी बडी नदियां नही है जिनकी तुलना हमारी गगा-जमुनाके साथ की जा सके। थोडी नदिया है, पर वे बहुत छोटी कही जाएगी। इस देशमे बहुतेरे भाग ऐसे है जहां नदीका पानी पहुचता ही नही। ऊंचे प्रदेशोमे नहरे भी कहासे लाई जाए? और जहा समुद्रकी समता करनेवाली नदिया न हो वहा नहरे कहासे हो सकती है? दक्षिण अफ्रीकामे जहा-जहा प्रकृतिने पानीकी तगी कर रखी है वहा पाताल जैसे गहरे कुए खोदकर पवनचक्कियों और भापकी कलोके जरिए इतना पानी खीचा जाता है कि खेतोको सीच सके। वहाकी सरकारकी तरफसे खेतोको

भरपूर मदद मिलती है। किसानोको सलाह देनेके लिए वह खेती के विशेषज्ञों को भेजा करती है। कितने ही स्थानोमे प्रजाके लाभके लिए सरकार अनेक प्रयोग किया करती है। वह नमूनेके खेत रखती है, लोगोको मवेशी और बीज मिलनेका सुभीता कर देती है, बहुत थोड़े खर्चेसे बहुत गहरे कुए खुदवा देती है और उसकी कीमत किस्तोंमें चुकानेका सुभीता किसानोके लिए कर देती है। इसी तरह लोहेके कटीले तारोंकी वाड भी खेतोके इर्द-गिर्द लगवा देती है।

दक्षिण अफ्रीका भूमध्यरेखाके दक्षिणमे पडता है और हिंदुस्तान उत्तरमे। इससे वहाका सारा वातावरण हिंदुस्तानियोको उलटा-सा मालूम होता है। वहाका ऋतुक्रम भी विपरीत है। जब हमारे यहा गरमी होती है तब वहा जाडेके दिन होते है। वर्षाका वहा कोई पक्का नियम नही दिखाई देता। वह चाहे जब हो सकती है। आमतौरपर २० इचसे अधिक बारिश नही होती।

: २ :

इतिहास

अफ्रीकाके भूगोलपर निगाह डालते हुए जिन विभागोंको हम देख गए है, पाठक यह न समझ ले कि वे आदिकालसे ही है। बिलकुल पुराने जमानेमे वहा कौनसे लोग बसते थे इसका पक्का निश्चय अभी नही हो सका है। यूरोपके लोग जब दक्षिण अफ्रीकामे आबाद हुए उस वक्त वहां हबशी जातिके लोग रहते थे। यह माना जाता है कि अमरीकामें जिन दिनो गुलामीका चक्र जोर-शोरसे चल रहा था उस वक्त ये हबशी वहांसे भागकर दक्षिण अफ्रीकामे आ गये और

आवाद हुए। उनकी जुदा-जुदा जातिया है, जैसे जुलू, स्वाजी, वसूटो, वेकवाना इत्यादि। इनकी भापामे भी भेद है। ये हवशी ही दक्षिण अफ्रीकाके मूलनिवासी माने जाएगे। पर दक्षिण अफ्रीका इतना लवा-चौडा देश है कि फिलहाल जितने हवशी वहा वसते है उनसे वीस-तीस गुनी वडी आवादी उसमे सुखसे समा सकती है। डर्वनसे केप टाउन रेलके रास्ते लगभग १८०० मीलका सफर है। समुद्रकी राह भी एक हजार मीलसे कमका फासला नही है। इन चारो राज्योका रकवा ४,७३,००० वर्गमील है।

इस विशाल भूखडमे १९१४ में हवशियोंकी आवादी करीव ५० लाख और गोरोकी करीव १३ लाखके थी। हवशियोमे जुलू सवसे ज्यादा कद्दावर और सुदर कहे जा सकते है। हवशियोके लिए सुदर विशेपणका व्यवहार मैने जान-वूझकर किया है। सफेद चमडे और नुकीली नाकपर हम रूपका आरोप किया करते है। इस वहमको क्षणभरके लिए अलग रख दे तो जुलू लोगोको गढ़नेमे व्रह्माने कोई कसर रखी है, यह नही जान पड़ेगा। स्त्री-पुरुष दोनो ऊचे कदके होते है, छाती अपनी ऊंचाईके अनुपातसे चौड़ी होती है। सारे शरीरकी रगे सुगठित और खूव मजवूत होती है। इनकी पिडलिया और भुजाए भी सदा माससे भरी हुई और गोलाकार दिखाई देती है। कोई स्त्री या पुरुप झुककर या कूवड निकालकर चलता हुआ शायद ही कभी दिखाई देता हो। होंठ अवश्य लवे और मोटे होते है, पर सारे शरीरके आकारको देखते हुए मै तो उन्हे तनिक भी वेडौल न कहूगा। आखे गोल और तेजस्विनी होती है। नाक चपटी और वडी होती है, पर इतनी ही कि लवे-चौडे मुह-पर फवे। उनके सिरके घुंघराले वाल उनकी शीशम-जैसी काली और चमकीली त्वचापर खिल उठते है। आप किसी जुलूसे

पूछें कि दक्षिण अफ्रीकामे बसनेवाली जातियोंमें सबसे अधिक सुंदर तुम किसे कहोगे तो यह दावा वह अपनी जातिके लिए ही करेगा और इसमे मुझे उसका तनिक भी अज्ञान नही दिखाई देता। जो प्रयत्न सेंडो आदि आज यूरोपमे अपने शागिर्दोंकी बाहु, छाती आदिके व्यवस्थित विकासके लिए कर रहे हैं वैसे किसी भी प्रयत्नके बिना, कुदरती तौरपर ही, इस जातिके अंग-प्रत्यंग सुदृढ और गठे हुए दिखाई देते हैं। प्रकृतिका नियम है कि भूमध्य रेखाके नजदीक रहनेवालोंका चमडा काला ही होना चाहिए और हम यह मान ले कि प्रकृति जो-जो शकलें गढ़ती है उसमे सुंदरता होती ही है तो सौदर्यविषयक अपने संकुचित और एकदेशीय विचारोंसे बच जायं। इतना ही नही, हिंदुस्तानमे अपने ही चमड़ेको कुछ काला पाकर हमारे मनमे जो अशोभन लज्जा और अरुचि उत्पन्न होती है उससे भी हम मुक्त हो सकते हैं।

ये हबशी मिट्टी और फूसके गुंबददार झोपडोंमें रहते है। इन झोपडोमें एक ही गोल दीवार होती है और ऊपर फूसका छप्पर। छप्पर भीतर लगे हुए एक खंभेपर टिका होता है। दरवाजा एक ही होता है और इतना नीचा कि बिना झुके कोई अंदर नही जा सकता। यही दरवाजा हवाके आने-जानेका रास्ता होता है। उसमें किवाड तो शायद ही होते है। हम लोगोकी तरह ये लोग भी दीवार और जमीनको मिट्टी और गोबर-से लीपते है। ऐसा माना जाता है कि ये लोग कोई भी चौकोर चीज नही बना सकते। अपनी आंखोंको उन्होंने केवल गोल चीज ही देखना और बनाना सिखाया है। हम प्रकृतिको भूमितिकी सरल रेखाएं, सीधी आकृतियां बनाते नही पाते और प्रकृतिके इन निर्दोष भोले-भाले बच्चोका ज्ञान उनके प्रकृतिके अनुभवपर ही आश्रित होता है।

उनके इस मिट्टीके महलमे साज-सामान भी उसके अनुरूप ही होता है। यूरोपीय सभ्यताके प्रवेशके पहले ये पहनने-ओढने, सोने-बैठने सबमे चमडेका ही उपयोग करते थे। कुरसी-मेज, सदूक-पिटारा रखनेको तो इस 'महल'मे जगह भी नही होती और अग्रेजीके आधारपर आज भी इनके दर्शन वहां शायद ही होते है। अब उनके घरोमे कबलका प्रवेश हो गया है। ब्रिटिश राजके पहुचनेके पहले हबशी स्त्री-पुरुष लगभग नगे ही फिरा करते थे। आज भी देहातमें बहुतेरे इसी तरह रहते है। गुह्य अंगोको वे एक चमडेसे ढक लेते है। कोई-कोई यह भी नही करते, पर इसका अर्थ कोई पाठक यह न कर ले कि ये लोग अपनी इंद्रियोको वशमे नही रख सकते। जहा एक बडा समुदाय किसी रूढिसे बधकर व्यवहार करता हो वहा यह बात बिलकुल मुमकिन है कि दूसरे समुदायको वह रूढि अयोग्य मालूम होती हो, फिर भी पहले समुदायकी निगाहमे उसमे तनिक भी दोष न हो। इन हबशियो-को एक दूसरेकी ओर ताकने-झाकनेकी फुरसत ही नही होती। भागवतकार कहते है कि शुकदेवजी जब नगी नहाती हुई स्त्रियोके बीचसे होकर चले गए तो न उनके मनमे तनिक भी विकार उत्पन्न हुआ, न उन निष्पाप स्त्रियोको तनिक भी क्षोभ हुआ या जरा भी शर्म आई। मुझे इसमे कुछ भी अलौकिक नही दिखाई देता। हिंदुस्तानमे आज ऐसे मौकेपर हममेसे कोई भी इतनी स्वच्छता, इतनी निर्विकारताका अनुभव नही कर सकता तो यह कुछ मनुष्य-जातिकी पवित्रताकी सीमा नही है, बल्कि हमारे दुर्भाग्यकी निशानी है। हम जो इन लोगोको जगली मानते है यह तो हमारे अभिमानकी प्रतिध्वनि है। जैसा हम मानते है वैसे जगली वे नही है।

ये हबशी जब शहरमे आते है तब उनकी स्त्रियोके लिए यह नियम है कि उन्हे छातीसे घुटनेतकका भाग अवश्य ढक रखना

चाहिए। इस कारण उन्हे पसद न होते हुए भी वैसा कपड़ा लपेटना पडता है। इससे दक्षिण अफ्रीकामे इस नापके कपड़ेकी वहुत खपत होती है और ऐसे लाखों कंवल और चादरें हर साल यूरोपसे आती है। पुरुषोके लिए अपनी देहको कमरसे घुटनेतक ढक रखना लाजिमी है। इससे उन्होंने यूरोपके उतारे हुए कपडे पहननेका चलन चला दिया है। जो यह नही करते वे नेफादार जांघिया पहनते है। ये सारे कपड़े यूरोपसे ही आते है।

इन लोगोंकी खास खुराक मकई और जव मिल जाय तव मांस है। मसाले वगैरहसे तो खुशकिस्मतीसे वे विलकुल अनजान है। इनके भोजनमे मसाला पडा हो या हल्दीका रंग भी आ गया हो तो ये नाक-भौ सिकोड़ेगे और जो निरे जगली कहे जाते है वे तो उसे छुएगे भी नही। सावित उवाली हुई मकईको थोड़ा नमक मिलाकर एक वक्तमे एक सेर खा लेना साधारण जुलूके लिए कोई असाधारण वात नही है। मकईके आटेको पानीमे पकाकर उसकी लपसी वनाकर खानेमे वे सतोष मानते है। मास जब मिल जाय तव कच्चा या पक्का, उवालकर या भूनकर, केवल नमकके साथ, खा लेते है। मास चाहे जिस प्राणीका हो, उसे खाते उन्हें हिचक नही होती।

उनकी भाषाके नाम भी जातिके नामपर ही होते है। लेखन-कलाका प्रवेश गोरोंके ही द्वारा हुआ है। हवशी वर्ण-माला-जैसी कोई चीज नही है। हालमे रोमन लिपिमे वाइविल आदि पुस्तके हवशी भाषाओंमे छापी गई है। जुलू भाषा अत्यत मधुर है। अधिकाश शव्दोके अंतमे 'आ' का उच्चारण होता है। इससे भाषाकी ध्वनि कानोको हलकी और मीठी लगती है। मैने पढ़ा और सुना है कि उसके शव्दोमे अर्थ और काव्य दोनों होते है। जिन थोड़ेसे शव्दोंका ज्ञान मुझे अनायास हो गया है उनके आधारपर मुझे यह मत ठीक मालूम

होता है। नगरों आदिके यूरोपियनोंके रखे हुए नाम जो मैंने दिये हैं उनके काव्यमय हवशी नाम भी हैं ही; पर वे मुझे याद नही रहे। इससे उन्हे नही दे सका।

पादरियोके मतानुसार तो हवशियोका न कोई धर्म था और न है, पर धर्मको व्यापक अर्थमे ले तो कह सकते है कि वे एक ऐसी अलौकिक शक्तिको अवश्य मानते और पूजते है, जिसे वे खुद पहचान नही सकते। इस शक्तिसे वे डरते भी है। शरीरके नाशके साथ मनुष्यका सर्वथा नाश नही होता, इसकी भी उन्हे धुंधली प्रतीति होती है। हम नीतिको धर्मका आधार माने तो नीतिपालक होनेके कारण उन्हे धर्म-निष्ठ भी मान सकते है। सच और झूठके भेदको वे पूरी तरह समझते हैं। अपनी स्वाभाविक अवस्थामे वे जिस सीमातक सत्यका पालन करते है, गोरे या हम लोग उस सीमातक उसका पालन करते है या नही, इसमें शक है। उनके मदिर-देवालय नही होते। दूसरी जातियोकी तरह इन लोगोमे भी बहुत तरहके वहम देखनेमें आते है। पाठकोको यह जानकर अचरज होगा कि शरीर-बलमे दुनियाकी किसी भी जातिसे हेठी न ठहरनेवाली यह कौम वस्तुत इतनी डरपोक, इतनी बुजदिल है कि हवशी जवान गोरे बालकको भी देखकर डर जाता है। कोई उसके सामने तमचा तान दे तो वह या तो भाग जायगा या ऐसे जड बन जायगा कि उसमे भागनेकी शक्ति भी न रहेगी। इसका कारण तो है ही। उसके दिलमे यह बात बैठ गई है कि मुट्ठीभर गोरोने जो ऐसी बडी और जगली जाति-को वशमे कर रखा है यह जरूर कोई जादू होना चाहिए। भाले और तीरसे काम लेना हवशी बहुत अच्छी तरह जानते थे। ये तो उनसे छीन लिए गए है। बंदूक उन्होंने न कभी देखी, न चलाई। जिसको न दियासलाई दिखानी पड़ती है, न एक उगली हिलानेके सिवा और कोई हरकत

करनी पडती है, फिर भी एक छोटी-सी नलीसे यकायक आवाज होती है, आग भडकती है और गोली लगकर क्षणभरमे आदमीका काम तमाम कर देती है ! यह ऐसा चमत्कार है जो बेचारे हवशीकी समझमे नही आ सकता। इससे वह इस चीजको काममे लानेवालेके डरसे हमेशा बदहवास रहता है। उसने और उसके बाप-दादोंने देखा है कि इन गोलियोने कितने ही असहाय और निरपराध हवशियोंकी जान ले ली है। यह क्यों और कैसे होता है, बहुतेरे हवशी इसे आज भी नही जानते।

इस जातिमे 'सभ्यता' धीरे-धीरे प्रविष्ट होती जा रही है। एक ओरसे भले पादरी ईसामसीहका संदेश, जैसा कुछ उन्होंने उसे समझा है, उनके पास पहुचा रहे है। उनके लिए मदरसे खोल रहे है और उन्हे सामान्य अक्षरज्ञान दे रहे है। इनकी कोशिशसे कितने ही चरित्रवान हवशी भी तैयार हुए है; पर बहुतेरे जो अक्षरज्ञान और सभ्यतासे परिचित न होनेके कारण अनेक अनीतियोसे बचे हुए थे, आज ढोगी-पाखंडी भी हो रहे है। जो हवशी 'सभ्यता' के सपर्कमे आ चुके है उनमे शायद ही कोई ऐसा हो जो शराबकी बुराईसे बचा हो। उनके तगड़े मस्त शरीरपर जब शराबका भूत सवार होता है तब वे पूरे पागल हो जाते है और न करनेके सब काम कर डालते है। सभ्यताके साथ-साथ आवश्यकताओका बढना तो उतना ही पक्का है जितना दो और दो मिलकर चार होना। जरूरतें बढ़ानेके लिए हो या उन्हे श्रमका मूल्य सिखानेके लिए, हर हवशीको 'मुड-कर' या व्यक्ति-कर (Poll tax) और कुटी-कर (Hut tax) देना पड़ता है। ये कर न लगाए जायं तो यह अपने खेतोमे रहनेवाली जाति खानोसे सोना या हीरा निकालनेके लिए जमीनके अंदर सैकडो गजकी गहराईमे क्यों उतरने जाय ? और इन खानोके लिए इनका श्रम सुलभ न हो तो सोना और हीरे

पृथ्वीके उदरमें ही पडे रह जाय। वैसे ही इनपर कर लगाये विना यूरोपियनोंको नौकर मिलना भी कठिन होगा। इसका फल यह हुआ है कि खानोंके भीतर काम करनेवाले हजारों हब्शियोंको दूसरे रोगोंके साथ-साथ एक प्रकारका क्षय रोग भी हो जाता है जिसे 'माइनर्स थाइसिस' (खानमें काम करनेवालोंका क्षय) कहते हैं। यह रोग प्राणहारी है। इसके पजेमें पडनेके बाद विरले ही उबरते हैं। ऐसे हजारो आदमी एक खानके अदर रहे और उनके वाल-बच्चे साथ न हो तो उस दशामे वे कितना सयम रख सकते है, पाठक इसका सहज ही अनुमान कर सकते है। इसके फलस्वरूप पैदा होनेवाले रोगोंके भी ये लोग शिकार हो जाते है। दक्षिण अफ्रीकाके विचारशील गोरे भी इस गभीर प्रश्नपर विचार न करते हो, सो वात नही हैं। उनमेसे कितने ही अवश्य यह मानते है कि सभ्यताका असर इस जातिपर कुल मिलाकर अच्छा पडा है, यह दावा शायद ही किया जा सकता है। इसका वुरा असर तो हर आदमी देख सकता है।

इस महान् देशमे जहा ऐसी सरल, निर्दोष जाति बसती थी, कोई चार सौ साल पहले वलदा लोगोने पडाव डाला। ये गुलाम तो रखते ही थे, अपने जावाके उपनिवेशसे कितने ही वलंदा अपने मलायी गुलामोको लेकर उस प्रदेशमे दाखिल हुए जिसे आज हम केप कालोनी कहते है। ये मलायी लोग मुसलमान हैं। उनमे वलदा लोगो का रक्त और वैसे ही उनके कितने ही गुण भी है। वे सारे दक्षिण अफ्रीकामें इक्के-दुक्के विखरे हुए दिखाई देते है, पर उनका केन्द्र केप टाउन ही माना जाता है। आज उनमेंसे कितने ही गोरोकी नौकरी करते हैं और दूसरे स्वतत्र व्यवसाय करते है। मलायी स्त्रिया वडी ही मेहनती और होशियार होती हैं। उनकी रहन-सहन आम तौरसे साफ-सुथरी दिखाई देती है। औरते धुलाई और सिलाई-

का काम बहुत अच्छा कर सकती है। मर्द कोई छोटा-मोटा रोजगार करते है। बहुतेरे तांगा-गाड़ी हाकनेका धंधा करके गुजर-बसर करते है। कुछने ऊचे दरजेकी अग्रेजी शिक्षा भी प्राप्त की है। उनमेसे एक डाक्टर अब्दुलरहमान केप टाउनमें मशहूर है। वह केप टाउनकी पुरानी धारा सभामे भी पहुच गए थे। नए विधानमे प्रधान धारा सभामे जानेका यह हक छीन लिया गया है।

बलदा लोगोंका वर्णन करते हुए बीचमे मलायी लोगोका जिक्र अपने आप आ गया। पर अब हम जरा देखे कि बलदा लोग किस तरह आगे बढे। बलदाके मानी डच होते है, यह मुझे बतानेकी जरूरत नही होनी चाहिए। ये लोग जितने बहादुर योद्धा थे और है उतने ही कुशल किसान थे और आज भी है। उन्होने देखा कि हमारे आसपासका देश खेतीके लिए बहुत ही उपयुक्त है। उन्होंने यह भी देखा कि इस देशके असल बाशिंदे सालमे कुछ ही दिन काम करके आसानीसे अपना निर्वाह कर सकते है। तब उनसे मजदूरी क्यो न कराये? बलदाके पास युद्धकला थी, बंदूक थी और दूसरे प्राणियोंकी तरह आदमियोको भी कैसे बसमे किया जाता है, यह जानते थे। उनका विश्वास था कि ऐसा करनेमे धर्मकी कोई बाधा नही है। अत: अपने कार्यके औचित्यके विषयमें तनिक भी शकाशील हुए बिना उन्होंने दक्षिण अफ्रीकाके मूलनिवासियोंकी मजदूरीके बलपर खेती आदि करना शुरू कर दिया।

जैसे बलदा दुनियामे अपना फैलाव करनेके लिए अच्छी-अच्छी जमीनें ढूढ रहे थे वैसे ही अंग्रेज भी इस फेरमे फिर रहे थे। अत धीरे-धीरे अंग्रेज भी यहां पहुचे। अग्रेज और डच चचेरे भाई तो है ही। दोनोंका स्वभाव एक, लोभ एक। एक ही कुम्हारके बनाये हुए मटके जब इकट्ठे होते

हैं तो कभी-कभी आपसमें टकराकर फूटते भी है। वैसे ही ये दोनो जातिया भी धीरे-धीरे देशमें घुमते और हवशियोको वशमें करते हुए एक दूसरेसे टकरा गईं। इनमें भी झगड़े हुए, लड़ाइया भी हुईं। मजूबाकी पहाडीपर अग्रेजोने हार भी खाई। इस हारका दाग उनके दिलपर रह गया और वह पककर फोडा बन गया। यह फोडा १८९९ से १९०२ ई० तक जो जगत-प्रसिद्ध युद्ध हुआ उसमें फूटा। लार्ड राबर्ट्सनने जब जनरल क्रोजेको अपने अधीन किया तब उन्होंने स्वर्गीया महारानी विक्टोरियाको यह तार किया—"मजूबाका बदला ले लिया।" पर इन दोनोंके बीच जब पहली (बोअर-युद्धके पहले) मुठ-भेड हुई तब बहुतेरे वलंदा लोग अग्रेजोंके नामकी हुकूमत भी कबूल करनेको तैयार न थे। इसलिए दक्षिण अफ्रीकाके अज्ञात भीतरी भागमें चले गये। इसीके फलस्वरूप ट्रासवाल और आरेंज फ्री स्टेटकी उत्पत्ति हुई।

यही वलदा या डच लोग दक्षिण अफ्रीकामें बोअरके नामसे पुकारे जाने लगे। उन्होंने अपनी भाषाकी रक्षा उससे उसी तरह चिपके रहकर की है जैसे बच्चा मातासे चिपका रहता है। अपनी स्वतंत्रताके साथ अपनी भाषाका अतिशय निकट सबध है, यह बात उनके अतरमें अकित हो गई है। उसपर कितने ही हमले हुए, फिर भी वे अपनी भाषाकी रक्षा किये जा रहे हैं। इस भाषाने भी अब ऐसा नया रूप ग्रहण कर लिया है जो यहाके लोगोंके अनुकूल हो। हालैंडके साथ वे अपना निकट सबध बनाये नही रख सके, इससे जैसे संस्कृत-से प्राकृत भाषाए निकली वैसे ही डच भाषासे अपभ्रष्ट डच-बोअर लोग बोलने लगे। पर अब वे अपने बच्चोपर अनाव-श्यक बोझ डालना नही चाहते। इसलिए इस प्राकृत बोलीको स्थायी रूप दे दिया है और वह 'टाल'के नामसे विख्यात है। उसीमें उनकी पुस्तकें लिखी जाती हैं। बच्चोंकी पढाई इसी

भाषामे होती है और धारा सभाके बोअर सदस्य उसीमे भाषण भी करते है। यूनियनकी स्थापनाके बाद सारे दक्षिण अफ्रीकामे दोनो भाषाओं, 'टाल' या डच और अंग्रेजी-को समान पद प्राप्त है, यहांतक कि उसके सरकारी गजट और धारा सभाकी कार्रवाईका दोनों भाषाओमे प्रकाशित होना जरूरी है।

बोअर लोग सीधे, भोले और धर्ममे पक्की निष्ठा रखने-वाले होते है। वे बड़े-बड़े खेतोके बीच बसते है। उनके खेतोके विस्तारकी कल्पना हमें नही हो सकती। हमारे किसानोके खेतके मानी होते है दो या तीन बीघे जमीन। अकसर इससे भी छोटे होते है। उनके खेतोंका स्वरूप यह है कि एक-एक आदमीके पास सैकड़ों-हजारो बीघा जमीन होती है। यह सारी जमीन तत्काल जोत डालनेका लोभ भी इन किसानोको नही होता। कोई उनसे दलील करे तो कहते है—"पड़ी रहने दो। जिस जमीनको हम न जोतेगे उसे हमारी सतान जोतेगी।"

हर एक बोअर युद्धकलाका पूरा पडित होता है। वे आपसमें भले ही लड़ते-झगड़ते रहे, पर अपनी आजादी उन्हे इतनी प्यारी होती है कि जब उनके ऊपर हमला होता है तो सारे बोअर उसका सामना करनेको जुट जाते है और एकजान होकर लडते है। उन्हे लंबी कवायदकी जरूरत नही होती, क्योकि लड़ना सारी जातिका स्वभाव या सहज गुण है। जनरल स्मट्स, जनरल डी वेट, जनरल हर्जोग, तीनों बड़े वकील और बडे किसान है और तीनों वैसे ही बड़े लड़वैया भी है। जनरल बोथाके पास नौ हजार एकडका एक खेत था। खेतीके सारी पेचीदगिया उन्हे मालूम थी। सुलहके लिए जब वह यूरोप गये तब उनके बारेमे कहा गया कि भेड़ोकी परीक्षामे उनके-जैसा कुशल यूरोपमे भी शायद ही कोई हो। यही जनरल बोथा

स्वर्गीय राष्ट्रपति क्रूगरके स्थानापन्न हुए। उन्हे अग्रेजी अच्छी आती थी, फिर भी इगलैंडमे जब वे बादशाह और मन्त्रिमडलसे मिले तब उन्होने सदा अपनी मातृभापामे ही बातचीत करना पसंद किया। कौन कह सकता है कि उनका यह आग्रह उचित नही था ? अपना अग्रेजीका ज्ञान दिखानेके लिए गलतिया करनेकी जोखिम वह क्यो उठाये ? उपयुक्त शब्दकी तलाशमे उनके विचारोकी शृखला टूट जाय, यह साहस वह किस लिए करे ? मन्त्रिगण अनजानमे कोई अपरिचित अग्रेजी मुहावरा बोल जाय, वह उसका अर्थ न समझे और कुछ-का-कुछ जवाब दे जाए, शायद घबरा जाए और यो उनका काम बिगड जाय, ऐसी सगीन गलती वह क्यो करे ?

बोअर पुरुष जैसे बहादुर और सीधे है, बोअर स्त्रिया भी वैसी ही बहादुर और सरल स्वभावकी होती है। बोअर युद्ध-के समय जो बोअर लोगोने अपना खून बहाया वह बलि वे बोअर स्त्रियोकी हिम्मत और उनसे मिलनेवाले बढावेके बल-पर ही दे सके। इन स्त्रियोको न अपना सुहाग उजडने-का डर था और न भविष्यकी ही चिंता थी। मै कह चुका हू कि बोअर लोग ईसाई है और धर्ममे पक्की आस्था रखनेवाले है। पर वे हजरत ईसाके नये इकरारनामे (न्यू टेस्टामेट) को मानते है, यह नही कह सकते। सच पूछिए तो यूरोप ही नये इकरार-नामेको कहा मानता है ? फिर भी यूरोपमे नये इकरार-नामेका आदर करनेका दावा किया ही जाता है, गोकि कुछ ही यूरोपवासी ईसामसीहके शाति-धर्मको जानते और उसका पालन करते है। पर बोअर लोगोके बारेमे तो कह सकते है कि वे नये करारका नामभर जानते है। पुराने करार (ओल्ड टेस्टामेट) को वे अवश्य भावपूर्वक पढते और उसमे जो लडाइयोका वर्णन है उसे कठ करते है। हजरत मूसाका 'दातके बदले दांत और आखके बदले आख' की शिक्षाको वे

पूरे तौरसे मानते हैं और जैसा मानते हैं वैसा ही आचरण भी करते हैं।

बोअर स्त्रियोंने भी यह मानकर कि अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षाके खातिर जितना भी दु:ख सहन करना पड़े वह धर्मका आदेश है, धीरज और आनंदसे सारी मुसीबतें सह लीं। उन्हें झुकानेके लिए स्वर्गीय लार्ड किचनरने कोई उपाय उठा नहीं रखा। उन्हें जुदा-जुदा शिविरों या इहातोंमें बंद करवा दिया, जहां उनपर असह्य आपत्तियां आईं, खाने-पीनेकी सांसत, ठंडसे और गरमी-धूपसे बेहाल। कोई शराब पीकर बदहवास या कामांध सैनिक इन असहाय स्त्रियोंपर आक्रमण भी कर बैठता। इन इहातोंमें अनेक प्रकारके उपद्रव हुआ करते थे। फिर भी ये बहादुर स्त्रियां न झुकीं। अंतमें बादशाह एडवर्डने लार्ड किचनरको लिखा—"मुझसे यह सहन नहीं हो सकता। बोअर स्त्रियोंको झुकानेका अगर हमारे पास यही इलाज हो तो इसकी बनिस्बत चाहे जैसी भी सुलह कर लेना मैं पसंद करूंगा। आप लड़ाईको जल्दी समेटिये।"

इस सारे दु:ख-दर्दकी आवाज जब इंगलैंड पहुंची तब ब्रिटिश जनता बहुत दु:खी हुई। बोअरोंकी बहादुरीसे वह आश्चर्यचकित हो रही थी। ऐसी छोटी-सी जाति दुनियाको घेर रखनेवाली सल्तनतके छक्के छुड़ा दे, यह बात तो ब्रिटिश जनताके मनमें चुभती ही रहती थी। पर जब उसे इन इहातोंके भीतर बंद स्त्रियोंका आर्तनाद, उन स्त्रियोंके द्वारा नहीं, उनके मर्दोंके द्वारा भी नहीं—वे तो रणमें ही जूझ रहे थे—बल्कि उन इक्के-दुक्के उदार-चरित अंग्रेज स्त्री-पुरुषोंके जरिये, जो उस वक्त दक्षिण अफ्रीकामें मौजूद थे, पहुंचा तो उसके अंदर अनुतापका उदय हुआ। स्वर्गीय सर हेनरी केम्पबेल बैनरमैनने अंग्रेज जनताके हृदयको पहचाना और युद्धके विरुद्ध

गर्जना की। स्वर्गीय श्रीस्टेडने प्रकट रूपसे ईश्वरसे प्रार्थना की कि वह इस युद्धमे अग्रेजोको हरा दे और दूसरोको भी वैसा करनेकी प्रेरणा की। यह दृश्य अद्भुत था। सच्चा दु:ख सचाईके साथ सहा जाय तो वह पत्थरके दिलको भी पानी कर देता है। यह है इस कष्ट-सहन अर्थात् तपस्याकी महिमा और इसमे ही सत्याग्रहकी कुजी है।

इसका फल यह हुआ कि फ्रीनिखनकी सुलह हुई और दक्षिण अफ्रीकाके चारो राज्य एक शासन-प्रबंधके नीचे आये। यद्यपि इस सुलहकी बात अखबार पढनेवाले हर हिंदुस्तानीको मालूम है, फिर भी एक-दो बाते ऐसी है जिनकी कल्पनातक बहुतोको होना मुमकिन नही। फ्रीनिखनकी सुलह होते ही दक्षिण अफ्रीकाके चारों राज्य एकमे मिल गये हो सो बात नही। हर एककी अपनी धारा सभा थी। उनका शासक मण्डल धारा सभाके सामने पूरे तौरपर जवाब-देह न था। ट्रासवाल और फ्री स्टेटकी राज्य व्यवस्था 'क्राउन-कॉलोनी'—शाही उपनिवेश—के ढगकी थी। ऐसे सकुचित अधिकारसे जनरल बोथा या जनरल स्मट्सको सतोष न हो सकता था। फिर भी लार्ड मिलनरने बिना दूल्हेकी बरात निकालना मुनासिब समझा। जनरल बोथा और जनरल स्मट्स धारा सभासे अलग रहे। उन्होंने असहयोग किया। सरकारसे संबध रखनेसे साफ इनकार कर दिया। लार्ड मिलनरने तीखा भाषण किया और कहा कि जनरल बोथाको यह मान लेनेकी जरूरत नही है कि यह सारा भार उन्हीके सिर है। राज्यव्यवस्था उनके बिना भी चल सकती है।

बोअरोकी बहादुरी, उनकी स्वतत्रता, उनकी कुरबानीके बारेमे मैने दिल खोलकर लिखा है। फिर भी पाठकोके मनपर यह छाप डालनेका मेरा इरादा नही था कि संकटकालमे भी उनमे मतभेद नही हो सकता, या उनमे कोई कमजोर दिल-

वाला था ही नही। लार्ड मिलनर बोअरोमे भी सहजमे राजी हो जानेवाला दल खड़ा कर सके और यह मान लिया कि इसकी मददसे मै धारा सभाको चमका सकूगा। एक नाटककार भी मुख्य पात्र—नायक—के विना अपने नाटकको सुंदर नही बना सकता। फिर इस कठोर संसारमे राजकाज चलानेवाला आदमी प्रधान पात्रको भूल जाय और सफल होनेकी आशा रखे तो वह पागल ही कहा जायगा। सचमुच लार्ड मिलनरकी यही दशा हुई। यह भी कहा जाता था कि उन्होने धमकी तो दे दी, पर जनरल बोथाके विना ट्रासवाल और फ्री स्टेटका राज्य-प्रबंध चलाना उन्हे इतना कठिन हो गया कि अपने बगीचेमें अक्सर चितातुर और बदहवास दिखाई देते थे। जनरल बोथाने स्पष्ट शब्दोमे कह दिया कि फ्रीनिखनके सुलहनामेका अर्थ मैने तो साफ तौरपर यही समझा था कि बोअर लोगोको अपनी भीतरी व्यवस्थाका पूरा-पूरा अधिकार तुरंत मिल जायगा। उन्होने यह भी कहा कि ऐसा न होता तो मै कभी उसपर दस्तखत न करता। लार्ड किचनरने इसके जवाबमे कहा कि मैने जनरल बोथाको इस तरहका कोई विश्वास नही दिलाया था। बोअर जनता ज्यों-ज्यों विश्वासकी अधिकारिणी सिद्ध होती जायगी त्यों-त्यों उन्हे स्वतंत्रता मिलती जायगी। अब इन दोनोके बीच कौन इंसाफ करे? कोई किसीको पंच मान लेनेकी बात कहे तो भी जनरल बोथाको वह क्यों मंजूर होने लगी? इस अवसरपर बड़ी सरकारने जो न्याय किया वह उसको संपूर्ण रीतिसे शोभा देनेवाला था। उसने यह मंजूर किया कि विपक्षने—उसमे भी निर्बल पक्षने—समझौतेका जो अर्थ समझा हो वह अर्थ सबल पक्षको स्वीकार करना ही चाहिए। न्याय और सत्यकी नीतिसे तो सदा यही अर्थ ठीक होता है। अपने कथनका मैने अपने मनमे चाहे जो अर्थ रखा हो, फिर भी मुझे मानना चाहिए कि उसका जो असर सुनने या पढ़नेवालेके मनपर पड़ता हो उसी अर्थमे

मैने अपनी बात कही या लेख लिखा। इस सुनहले नियमका पालन हम व्यवहारमे अकसर नही करते, इसीसे बहुतसे विवाद पैदा होते है और सत्यके नामपर अर्धसत्य—वस्तुत डेढ असत्य—काममे लाया जाता है।

इस प्रकार जब सत्यकी—यानी यहा जनरल बोथाकी, पूरी विजय हुई तब वे काममे जुट गये। इसके फलस्वरूप सब राज्य इकट्ठे हो गये और दक्षिण अफ्रीकाको सपूर्ण स्वाधीनता मिल गई। उसका झडा यूनियन जैक है। नक्शेमे इस प्रदेशका रग लाल है। फिर भी दक्षिण अफ्रीका पूरे तौरपर स्वतत्र है, यह माननेमे तनिक भी अतिशयता नही है। ब्रिटिश साम्राज्य दक्षिण अफ्रीकाका कारबार करनेवालोकी रजामदीके बिना वहासे एक पाई भी नही ले सकता। इतना ही नही, ब्रिटिश मत्रियोने स्वीकार कर लिया है कि दक्षिण अफ्रीका ब्रिटिश झंडेको उतार फेकना और नामसे भी स्वतत्र हो जाना चाहे तो उसे कोई रोकनेवाला नही है। और अगर वहाके गोरोने अबतक ऐसा कदम नही उठाया तो इसके सबल कारण है। एक तो यह कि बोअर जनताके नेता चतुर और समझदार है। ब्रिटिश साम्राज्यके साथ इस तरहकी साझेदारी या सबध, जिसमे खुद उन्हे कुछ भी खोना न पडे, वे रखें तो इसमे कोई दोष नही। पर इसके सिवा दूसरा व्यावहारिक कारण भी है। और वह यह कि नेटालमे अग्रेजोकी सख्या अधिक है। केप कालोनीमे अग्रेजोकी सख्या अधिक है, पर बोअर लोगोसे ज्यादा नही है और जोहान्सबर्गमे केवल अग्रेजोका ही प्रभाव है। इसलिए बोअर जाति सारे दक्षिण अफ्रीकामे स्वतत्र प्रजातत्र राज्य स्थापित करना चाहे तो यह घरमे ही झगडा खडा कर लेना है और शायद गृहयुद्ध भी भडक उठे। इसीसे दक्षिण अफ्रीका आज भी ब्रिटिश उपनिवेश कहलाता है।

यूनियनका विधान किस तरह बना यह भी जानने लायक

बात है। चारो राज्योकी धारा सभाओने एकमत होकर यूनियन संयुक्तराज्यका विधान बनाया। ब्रिटिश पार्लमेट-को उसे अक्षरश स्वीकार कर लेना पडा। आम सभाके एक सदस्यने उसके एक व्याकरण-दोषकी ओर ध्यान खीचकर गलत शब्द निकाल देनेकी सलाह दी। स्वर्गीय सर हेनरी कैम्पबेल बैनरमैनने इस सुझावको नामंजूर करते हुए कहा कि राज्य-व्यवस्था शुद्ध व्याकरणसे नही चला करती। यह विधान ब्रिटिश मन्त्रिमडल और दक्षिण अफ्रीकाके मंत्रियोमें मशवरा होकर तैयार हुआ है। उसका व्याकरण-दोपतक दूर करनेका अधिकार ब्रिटिश पार्लमेटके लिए नही रखा गया है। फलत यह विधान ज्यो-का-त्यों आम-सभा और उमराव सभा दोनोको मजूर करना पडा।

इस प्रसगमे एक तीसरी बात भी उल्लेखनीय है। विधान-मे कितनी ही धाराए ऐसी है जो तटस्थ व्यक्तिको अवश्य बेकार मालूम होगी। उनके कारण खर्च भी बहुत बढा है। यह दोष विधान बनानेवालेकी दृष्टिके बाहर नही था, पर उनका उद्देश्य पूर्णता प्राप्त करना नही था, बल्कि कुछ घट-बढकर एकमत होना और अपने प्रयत्नको सफल करना था। इसीसे इस वक्त यूनियनकी चार राजधानियां मानी जाती है, क्योकि उपराज्योमेंसे कोई भी अपनी राजधानीका महत्त्व छोड देनेको तैयार नही है। चारों राज्योकी स्थानीय धारा सभाए भी कायम रखी गई हैं। चारों राज्योंको गवर्नर-जैसा कोई अधिकारी भी चाहिए ही। इससे चार प्रातीय शासक स्वीकार किए गये हैं। हर आदमी समझता है कि चार स्थानीय धारा सभाए, चार राजधानियां और चार हाकिम बकरीके गलेके स्तनकी तरह निरर्थक और निरे आडबररूप है। पर दक्षिण अफ्रीकाके व्यवहारकुशल राजनीतिज्ञोंने इसकी परवा न की। इस प्रबंधमे आडबर था और खर्च

के लिए क्यों बंधे ? और जबतक पक्के, बारहमासी मजदूर न मिले तबतक अंग्रेज अपना अभीष्ट सिद्ध न कर सकते थे। अत. उन लोगोंने भारत-सरकारके साथ लिखा-पढ़ी शुरू की और हिंदुस्तानसे मजदूरोंकी मदद मांगी। भारत-सरकारने नेटालकी मांग मंजूर की और हिंदुस्तानी मजदूरोंका पहला जहाज १८६० की १६ वीं नवंबरको नेटाल पहुंचा। दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके इतिहासमें यह तारीख महत्व पूर्ण है, क्योंकि इस पुस्तक और इसके विषयका मूल इसी घटनामें है।

मेरे विचारसे भारत-सरकारने यह मांग मंजूर करनेमें भलीभांति सोचा-विचारा नहीं। यहांके अंग्रेज अधिकारी जाने-बेजाने नेटालके अपने भाइयोंकी ओर झुके। अवश्य ही जहांतक हो सकता था, मजदूरोंके बचावकी शर्तें उन्होंने इकरारनामेमें दाखिल करा दी और उनके खाने-पीनेका सामान्य सुभीता भी करा दिया; पर यों दूर देशको गये हुए अपढ़ मजदूरोंपर कोई कष्ट पड़े तो वे उससे कैसे छुटकारा पा सकेंगे, इसका पूरा खयाल तो उन्हें नहीं रहा। उनके धर्मका क्या होगा, अपनी नीतिकी रक्षा वे कैसे करेंगे, इसका तो विचार भी नहीं किया गया। अधिकारियोंने यह भी न सोचा कि गो कानूनमें गुलामी उठ चुकी है, पर मालिकोंके दिलसे तो दूसरोंको गुलाम बनानेका लोभ अभी नहीं मिटा है। उन्हें यह समझना चाहिए था; पर उन्होंने नहीं समझा कि ये मजदूर दूर देशमें जाकर एक बंधी मुद्दतके लिए गुलाम हो जाएंगे। सर विलियम विलसन हंटरने, जिन्होंने इस स्थितिका गहरा अध्ययन किया था, इसकी तुलना करते हुए दो शब्दों या शब्दसमूहका व्यवहार किया था। नेटालके ही भारतीय मजदूरोंके बारेमें लिखते हुए एक बार उन्होंने लिखा कि यह आधी गुलामीकी स्थिति है। दूसरे वक्त अपने पत्रके अंदर उन्होंने

इसका वर्णन यह कहकर किया कि यह स्थिति गुलामीकी हदके पास पहुच रही है—उससे मिलती-जुलती है। नेटालके एक कमीशनके सामने गवाही देते हुए वहाके बड़े-से-बडे यूरोपियन—स्वर्गीय श्री एस्कवने भी यही बात कबूल की। ऐसे बहुतसे सबूत तो नेटालके अग्रगण्य गोरोके मुहसे—उनके बयानोसे ही दिए जा सकते है। उन बयानोमेंसे अधिकाश उस अरजीमे शामिल कर लिए गये है जो इस बारेमे भारत सरकारके पास भेजी गई थी। पर होनहार होकर ही रही और जो स्टीमर इन मजदूरोको नेटाल ले गया वह सत्याग्रहके महान् वृक्षका बीज भी अपने साथ ले गया।

मजदूरोको नेटालके दलाल हिंदुस्तानियोने किस तरह ठगा, कैसे उनके जालमे फसकर ये लोग नेटाल पहुचे, वहा पहुचनेपर उनकी आंखे कैसे खुली, आख खुल जानेपर भी वे नेटालमे क्यो बने रहे, कैसे उनके पीछे दूसरे भी वहां पहुचे, वहा पहुचकर उन्होने धर्म और नीतिके सारे बधन कैसे तोड फेके अथवा ये बधन खुद टूट गये, कैसे विवाहिता पत्नी और वेश्याके बीचका भेदतक नही रहा, इस सबकी कहानी तो इस छोटी-सी पुस्तकमें लिखी ही नही जा सकती।

इन मजदूरोको नेटालमे एग्रिमेंटमें गये हुए मजदूर कहते है। इससे ये अपने आपको 'गिरमिटिया' कहने लगे। इसलिए आगेसे हम 'एग्रिमेंट'को 'गिरमिट' और उसके अंदर गये हुए मजदूरोको 'गिरमिटिया' कहेगे।

नेटालमे गिरमिटियोके जानेकी खबर जब मारिशस पहुची तब इस तरहके मजदूरोमे सबध रखनेवाले हिंदुस्तानी व्यापारी वहा जानेको ललचाये। मारिशस नेटाल और हिंदुस्तानके बीचमें पडता है। उस देशमे हजारों हिंदुस्तानी मजदूर और व्यापारी बसते है।

उनमेंसे एक व्यापारी स्वर्गीय सेठ अबूबकर आमदने नेटालमें दुकान खोलनेका इरादा किया। इस वक्त नेटालके अंग्रेजोंका हिंदुस्तानी व्यापारी क्या कर सकते हैं, इसका पता नहीं था, इसकी परवा भी नहीं थी। गिरमिटियोंकी मददसे वे ईख, चाय, कहवे वगैरहकी नफा देनेवाली फसल उपजा सके। ईखकी शकर बनाकर इतने थोड़े समयमें छोटे पैमानेपर दक्षिण अफ्रीकाको ये शकर, चाय और कहवा देने लगे कि देखकर अचरज हो। अपनी कमाईसे उन्होंने महल खड़े किये और सचमुच जंगलमें मंगल कर दिया। ऐसे समय सेठ अबूबकर-सरीखा अच्छा, भला और चतुर व्यापारी उनके बीचमें जा बसे तो यह उन्हें क्यों न खटकता? फिर इनके साथ तो एक अंग्रेज भी साथी हो गया! सेठ अबूबकरने अपना व्यापार चलाया, जमीन खरीदी और उनके अच्छा पैसा कमानेकी खबर उनके वतन पोरबंदर और उसके आस-पासके गांवोंमें फैली। फलत. दूसरे मेमन नेटाल पहुंचे। उनके पीछे सूरतकी ओरके वोहरे भी पहुंचे। उन्हें मुनीम तो चाहिए ही। अतः गुजरात, काठियावाड़के हिंदू मुनीम भी वहां पहुंचे।

इस प्रकार नेटालमें दो वर्गके हिंदुस्तानी बसे: १. स्वतंत्र व्यापारी और उनके स्वतंत्र कर्मचारी और २. गिरमिटिया। कुछ दिनोंमें गिरमिटियोंके बाल-बच्चे हुए। गिरमिटके कानूनके अनुसार उनकी संतान यद्यपि मजदूरी करनेके लिए बंधी नहीं थी, फिर भी इस कानूनकी कुछ कठोर धाराओंके अधीन तो थी ही। गुलामीका दाग गुलामकी औलादको लगे बिना कैसे रहता? ये गिरमिटिया पांच बरसके इकरारपर जाते थे। पांच साल पूरे हो जानेपर वे मजदूरी करनेको बंधे नहीं थे। उन्हें खुली मजदूरी या व्यापार करना और नेटालमें स्थायी रूपसे बसना हो तो इसका उन्हें हक था। कुछने इस अधिकार-

का उपयोग किया, कुछ हिंदुस्तान लौट आये। जो नेटालमें रह गये वे 'फ्री इंडियंस' कहलाने लगे। हम उन्हे 'गिरमिट मुक्त' या थोडेमे 'मुक्त हिंदुस्तानी' कहेगे। इस अंतरको समझ लेना जरूरी है, क्योकि जो अधिकार पूर्ण स्वतंत्र भारतीय, जिनका जिक्र ऊपर किया गया है, भोग रहे थे वे सभी इस बधनसे मुक्त हुए हिंदुस्तानियोको प्राप्त नही थे। जैसे उन्हे एकसे दूसरी जगह जाना हो तो उनके लिए परवाना लेना जरूरी था। वे ब्याह करे और चाहते हो कि वह कानूनसे जायज माना जाय तो जरूरी था कि गिरमिटियोकी रक्षाके लिए नियुक्त अधिकारी (प्रोटेक्टर आव इडियन इमिग्राट्स) के दफ्तरमे जाकर उसे दर्ज कराये, आदि। इनके सिवा दूसरे भी कठोर अंकुश उनपर थे।

ट्रांसवाल और फ्री स्टेटमे १८८०-९० मे बोअर लोगोके प्रजातन्त्र राज्य थे। प्रजातन्त्र राज्यका अर्थ भी यहां स्पष्ट कर देना जरूरी है। प्रजातन्त्र यानी गोरातन्त्र। हबशी जनता-का उसमे कुछ लेना-देना हो ही नही सकता था। हिंदुस्तानी व्यापारियोने देखा कि हम केवल गिरमिटिया और गिरमिट-मुक्त हिंदुस्तानियोमे ही अपना रोजगार कर सकते हो ऐसी बात नही है। हम हबशियोके साथ भी व्यापार कर सकते है। हबशी लोगोके लिए हिंदुस्तानी व्यापारी बडे सुभीतेकी चीज साबित हुए। गोरे व्यापारियोसे वे बहुत ज्यादा डरते थे। गोरा व्यापारी उनके साथ व्यापार करना तो चाहता था; पर हबशी ग्राहक उससे यह आशा रख ही नही सकता था कि वह मीठी जबानसे उसे बुलायेगा। अपने पैसेके बदलेमे पूरा माल पा जाता तो वह धन्य भाग समझता। पर कुछको यह कड़वा अनुभव भी हुआ कि चार शिलिंगकी चीज लेनी है और दुकानदारके सामने एक पौडका सिक्का रख दिया; पर उसे १६ के बदले ४ शिलिंग ही वापस मिले या कुछ भी न मिला।

गरीब ग्राहक अधिक मांगे, हिसावकी गलती दिखाये तो वदलेमे गंदी गालियां पाए। इतनेसे ही छूट जाय तो भी गनीमत समझिये, नही तो गालीके साथ घूसा या लात भी मिलती। मेरे कहनेका यह मतलब हर्गिज नहीं कि सभी अंग्रेज व्यापारी ऐसा करते है। पर ऐसी मिसाले काफी तादादमें मिलती है, यह तो जरूर कहा जा सकता है। इसके विपरीत हिंदुस्तानी व्यापारी हवशी ग्राहकको मीठी वोलीसे तो वुलाता ही है, उसके साथ हँसकर वात भी करता है। हवशी भोला होता है। वह चाहता है कि दुकानके अदर जाकर चीजोंको देखे-भाले। हिंदुस्तानी व्यापारी इस सवको सह लेता है। यह सही है कि वह परमार्थ दृष्टिसे ऐसा नही करता, इसमे उसकी स्वार्थदृष्टि होती है। मौका मिल जाय तो हिंदुस्तानी व्यापारी हवशी ग्राहकको ठगनेसे भी नही चूकता; पर हवशियोमे भारतीय व्यापारीकी प्रियताका कारण उसकी मिठास—उसका मधुर व्यवहार है। फिर हवशी हिंदुस्तानी व्यापारीसे डरता तो कभी नहीं। उलटी ऐसी मिसाले मौजूद है कि किसी हिंदुस्तानी दुकानदारने हवशी ग्राहकको ठगनेकी कोशिश की और वह जान गया तो उसके हाथो उस व्यापारीकी मरम्मत भी हो गई। गालियां तो उसे अकसर मिला करती है। इस प्रकार हवशी और हिंदुस्तानीके संबंधमें डरनेका कारण हिंदुस्तानीके लिए ही होता है। अंतमे इसका फल यह हुआ कि भारतीय व्यापारीके लिए हवशियोंकी ग्राहकी वहुत लाभजनक सिद्ध हुई। हवशी तो सारे दक्षिण अफ्रीकामें फैले हुए है ही। हिंदुस्तानी व्यापारियोने सुन रखा था कि ट्रांसवाल और फ्री स्टेटमे वोअर लोगोंके वीच भी व्यापार किया जा सकता है। वोअर सीधे, भोले और दिखावेसे दूर रहनेवाले होते है। हिंदुस्तानीकी दुकानसे सौदा खरीदनेमें उन्हें शर्म नही लगती। अतः कितने ही हिंदुस्तानी व्यापा

रियोने ट्रासवाल और फ्री स्टेटकी ओर भी पयान किया। उन्होने वहा दुकाने खोली। उन दिनो वहा रेले आदि नही थी। इसलिए खूब अधिक नफा मिल सकता था। व्यापारियोका खयाल सही निकला। बोअरो और हबशियोमे उनका माल खूब बिकने लगा। रह गई केप कॉलोनी। वहा भी कितने ही हिंदुस्तानी व्यापारी पहुच गये और अच्छी खासी कमाई करने लगे। इस प्रकार छोटी-छोटी सख्याओमे चारो उपनिवेशोमे हिंदुस्तानी बट गये और तत्काल समस्त स्वतत्र भारतीयोकी तादाद चालीससे पचास हजारके बीच और गिरमिटमुक्त हिंदुस्तानियोकी एक लाख होनेका अदाजा किया जाता है। ये पक्तिया लिखते समय इस सख्यामे मुमकिन है, कुछ कमी हुई हो, पर बेशी हरगिज नही हुई है।

: ४ :

मुसीबतोंका सिंहावलोकन—१

नेटाल

नेटालके गोरे मालिकोको महज गुलाम दरकार थे। एस मजदूर वे नही चाहते थे, जो नौकरी करनेके बाद आजाद होकर उनके साथ थोडी-सी भी प्रतियोगिता कर सके। ये गिरमिटिया गो इसीलिए नेटाल गये थे कि हिंदुस्तानमे अपनी खेती-बारी आदिमे बहुत सफल नही हो सके थे, फिर भी ऐसे नही थे कि खेतीका कुछ भी ज्ञान न रखते हो या जमीन और खेतीकी कीमत न समझते हो। उन्होने देखा कि नेटालमे अगर हम साग-भाजी भी बोये तो अच्छी उपज कर सकते है और अगर जमीनका एक छोटा-सा टुकड़ा भी ले ले तो उससे और ज्यादा पैसा कमा सकते है। अत. बहुतसे गिरमिटिया

जब नौकरीके बंधनसे मुक्त हुए तब कोई-न-कोई छोटा-मोटा धंधा करने लग गये। इससे कुल मिलाकर तो नेटाल-जैसे देशमें बसनेवालोको लाभ ही हुआ। अनेक प्रकारकी साग-सब्जियां जो कुशल किसानोके अभावके कारण अबतक पैदा नही होती थी अब उपजने लगी। जो चीजे जहां-तहां थोड़ी-बहुत उपजती थी वे अब अधिक मात्रामे मिलने लगी। इससे साग-सब्जीका भाव एकबारगी गिर गया। पर यह बात पैसेवाले गोरोको न रुची। उन्होंने सोचा कि आजतक जिस चीजको हम अपना इजारा[1] मानते थे उसमे अब हिस्सा बटानेवाले पैदा हो गए। इससे इन गरीब गिरमिटियोके विरुद्ध आंदोलन आरभ हुआ। पाठकोंको यह जानकर अचरज होगा कि गोरे एक ओर तो ज्यादा-से-ज्यादा मजदूर मांग रहे थे, हिंदुस्तानसे जितने गिरमिटिया आते वे तुरंत खप जाते, और दूसरी ओर जो मजदूर गिरमिटसे मुक्त होते जाते उनपर तरह-तरहके अकुश रखनेके लिए आंदोलन चल रहा था। यह था उनकी होशियारी और जीतोड़ मेहनतका मुआवजा!

आंदोलनने कितने ही रूप धारण किये। एक पक्षने यह मांग पेश की कि जो गिरमिटिया गिरमिटसे मुक्त हो चुके है वे हिंदुस्तान लौटा दिए जाय और पुराना इकरारनामा बदलकर नये इकरारनामेमे नये आनेवाले मजदूरोसे यह शर्त लिखा ली जाय कि गिरमिटसे मुक्त होनेपर वे या तो हिंदुस्तान लौट जाएगे या फिरसे गिरमिटमे दाखिल हो जाएगे। दूसरे पक्षने यह मत प्रकट किया कि गिरमिटसे छुटकारा पानेपर वे नया इकरारनामा लिखना पसद न करे तो उनसे भारी वार्षिक 'व्यक्ति-कर' लिया जाय। दोनो दलोका मतलब तो एक ही था कि जैसे भी हो गिरमिटियावर्ग किसी भी दशामे नेटाल-

---

[1]एकाधिकार।

में स्वतंत्र होकर न रह सके। कोलाहल इतना बढा कि अंतमें नेटालकी सरकारने एक कमीशन नियुक्त कर दिया। दोनो पक्षोकी माग सोलह आने गैरवाजिब थी और गिरमिटियोकी उपस्थिति आर्थिक दृष्टिसे सपूर्ण जनताके लिए सब प्रकार लाभदायक थी। इसलिए कमीशनके सामने जो स्वतंत्र गवाहिया हुईं वे उक्त दोनो पक्षोके विरुद्ध थी। फलत. तात्कालिक परिणाम तो विरुद्ध पक्षकी दृष्टिसे कुछ भी न हुआ, पर जैसे आग बुझ जानेके बाद अपना कुछ निशान छोड ही जाती है, वैसे ही यह आदोलन भी नेटाल सरकारपर अपनी छाप छोड गया। नेटालकी सरकारके मानी थे खासतौरसे धनिक वर्गकी हिमायती सरकार। अत. भारत-सरकारके साथ उसका पत्र-व्यवहार आरभ हुआ और दोनो पक्षोंके सुझाव उसके पास भेजे गए। पर हिंद सरकार यकायक ऐसा सुझाव कैसे स्वीकार कर सकती थी, जिससे गिरमिटिए हमेशाके लिए गुलाम बन जाते? हिंदुस्तानियोका गिरमिटमे बाधकर इतनी दूर भेजनेका एक कारण या बहाना यह था कि गिरमिटकी मियाद पूरी होनेपर गिरमिटिए आजाद होकर अपनी शक्तिका पूर्ण विकास और उस अनुपातसे अपनी आर्थिक स्थितिको सुधार सकेंगे। नेटाल इस वक्त भी 'क्राउन कॉलोनी (शाही उपनिवेश) था और ऐसे उपनिवेशोके शासन-प्रबधके लिए उपनिवेश विभाग भी पूरी तरह जिम्मेदार माना जाता था। इसलिए नेटालको अपनी अन्याय-पूर्ण इच्छा पूरी होनेमे उससे मदद नहीं मिल सकती थी। इससे और ऐसे ही दूसरे कारणोसे नेटालमें उत्तरदायी शासनाधिकार प्राप्त करनेका आंदोलन आरंभ हुआ। १८९३ में यह अधिकार उसे मिल गया। अब नेटालमें बल आया। उपनिवेश-विभागके लिए भी अब नेटालकी मागोको, वे कैसी ही क्यो न हों, मंजूर कर लेना अधिक कठिन नही रहा। नेटालकी इस नई यानी जवाब-

देह सरकारकी ओरसे हिंदुस्तानकी सरकारसे मशवरा करनेके लिए राजदूत भेजे गए। उनकी मांग यह थी कि हर एक गिरमिट मुक्त हिंदुस्तानीपर २५ पौंड यानी ३७५) रु० का वार्षिक व्यक्ति-कर लगाया जाय। इसके मानी यह होते थे कि कोई भी हिंदुस्तानी मजदूर यह कर अदा न कर सके और फलतः आजाद होकर नेटालमें न रह सके। तत्कालीन वाइसराय लार्ड एल्गिनको यह प्रस्ताव बहुत भारी लगा और अंतमें उन्होंने ३ पौंडका वार्षिक व्यक्ति-कर मंजूर किया। गिरमिटियाकी कमाईके हिसाबसे तीन पौंडके मानी उसकी लगभग दो महीनेकी कमाई होते थे। यह कर केवल मजदूरपर ही नहीं था। उसकी स्त्री, तेरह बरससे ऊपरकी लड़की और सोलहसे ऊपरके लडकेको भी देना था। ऐसा मजदूर शायद ही हो जिसके स्त्री और दो बच्चे न हों। अतः मोटे हिसाबसे हर मजदूरको १२ पौंड वार्षिक कर अदा करना था। यह कर कितना कष्टदायक हो गया, इसका वर्णन नहीं हो सकता। उस दुःखको केवल वही जान सकता है जिसने उसका अनुभव किया हो, या थोड़ा बहुत वह समझ सकता है जिसने उसे अपनी आंखों देखा हो। नेटाल सरकारके इस कार्यका भारतीय जनताने कसकर विरोध किया। बडी (ब्रिटिश) और भारत-सरकारके पास अर्जियां भेजी गईं। पर इस आंदोलनका नतीजा इससे अधिक और कुछ न निकला कि २५ के ३ पौंड हो गए। गिरमिटिया बेचारे खुद तो इस मामलेमें क्या कर सकते थे? आंदोलन तो महज हिंदुस्तानी व्यापारीवर्गने देशके दर्दसे कहिये या परार्थ दृष्टिसे किया था।

जो सलूक गिरमिटियोंके साथ किया गया वही स्वतंत्र भारतीयोंके साथ भी हुआ। नेटालके गोरे व्यापारियोंने उनके खिलाफ भी मुख्यत. इन्हीं कारणोंसे आंदोलन चलाया। हिंदुस्तानी व्यापारी अच्छी तरह जम गए थे। उन्होंने नगरके अच्छे

भागोमे जमीने खरीद ली थी। गिरमिटसे छूटे हुए हिंदुस्तानियोकी आबादी ज्यो-ज्यो बढती गई त्यो-त्यो उनको दरकार होनेवाली चीजोकी खपत अच्छी होने लगी। हजारो बोरा चावल हिंदुस्तानस आता और अच्छे नफेपर बिकता। यह व्यापार अधिकाशमे और स्वभावत हिंदुस्तानियोके हाथमे रहा। उधर हबशियोके साथ होनेवाले व्यापारमे भी उनका हिस्सा अच्छा खासा हो गया। छोटे गोरे व्यापारियोसे यह देखा न गया। इसके सिवा इन व्यापारियोको कुछ अग्रेजोने ही यह बताया कि कानूनके अनुसार उन्हे नेटालकी धारा सभाके सदस्य होने और चुननेका हक है। मताधिकारियोकी सूचीमे कुछ नाम भी दर्ज कराये थे। नेटालके राजकाजी गोरे इस स्थितिको न सह सके। उन्हे यह चिंता हो गई कि यो हिंदुस्तानियोकी स्थिति नेटालमे दृढ हो गई और उनकी प्रतिष्ठा बढी तो उनकी प्रतियोगितामे गोरे कैसे टिक सकेगे? अत नेटालकी जवाबदेह सरकारने स्वतत्र भारतीयोके बारेमे जो पहला कदम उठाया वह था ऐसा कानून बना देना जिससे एक भी नया हिंदुस्तानी वोटर या मताधिकारी न हो सके। १८९४ मे इस विषयका पहला बिल नेटालकी धारा सभामे पेश किया गया। इस बिलका मशा था हिंदुस्तानीको हिंदुस्तानीकी हैसियतसे वोट देनेके हकसे वचित कर देना। यह पहला कानून था जो नेटालमे रग-भेदके आधारपर भारतीयोके विरुद्ध बनाया गया। भारतीय जनताने विरोध किया। रातोरात अरजी तैयार हुई। उसपर चार सौ आदमियोसे दस्तखत कराये गए। इस अरजीके पहुचते ही धारा सभा चौकी, पर बिल तो पास होकर ही रहा। उन दिनो लार्ड रिपन उपनिवेश-सचिव थे। उनके पास अरजी भेजी गई। उसपर दस हजार हस्ताक्षर थे। दस हजार हस्ताक्षरके मानी हुए नेटालमे आजाद हिंदुस्तानियोकी लगभग सारी

आबादी। लार्ड रिपनने बिलको नामंजूर किया। उन्होने कहा कि ब्रिटिश साम्राज्य कानूनमे रंगभेदको स्वीकार नही कर सकता। यह जीत कितने महत्त्वकी थी, पाठक इसे आगे चलकर अधिक समझ सकेगे। इसके जवाबमें नेटालकी सरकारने नया बिल पेश किया। इसमे रंग-भेद नही रखा गया, पर अप्रत्यक्ष रीतिसे चोट तो हिंदुस्तानियोपर ही थी। हिंदुस्तानी जनता इसके विरुद्ध भी लड़ी, पर उसका विरोध विफल हुआ। यह कानून दोअर्थी था। उसका पक्का अर्थ करानेके लिए वह आखिरी अदालत यानी प्रिवी-कौसिलतक लड सकती थी, पर लडना ठीक नही समझा गया। मेरा अब भी खयाल है कि न लड़ना ठीक ही हुआ। मूल वस्तु मान ली गई, यही क्या कम था।

पर नेटालके गोरो या वहाकी सरकारको इतनेसे संतोष होनेवाला नही था। हिंदुस्तानियोकी राजनैतिक शक्ति जमने न देना तो एक बहुत जरूरी काम था ही, पर उनकी आंख असलमे तो भारतीय व्यापार और स्वतंत्र भारतीयोके आगमनपर थी। तीस करोडकी आबादीवाला हिंदुस्तान नेटाल-की ओर उलट पडे तो वहाके गोरोकी क्या दशा होगी? वे तो इस समुद्रमे विलीन हो जाएगे। इस आशकासे वे बेचैन हो रहे थे। उस वक्त नेटालकी आबादी मोटे हिसाब से यह थी ४ लाख हबशी, ४० हजार गोरे, ६० हजार गिरमिटिए, १० हजार गिर-मिट-मुक्त और १० हजार स्वतंत्र भारतीय। गोरोके डरके लिए कोई ठोस कारण तो था ही नही, पर डरे हुए आदमीको दलीलसे समझाया नही जा सकता। हिंदुस्तानकी असहाय स्थिति और उसके रस्म-रिवाजसे वे अनजान थे। इससे उनको यह भ्रम हो रहा था कि जैसे साहसी और शक्तिमान हम है वैसे ही हिंदुस्तानी भी होगे और इस कारण उन्होने केवल त्रैराशिकका हिसाब कर लिया। इसलिए उनको दोष कैसे दिया जा

सकता है? जो हो, नतीजा यह हुआ कि नेटालकी धारा सभाने जो दो दूसरे कानून पास किए उनमें भी मताधिकारकी लड़ाईमे हिंदुस्तानियोंकी जीत होनेके फलस्वरूप रग-भेदको दूर रखना पडा और गर्भित भाषासे काम निकालना पडा। इसकी वदौलत स्थिति थोडी-वहुत सम्हली रह सकी। हिंदुस्तानी कौम इस मौकेपर भी खूब लडी, फिर भी कानून तो पास होकर ही रहे। एक कानूनके जरिये भारतीयोके व्यापारपर कठोर अंकुश रखा गया, दूसरेके द्वारा उनके प्रवेश-पर। पहले कानूनका आशय यह था कि कानूनद्वारा नियुक्त अधिकारीकी अनुमतिके विना किसीको भी व्यापारका पर-वाना न मिले। व्यवहारमें यह स्थिति थी कि कोई भी गोरा जाकर अनुमति-पत्र पा सकता था। पर भारतीयको वह वडी कठिनाईसे मिलता। उसमे वकील वगैरहका तो खर्च करना ही पडता। फलत कच्चे और कमजोर दिलवाले तो विना परवानेके ही रह जाते। दूसरे कानूनकी खास शर्त यह थी कि जो हिंदुस्तानी यूरोपकी किसी भी भाषामे प्रवेशका प्रार्थनापत्र लिख सके वही प्रवेशकी अनुमति पाये। अर्थात् करोड़ों हिंदुस्तानियोके लिए तो नेटालका दरवाजा बिल्कुल ही वद हो गया। जान या अनजानमे मुझसे नेटालके साथ अन्याय न हो जाय, इसलिए मुझे यह वता देना चाहिए कि जो भारतीय इस कानूनके पास होनेके तीन साल पहलेसे नेटालमे घर वनाकर रहता हो वह अगर नेटाल छोडकर हिंदुस्तान या और कही जाय और फिर लौटे तो वह अपनी स्त्री और नाबालिग वच्चोके साथ, यूरोपकी कोई भाषा न जाननेपर भी दाखिल हो सकता था। इनके अतिरिक्त गिरमिटियो और स्वतत्र भारतीयोपर दूसरी भी कितनी ही कानूनी और वेकानूनी रुकावटे थी और अबतक है। पर पाठकोंको उन्हे सुनानेकी जरूरत मुझे नही दिखाई देती।

जितना विवरण इस पुस्तकका विषय समझानेके लिए जरूरी है उतनी ही मैं देना चाहता हूं। दक्षिण अफ्रीकाके हर एक राज्यके हिंदुस्तानियोंकी हालतका इतिहास बहुत लंबा होगा, यह तो हर पाठक समझ सकता है, पर ऐसा इतिहास देना इस पुस्तकका उद्देश्य नहीं है।

: ५ :

मुसीबतोंका सिंहावलोकन—२

ट्रांसवाल और दूसरे उपनिवेश

जैसा नेटालमें हुआ वैसा ही कमोवेश दक्षिण अफ्रीकाके दूसरे उपनिवेशोंमें भी हुआ। १८८० के पहलेसे ही हिंदुस्तानियोंको नफरतकी निगाहसे देखना शुरू हो गया और केप कॉलोनीको छोडकर और सभी उपनिवेशोंमें यह धारणा हो गई थी कि हिंदुस्तानी मजदूरके रूपमें तो बहुत अच्छे हैं। पर बहुतेरे गोरोंके मनमें यह बात पक्के तौरसे बैठ गई थी कि स्वतंत्र भारतीयोंसे तो दक्षिण अफ्रीकाकी हानि ही है। ट्रांसवाल प्रजातंत्र राज्य था। उसके अध्यक्षके सामने हिंदुस्तानियोंका यह कहना कि हम ब्रिटिश प्रजा कहलाते हैं, अपनी हँसी कराना था। हिंदुस्तानियोंको कोई भी शिकायत करनी हो तो वे ब्रिटिश दूतके ही पास कर सकते थे। पर ऐसा होते हुए भी अचरजकी बात यह थी कि ट्रांसवाल जब ब्रिटिश साम्राज्यसे बाहर था उस वक्त ब्रिटिश दूत जो मदद कर सकता था वह मदद जब ट्रांसवाल ब्रिटिश साम्राज्यके अंदर मान लिया गया, बिलकुल बंद हो गई। जब लार्ड मोर्ले भारत मंत्री थे और ट्रांसवालके हिंदुस्तानियोंकी वकालत करनेके लिए एक प्रतिनिधि मंडल उनके पास गया तब उन्होंने साफ

कह दिया कि "उत्तरदायी—स्वराज्य भोगी—सरकारोपर बडी (साम्राज्य) सरकारका काबू बहुत ही थोडा होता है। स्वतंत्र राज्यको वह लड़ाईकी धमकी दे सकती है, उससे लडाई कर भी सकती है; पर उपनिवेशोके साथ तो महज मशविरा ही किया जा सकता है। उनके साथ हमारा सबध कच्चे धागेसे जुडा हुआ है। जरा ताना कि टूटा। बलसे तो काम लिया ही नही जा सकता। कलसे—युक्तिसे—जो कुछ कर सकता हू वह सब करनेका विश्वास आपको दिलाता हूं।" ट्रासवालके साथ जब लडाई छिडी तब लार्ड लेंसडाउन, लार्ड सेलवर्न आदि ब्रिटिश अधिकारियोने कहा था कि भारतीयोंकी दु खद स्थिति भी इस युद्धका एक कारण है।

अब हम इस दु खके प्रकरणको देखे। ट्रासवालमे हिंदुस्तानी पहले-पहल १८८१ ई० मे दाखिल हुए। स्वर्गीय सेठ अबूबकरने ट्रासवालकी राजधानी प्रिटोरियामे दुकान खोली और उसके एक खास महल्लेमे जमीन भी खरीदी। इसके बाद दूसरे व्यापारी भी एक-एक करके वहा पहुचे। उनका व्यापार खूब तेजीसे चला तो गोरे व्यापारियोके दिलमे डाह पैदा हुई। अखबारोमे हिंदुस्तानियोके खिलाफ लेख लिखे जाने लगे। धारा सभाको अर्जिया भेजी गईं, जिनमे हिंदुस्तानियोको निकाल बाहर करने और उनका व्यापार बद करा देनेकी प्रार्थनाए की गईं। इस नए देशमे गोरोकी धन-तृष्णाकी कोई हद न थी। नीति-अनीतिका भेद वे शायद ही समझते हो। धारा सभाको उन्होने जो आवेदनपत्र भेजा था उसके अंदर इस तरहके वाक्य है—"ये लोग (हिंदुस्तानी व्यापारी) मानवी सभ्यता क्या चीज है यह जानते ही नही। वे बदचलनीसे पैदा होनेवाले रोगोसे सड रहे है। हरएक स्त्रीको वे अपना शिकार समझते है और उन्हे आत्मा-रहित मानते है।" इन चार वाक्योमे चार झूठ भरे है। ऐसे नमूने

बीसियों पेश किए जा सकते है। जैसी जनता, वैसे ही उसके प्रतिनिधि। हमारे व्यापारी भाइयोको इसकी क्या खबर कि उनके विरुद्ध कैसा बेहूदा और अन्याय-भरा आन्दोलन चल रहा है? अखबार वे पढते न थे। अखबारी और अर्जियोके आदोलनका असर धारा सभा पर हुआ और उसमे एक बिल पेश किया गया। इसकी खबर प्रमुख भारतीयोके कान तक पहुची तो वे चौके। वे राष्ट्रपति क्रूगरके पास गए। दिवगत राष्ट्रपतिने तो उन लोगोंको घरके अदर कदम भी न रखने दिया। आंगनमें ही खड़ा करके उनकी बात थोडी बहुत सुननेके बाद कहा—"आप लोग तो इस्माईल[1]की औलाद है, इसलिए आप लोग ईसो[1]की औलादकी गुलामी करनेके लिए ही पैदा हुए है। हम ईसोकी औलाद माने जाते है। इसलिए हमारी बराबरीका हक तो आपको मिल ही नही सकता। हम जो हक दे रहे है उसीसे आपको संतोष मानना चाहिए।" इस जवाबमे द्वेष या रोष था, यह हम नही कह सकते। राष्ट्रपति क्रूगरकी शिक्षा ही इस प्रकारकी थी कि बचपनसे ही बाइबिलके पुराने इकरारनामे (ओल्ड टेस्टामेंट) मे कही हुई बाते उन्हे सिखाई गई और वह उनपर

---

[1]इब्राहीम (२२५०-२१०० ई० पू०)के बड़े और अभिशप्त बेटे, जो उनकी कनिष्ठा पत्नी (दासी) हाजरासे पैदा हुए थे। ज्येष्ठा पत्नी सारा के पेटसे इसहाकका जन्म होनेपर, उसके कहनेसे, इब्राहीम हाजरा और इस्माईलको उस जगह ले जाकर छोड़ आये, जहाँ अब मक्का नगर है। मुसलमान हजरत इब्राहीमके समान इन्हें भी पैगंबर मानते है। अरबका प्रमुखतम कबीला कुरैश, जिसमे हजरत मुहम्मदका जन्म हुआ था, इन्हीकी औलाद माना जाता है। ईसो इसहाकके सबसे बड़े बेटे थे। बाइबिलके सृष्टिखडमे इनकी कथाएं विस्तारसे दी हुई है। —अनु०

विश्वास करने लगे। जो आदमी जैसा मानता हो वैसा ही सच्चे दिलसे कहे तो इसमें उसको कौन दोष दे सकता है ? फिर भी इस सरलतामें रहनेवाले अज्ञानका बुरा असर तो होता ही है और नतीजा यह हुआ कि १८८५ में बहुत कड़ा कानून धारा सभामें जल्दी-जल्दी पास किया गया, मानो हजारो हिन्दुस्तानी ट्रांसवालमें घुसकर लूट मचानेके लिए तैयार बैठे हो ! प्रमुख भारतीयोंकी प्रेरणासे इस कानूनके खिलाफ ब्रिटिश राजदूतको कदम उठाना पड़ा। मामला उपनिवेश सचिव तक पहुंचा। इस कानूनके अनुसार ट्रांसवालमें दाखिल होनेवाले हरएक हिंदुस्तानीको २५ पौंड देकर अपनी रजिस्ट्री करानी पड़ती और वह एक इंच भी जमीन न ले सकता। चुनावमें मत देनेका अधिकारी तो वह हो ही नही सकता था। यह सारी बात इतनी अनुचित थी कि ट्रांसवालकी सरकारको बचावके लिए कोई दलील ही नही सूझती थी। ट्रांसवाल सरकार और बडी सरकारके बीच एक सुलहनामा हुआ था जिसे 'लंडन कन्वेंशन' कहते थे। उसमें ब्रिटिश प्रजाके अधिकारोंकी रक्षा करनेकी एक धारा—१४वी—थी। इस धाराके आधारपर बडी सरकारने इस कानूनका विरोध किया। ट्रांसवालकी सरकारने इसके जवाबमें यह दलील दी कि हमने जो कानून बनाया है, बडी सरकार पहलेसे उसको स्पष्ट या गर्भित सम्मति दे चुकी है।

यों उभयपक्षमें मतभेद होनेसे मामला पंचके पास गया। पंचका पंगु फैसला हुआ। उसने दोनो पक्षोंको राजी रखनेकी कोशिश की। नतीजा यह हुआ कि हिंदुस्तानियोंने यहां भी कुछ खोया ही। लाभ इतना ही हुआ कि अधिक खोनेके बदले कम खोया। पंचके इस फैसलेके अनुसार १८८६ में कानूनमें सुधार हुआ। उसके अनुसार रजिस्ट्रीकी फीस २५ पौंडके

बजाय ३ पौंड लेना तय हुआ और जमीन जो कहीं भी खरीद और रख न सकनेकी कड़ी शर्त थी उसके बदले यह निश्चय हुआ कि ट्रांसवालकी सरकार जिस हलके, महल्ले, बाड़ेमें तै कर दे उसीमें हिंदुस्तानी जमीन ले सके। इस दफापर अमल करानेमें भी ट्रांसवाल सरकारने दिलमें चोर रखा। अत: ऐसे महल्लोंमें भी जरखरीद जमीन लेनेका हक तो नहीं ही दिया। हर शहर-कसबेमें जहां हिंदुस्तानी बसते थे, ये महल्ले नगरसे बहुत दूर और गंदी-से-गंदी जगहोंमें रखे गए। वहां पानी-रोशनीका सुभीता कम-से-कम था, पाखानोंकी सफाईका हाल भी वही था। यानी हम हिंदुस्तानी ट्रांसवालके 'पंचम' बन गए और कह सकते हैं कि इन महल्लों और हिंदुस्तानके भंगी-वाड़ोंमें कुछ भी फर्क न था। लगभग यह स्थिति हो गई कि जैसे हिंदू भंगी-चमारको छूने और उनके पड़ोसमें बसनेसे 'अपवित्र' हो जाता है वैसे ही भारतीयके स्पर्श या पड़ोससे गोरा नापाक हो जाता! फिर इस १८८५ के तीसरे कानूनका ट्रांसवालकी सरकारने यह अर्थ किया कि हिंदुस्तानी व्यापार भी इन महल्लोंमें ही कर सकते हैं। यह अर्थ सही है या नहीं, इसके निर्णयका अधिकार पंचने ट्रांसवालकी अदालतोंको ही दे रखा था। इसलिए भारतीय व्यापारियोंकी स्थिति अति विषम हो गई। फिर भी कहीं बात-चीत चलाकर, कहीं मुकदमे लड़कर, कहीं सिफारिशसे काम लेकर भारतीय व्यापारी अपनी स्थितिकी रक्षा समुचित रीतिसे कर सके। बोअर-युद्ध आरंभ होनेके समय ट्रांसवालमें भारतीयोंकी ऐसी दुःखद और अनिश्चित स्थिति थी।

अब हम फ्री स्टेटकी दशा देखें। वहां दस-पंद्रहसे अधिक हिंदुस्तानी दुकानें नहीं खुलवाई थीं कि गोरोंने जबर्दस्त आंदोलन उठा दिया। वहांकी धारा सभाने चौकसीसे काम करके खतरेकी जड़ ही काट दी। उसने एक कड़ा कानून

पास करके और नुकसानका नगण्य मुआवजा देकर, हरएक हिंदुस्तानी दुकानदारको फ्री स्टेटसे निकाल बाहर किया। इस कानूनके अनुसार कोई हिंदुस्तानी व्यापारी, जमीनके मालिक या किसानकी हैसियतसे फ्री स्टेटमें नही रह सकता था। चुनावमे मत देनेका अधिकारी तो हो ही नही सकता था। खास तौरसे इजाजत हासिल करके मजदूर या होटलके 'वेटर' (खिदमतगार) के रूपमें रह सकता था! यह इजाजत भी हरएक प्रार्थीको मिल ही जाय, सो बात नही थी। नतीजा यह हुआ कि फ्री स्टेटमे कोई प्रतिष्ठित भारतीय दो-चार दिन रहना चाहे तो भी बडी कठिनाईसे ही रह सकता था। बोअर-युद्धके समय वहा कोई चालीस हिंदुस्तानी वेटरोके सिवा और कोई हिंदुस्तानी नही था।

केप कॉलोनीमे यद्यपि हिंदुस्तानियोके खिलाफ थोडा आदोलन होता रहता था, स्कूलो आदिमे भारतीय बालकका प्रवेश नही हो सकता, होटलो वगैरहमे हिंदुस्तानी मुसाफिर शायद ही उतर सकता—इस तरहके हिंदुस्तानियोकी अवहेलना करनेवाले बरताव तो वहा भी होते थे, फिर भी व्यापार करने और जमीन रख सकनेके बारेमे कोई रुकावट बहुत दिनोतक वहा नही थी।

ऐसा होनेके कारण मुझे बता देने चाहिए। एक तो, जैसा कि हम पहले ही देख चुके है, केपटाउनमे खासतौरसे और सारी केप कॉलोनीमे आमतौरसे मलायी लोगोकी आबादी अच्छी खासी तादादमे थी। मलायी लोग खुद मुसलमान है। इसलिए हिंदुस्तानी मुसलमानोके साथ तुरत उनकी राह-रस्म हो गई और उनके जरिये दूसरे हिंदुस्तानियोसे भी थोड़ी-बहुत तो हो ही गई। इसके सिवा कुछ हिंदुस्तानी मुसलमानोने मलायी स्त्रियोसे ब्याह भी कर लिया। मलायीके खिलाफ किसी तरहका कायदा-कानून केपकी सरकार कैसे बना

सकती थी? उनकी तो केप कॉलोनी जन्मभूमि है। उनकी भाषा भी डच है। डच लोगोके साथ ही वे शुरूसे ही रहते आ रहे है। अत रहन-सहनमे भी उनकी बहुत नकल करने लगे है। इन कारणोंसे केप कॉलोनीमे सदा कम-से-कम वर्णद्वेष रहा है। इसके सिवा केप कॉलोनी सबसे पुराना उपनिवेश और दक्षिण अफ्रीकाका शिक्षण-केन्द्र है। इससे वहां प्रौढ, विनयशील और उदारहृदय गोरे भी पैदा हुए। मै तो मानता हूं कि दुनियामे एक भी ऐसी जगह और एक भी जाति ऐसी नही है जहां या जिसमे उपयुक्त अवसर मिले और संस्कार डाले जाय तो सुन्दर-से-सुन्दर मानव-पुष्प उत्पन्न न हो सकते हो। दक्षिण अफ्रीकामे सौभाग्यसे मुझे सभी जगह इसकी मिसाले दिखाई दी; पर केप कॉलोनीमे ऐसे पुरुषोका अनुपात बहुत बडा है। उनमे सर्वाधिक विख्यात और विद्वान् श्री मेरीमैन है, जो दक्षिण अफ्रीकाके ग्लैडस्टन कहे जाते है और केप कॉलोनीके प्रधान मंत्री भी रह चुके है।[1] श्री मेरीमैनके बराबर नही तो उनसे दूसरे दरजेपर विराजने-वाला है सपूर्ण श्राइनर परिवार, और मोल्टीनो परिवार[2] का भी वही पद है। श्राइनर घरानेमे कानूनके मशहूर हिमा-यती श्री डब्ल्यू० पी० श्राइनर[3] हो गए है। वह एक समय केप कॉलोनीके मत्रिमडलमे भी रह चुके है। उनकी बहन ऑलिव

---

[1]श्रीमेरीमैन १८७२मे केप कॉलोनीमें उत्तरदायी शासन व्यवस्था स्थापित होनेके बाद उसके हरएक मत्रिमण्डलके सदस्य रहे और १९१०में जब यूनियनकी स्थापना हुई तो अतिम मत्रिमण्डलके प्रधान थे।

[2]सर जान मोल्टीनो १८७२ के प्रथम मत्रिमण्डलमे प्रधान मत्री थे।

[3]श्रीश्राइनर कुछ दिनोतक एटर्नी-जनरल रहे और पीछे प्रधान मत्री हुए।

श्राइनर दक्षिण अफ्रीकाकी लोकप्रिय विदुषी थी और जहा-जहां अग्रेजी भाषा बोली जाती है वहा-वहा विख्यात थी। मनुष्यमात्रपर उनका प्रेम असीम था। आखोसे जब देखिए प्रेमका झरना ही झरता होता। इस बहनने जब 'ड्रीम्स' (स्वप्न) नामक पुस्तक लिखी तबसे वह 'ड्रीम्स'की लेखिकाके नामसे प्रसिद्ध होगई। इनकी सरलता इतनी थी कि ऐसे प्रतिष्ठित और प्रख्यात कुलकी तथा विदुषी होते हुए भी घरके बरतनतक खुद माजा करती थी। श्री मेरीमैन और इन दोनो परिवारोने सदा हबशियोका पक्ष लिया। जब-जब उनके हकपर हमला होता, उनकी जबर्दस्त हिमायत करते। उनके प्रमकी धारा हिन्दुस्तानियोकी ओर भी बहती थी, यद्यपि वे सभी हबशी और हिंदुस्तानीमे भेद करते थे। उनकी दलील यह थी कि हबशी दक्षिण अफ्रीकाके गोरोके आगमनसे पहलेके बाशिंदे है, इसलिए गोरे उनके स्वाभाविक अधिकारोंको छीन नही सकते, पर हिंदुस्तानियोके बारेमे उनकी प्रतियोगिताका खतरा दूर करनेके लिए कोई कानून बनाया जाय तो यह बिलकुल अन्याय नही माना जायगा। फिर भी उनकी हमदर्दी हमेशा हिंदुस्तानियोके साथ रहती। स्वर्गीय गोपालकृष्ण-गोखले जब दक्षिण अफ्रीका पधारे तब उनके सम्मानमे वहा जो पहली सभा केप टाउनके टाउनहालमे हुई उसमे श्री श्राइनरने सभापतिका आसन ग्रहण किया था। श्री मेरीमैनने भी उनके साथ बडे सौजन्य और विनयसे बाते की और हिंदुस्तानियोके साथ हमदर्दी जाहिर की। केप टाउनके अखबारोमे भी और जगहके पत्रोकी तुलनामे पक्षपातकी मात्रा बहुत कम थी।

श्री मेरीमैन आदिके बारेमे मैने जो कुछ लिखा है वह दूसरे यूरोपियनोके विषयमे भी कहा जा सकता है। यहा तो मैने मिसालके तौरपर उपर्युक्त सर्वमान्य नाम दे दिये हैं।

इन कारणोसे यद्यपि केप कॉलोनीमें रंगद्वेप सदा कम रहा, फिर भी दक्षिण अफ्रीकाके शेष तीनों उपनिवेशोमे जो हवा हर वक्त वहा करती थी उसकी गंध केप कॉलोनीमे पहुंचे ही नही, यह कैसे हो सकता था ? अतः वहां भी नेटालके जैसे भारतीयोके प्रवेश और व्यापारके लिए परवानेकी शर्तं लगा देनेवाले कानून पास हुए। यों कह सकते है कि दक्षिण अफ्रीकाका दरवाजा जो हिंदुस्तानियोंके लिए बिलकुल खुला हुआ था, बोअर-युद्धके समय वह लगभग बद हो गया था। ट्रांसवालमे उनके प्रवेशपर ऊपर बताये हुए तीन पौडके करके सिवा और कोई रोक न थी। पर जब नेटाल और केप कॉलोनीके बंदरगाह उनके लिए बद हो गए तब बीचमें पड़नेवाले ट्रांसवालको जानेवाले हिंदुस्तानी कहा उतरे ? एक रास्ता था—पुर्तगीजोका डेलगोआबे बंदर। पर वहां भी ब्रिटिश उपनिवेशोकी कमोबेश नकल की गई। इतना कह देना चाहिए कि बहुत कठिनाइया उठाकर या रिशवत देकर नेटाल और डेलगोआबेके रास्ते भी इक्के-दुक्के हिंदुस्तानी ट्रांसवाल पहुच पाते थे।

: ६ :

भारतीयोंने क्या किया ?—१

भारतीय जनताकी स्थितिका विचार करते हुए पिछले प्रकरणोमे हम अशत देख चुके हैं कि उसपर होनेवाले हमलोका उसने किस तरह सामना किया, पर सत्याग्रहकी उत्पत्तिकी कल्पना पाठकोंको भली भाति हो सके इसके लिए जरूरी है कि भारतीय जनताकी सुरक्षाके विपयमे किये गए प्रयत्नोपर एक अलग प्रकरण लिखा जाय।

१८९३ ई० तक दक्षिण अफ्रीकामें ऐसे स्वतन्त्र और यथेष्ट शिक्षा प्राप्त भारतीय थोडे ही थे जो भारतीय जनताके लिए लड सकें। अंग्रेजी जाननेवाले हिंदुस्तानियोमें मुख्यत क्लर्क और मुनीम थे। वे अपना काम चलाने भर अंग्रेजी जानते थे, पर अर्जियां आदि उनसे नहीं लिखी जा सकती थी। फिर उन्हें अपने मालिकको सारा वक्त देना ही चाहिए था। इनके सिवा अंग्रेजी पढा हुआ दूसरा वर्ग उन हिंदुस्तानियोंका था जो दक्षिण अफ्रीकामें ही पैदा हुए थे। इनमें अधिकाश गिरमिटियोंकी संतान थे और उनमेंसे बहुतेरे जिन्होंने थोडीसी योग्यता भी प्राप्त कर ली हो, कचहरीमें दुभापियाकी सरकारी नौकरी करते थे। अत. जातिकी उनसे बडी-से-बडी सेवा, हमदर्दी दिखानेके सिवा और क्या हो सकती थी? इसके सिवा गिरमिटिया और गिरमिटमुक्त दोनो मुख्यत सयुक्त प्रान्त और मद्राससे आये हुए हिंदुस्तानी थे। स्वतन्त्र, भारतीय थे गुजरातके मुसल्मान और वे खास तौरसे व्यापारी थे। हिंदू अधिकाश क्लर्क-मुनीम थे, यह हम पीछे देख चुके हैं। इनके अतिरिक्त थोडे पारसी भी व्यापारी और क्लर्क वर्गमें थे। पर सारे दक्षिण अफ्रीकामें पारसियोंकी आबादी ३०-४० से अधिक होनेकी संभावना न थी। स्वतन्त्र व्यापारी वर्गमें चौथी जमात थी सिंधके व्यापारियोंकी। सारे दक्षिण अफ्रीकामें दो सौ या इससे कुछ अधिक सिंधी होंगे। कह सकते हैं कि उनका व्यापार हिंदुस्तानके बाहर जहा कहीं भी वे बसे हैं वहा एक ही तरहका होता है। वे 'फैंसी गुड्स'के व्यापारी कहे जाते है। 'फैंसी गुड्स'के मानी हैं रेशम, जरी वगैरहकी चीजें, बंबईके बने शीशम, चन्दन और हाथी दांतके नक्काशीदार सदूक वगैरह घरकी सजावट। इसी तरहका सामान वे खास तौरसे बेचते हैं। उनके गाहक ज्यादातर गोरे ही होते हैं।

गिरमिटियोंको गोरे 'कुली' कहकर ही पुकारते हैं। कुलीके मानी हैं बोझ ढोनेवाला। यह नाम इतना चल गया है कि गिरमिटिया खुद भी अपने आपको 'कुली' कहते नहीं हिचकता। पीछे तो यह नाम भारतीयमात्रको मिल गया। सैकड़ों गोरे हिंदुस्तानी वकील और हिंदुस्तानी व्यापारीको क्रमशः 'कुली वकील' और 'कुली व्यापारी' कहा करते। इस विशेषणके व्यवहारमें कोई दोष है, इसे कितने ही गोरे तो मानते या जानते भी नहीं; पर बहुतेरे तो तिरस्कार प्रकट करनेके लिए ही 'कुली' शब्दका उपयोग करते। इससे स्वतंत्र भारतीय अपने आपको गिरमिटियोंसे भिन्न बतानेका यत्न करते हैं। इस तथा जिन्हें हम हिंदुस्तानसे ही साथ ले जाते हैं उन कारणोंसे भी स्वतंत्र भारतीय वर्ग और गिरमिटिया तथा गिरमिटमुक्त वर्गके बीच दक्षिण अफ्रीकामें भेद किया जा रहा था।

इस दुःखके दरियाके सामने बांध बननेका काम स्वतंत्र हिंदुस्तानी व्यापारियों और खास तौरसे मुसलमान व्यापारियोंने अपने ऊपर लिया। पर गिरमिटियों या गिरमिटमुक्त हिंदुस्तानियोंको साथ लेनेकी कोशिश इरादेके साथ नहीं की गई। यह बात उस वक्त शायद सूझी भी नहीं। सूझती भी तो उन्हें साथ लेनेसे काम बिगड़नेका ही डर होता। दूसरे मुख्य आपत्ति तो स्वतंत्र व्यापारी वर्गपर ही है, यह सोचा गया। इसलिए बचावके प्रयत्नने ऐसा संकुचित रूप धारण किया। इन स्वतंत्र व्यापारियोंमें अंग्रेजीके ज्ञानका अभाव था। हिंदुस्तानमें उन्हें सार्वजनिक कामोंका अनुभव नहीं हुआ था, पर इन कठिनाइयोंके होते हुए भी कह सकते हैं कि उन्होंने मुसीबतका सामना डटकर किया। उन्होंने यूरोपियन वकीलोंकी मदद ली, अर्जियां तैयार कराईं, जब-तब शिष्ट-मण्डल भी ले गए और जहां-जहां बन पड़ा और सूझा वहां-वहां अन्यायसे

लोहा लिया। यह स्थिति १८९३ ई० तक थी।

इस पुस्तकको अच्छी तरह समझनेके लिए पाठकोको कुछ मुख्य तिथियां याद रखनी होगी। पुस्तकके अंतमें मुख्य घटनाओंका तारीखवार परिशिष्ट दिया गया है। उसे वे समय-समयपर देख लिया करेंगे तो इस युद्धका रहस्य और रूप समझनेमें मदद मिलेगी। १८९३ तक फ्री स्टेटमें हमारी हस्ती मिट चुकी थी। ट्रांसवालमें १८८५का तीसरा कानून जारी था और नेटालके अंदर यह विचार चल रहा था कि कैसे केवल गिरमिटिया हिंदुस्तानी ही वहां रह सकें, दूसरे निकाल बाहर किए जाए, और इस उद्देश्यसे उत्तरदायी शासनव्यवस्था प्राप्त कर ली गई थी।

१८९३ ई० के अप्रैल महीनेमें मैं दक्षिण अफ्रीका जानेके लिए हिंदुस्तानसे रवाना हुआ। गिरमिटियोंके पिछले इतिहासका मुझे कुछ भी ज्ञान न था। मैं केवल स्वार्थ बुद्धिसे गया। पोरबंदरके मेमन लोगोंकी दादा अब्दुल्लाके नामकी एक मशहूर कोठी डर्बनमें कारबार करती थी। उतनी ही प्रसिद्ध और उसकी प्रतिस्पर्द्धी कोठी पोरबंदरके दूसरे मेमन तैयब हाजी खान मुहम्मदके नामकी प्रिटोरियामें थी। दुर्भाग्यवश दोनों प्रतिस्पर्द्धियोंके बीच एक बड़ा मुकदमा चल रहा था। दादा अब्दुल्लाके एक साथीने, जो पोरबंदरमें थे, सोचा कि मुझ जैसा नौसिखिया फिर भी बैरिस्टर वहां चला जाय तो मुकदमा लड़नेमें उन्हें कुछ ज्यादा सहूलियत होगी। मुझसा निपट अनजान और अनाड़ी वकील उनका काम बिगाड़ देगा, इसका डर उन्हें नहीं था। कारण कि मुझे कुछ अदालतमें जाकर काम करना नहीं था। मुझे तो महज उन धुरंधर वकील-बैरिस्टरोंको, जो उन्होंने नियुक्त कर रखे थे, मामला समझा देना यानी दुभाषियेका काम करना था। मुझे नए अनुभव प्राप्त करनेका शौक था। मुसाफिरी रुचती

थी। बैरिस्टरके रूपमें दलालको कमीशन देना जहरसा लगता था। काठियावाड़की साजिशोंमें मेरा दम घुटता था। एक ही बरसके बंधनपर जाना था। मैंने सोचा कि मेरे लिए तो इस इकरारनामेमें कुछ भी अड़चन नहीं है। हानि तो है ही नहीं; क्योंकि मेरे जाने-आने और रहनेका खर्च दादा अब्दुल्ला ही देनेवाले थे। इसके अलावा १०५ पौंडका मेहनताना भी मिलता। मेरे स्वर्गीय बड़े भाईकी मारफत ये सारी बातें तै हुई थी। मेरे लिए तो वह पिता तुल्य थे। उनकी रजामंदी मेरी रजामंदी थी। उन्हें मेरे दक्षिण अफ्रीका आनेकी बात पसंद आई और १८९३ ई० के मई महीनेमें मैं डर्बन जा पहुंचा।

वैरिस्टरकी बात तो पूछनी ही क्या ? मैं अपनी समझके अनुसार बढ़िया फ्रॉक-कोट इत्यादि डाटकर शानसे जहाजसे उतरा। पर उतरते ही मेरी आंखें कुछ-कुछ खुल गईं। दादा अब्दुल्लाके जिस साझीके साथ बात हुई थी उसने जो वर्णन मुझे सुनाया था वह तो मुझे उलटा ही दिखाई दिया। इसमें उसका कोई दोष न था। यह था उसका भोलापन, सरलता और परिस्थितिका अज्ञान। नेटालमें हिंदुस्तानियोंको जो-जो तकलीफें भुगतनी पड़ती थी उन सबका उसे पता नहीं था। और जिन बर्तावोंमें हमारा तीव्र अपमान था वे उन्हें अपमानकारक नहीं जान पड़े थे; पर मेरी आंखोंने तो पहले ही दिन यह देख लिया कि गोरोंका बर्ताव हमारे साथ बहुत ही अशिष्ट और अपमानकर है।

नेटाल पहुंचनेके १५ दिनके अंदर ही कचहरियोंमें मुझे जो कड़वे अनुभव हुए, ट्रेनके अंदर जो कष्ट उठाने पड़े, रास्तेमें जो मार खाई, होटलमें जगह पानेमें जो कठिनाई हुई, बल्कि जगह पाना लगभग नामुमकिन था—इस सबका वर्णन मैं यहां नहीं करूंगा। इतना ही कहूंगा कि ये सारे अनुभव मेरी रग-रग में समा गए। मैं तो सिर्फ एक मुकदमेके लिए गया था,

स्वार्थ और कुतूहलकी दृष्टिसे, इसलिए इस पहले वर्षमे तो मै इन दु खोंका साक्षी और अनुभवकर्ता मात्र रहा। मेरे धर्मका पालन यहीसे आरभ हुआ। मैने देखा कि स्वार्थ-दृष्टिसे दक्षिण अफ्रीका मेरे लिए बेकार मुल्क है। जहां अपमान होता हो वहा रहकर पैसा कमाने या सैर-सपाटा करनेका लोभ मुझे तनिक भी न था। यही नही, इससे अत्यन्त अरुचि थी। मेरे सामने धर्मसकट खडा हो गया। मेरे सामने दो रास्ते थे। एक यह कि जिस स्थितिको मै जान नही सकता था उसे अब जान लिया। इसलिए दादा अब्दुल्लाके साथ किए हुए इकरारनामेसे छुटकारा प्राप्तकर भाग जाऊ। दूसरा यह कि चाहे जो संकट सहने पडे सहू और अगीकृत कामको पूरा करूँ। कडाकेकी ठडमे मारित्सवर्ग स्टेशनपर रेलवे पुलिसके धक्के खाकर, यात्रा स्थगित कर और ट्रेनसे उतरकर, वेटिग रूममे बैठा था। मेरा सामान कहा है, इसकी खबर मुझे न थी। किसीसे पूछनेकी हिम्मत भी नही होती थी। कही फिर अपमान हो, मार खानी पडे तो ? ऐसी दशामे, ठडसे कापते हुए नीद कहांसे आती ! मन चक्करदार झूलेपर सवार हुआ। बडी रातको निश्चय किया, "निकल भागना तो नामर्दी है, लिए हुए कामको पूरा करना ही चाहिए। व्यक्तिगत अपमान सहना पडे, मार खानी पडे, तो सह और खाकर भी प्रिटोरिया पहुचना ही चाहिए।" प्रिटोरिया मेरे लिए केंद्र स्थान था। मुकदमा वही चल रहा था। अपना काम करते हुए कोई उपाय हो सके तो करूं। यह निश्चय कर लेनेपर मनको कुछ शाति हुई, हृदयमे कुछ बल भी आया। पर मै सो तो नही ही सका।

सवेरा होते ही मैने दादा अब्दुल्लाकी कोठी और रेलवेके जनरल मैनेजरको तार किया। दोनो जगहसे जवाब भी आ गया। दादा अब्दुल्ला और उनके उस वक्त नेटालमे

रहनेवाले साभी सेठ अब्दुल्ला हाजी आदम झवेरीने फौरन सब प्रबंध कर दिया। भिन्न-भिन्न स्थानोंमें अपने हिंदुस्तानी आढ़तियोंको मेरी फिक्र रखनेके लिए तार किए। जनरल मैनेजरसे भी मिले। आढतियेको भेजे हुए तारके फलस्वरूप मारित्सवर्गके भारतीय व्यापारी आकर मुझसे मिले। उन्होंने मुझे आश्वासन दिया और कहा कि आपके जैसे कड़वे अनुभव हम सबको हो चुके हैं। पर हम इसके आदी हो गये हैं, इसलिए इसकी परवा नही करते। व्यापार करना और नाजुक दिल रखना दोनो बाते साथ कैसे चल सकती है ? इसलिए पैसेके साथ-साथ अपमान भी मिले तो उसे भी बक्समे धर लेनेका नियम हमने स्वीकार कर लिया है। उन्होंने मुझे यह भी बताया कि इस स्टेशनपर हिंदुस्तानियोंको सदर दरवाजेसे आनेकी मनाही है और टिकट लेनेमे भी उन्हे बड़ी कठिनाई होती है। उसी रातमे जो ट्रेन आई उससे मै रवाना हो गया। मेरा निश्चय ठीक था या नही, इसकी परीक्षा अंतर्यामीने पूरे तौरपर की। प्रिटोरिया पहुंचनेके पहले मुझे और अपमान सहने पड़े और मार बर्दाश्त करनी पड़ी। पर इस सबका मेरे मनपर यही असर हुआ कि मेरा निश्चय और पक्का हो गया।

यों १८९३ मे मुझे अनायास दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंकी स्थितिका सच्चा अनुभव हो गया। वैसा अवसर आनेपर प्रिटोरियाके भारतीयोके साथ मै इस विषयमें बातचीत करता, उन्हे समझाता भी, पर इससे अधिक मैंने कुछ नही किया। मुझे ऐसा जान पडा कि दादा अब्दुल्लाके मुकदमेकी पैरवी करना और दक्षिण अफ्रीकाके हिंदुस्तानियोंके दुःखके निवारणकी चिंता करना, ये दोनों बाते साथ नही चल सकती। मैंने देखा कि दोनोंको साधनेकी कोशिशमे दोनो जाएगे। इस तरह करते-करते १८९४ आ पहुंचा। मुकदमा भी खतम हो

गया। मैं डर्बन लौटा। देश लौटनेकी तैयारी की। दादा अब्दुल्लाने मेरी विदाईके लिए एक जलसा भी किया। उसमें किसीने डर्बनके 'मर्करी' अखबारका एक पर्चा मेरे हाथमें दिया। उसमें धारा सभा नेटाल असेंबलीकी कारवाईके विवरणमें कुछ पंक्तियां मैंने 'भारतीय मताधिकार' (इंडियन फ्रेंचाइज) उपशीर्षकके नीचे पढी। सरकारकी ओरसे उसमें एक बिल पेश किया गया था जो हिंदुस्तानियोंको धारा सभाके चुनावमें मत देनेके अधिकारसे वंचित करता था। मैंने देखा कि हिंदुस्तानियोंके सारे हक छीन लेनेकी यह शुरूआत है। उस मौकेपर किये गए भाषणोंमें ही यह इरादा स्पष्ट था। जलसेमें आये हुए सेठों आदिको मैंने वह खबर पढ़कर सुनाई। जितना समझाते बना समझाया भी। सारी हकीकत तो मैं जानता नहीं था। मैंने उन्हें सलाह दी कि हिंदुस्तानियोंको इस हमलेका सामना डटकर करना चाहिए। उन्होंने भी इस बातको कबूल किया, पर कहा कि इस तरहकी लडाई हमारे लडे नहीं लडी जा सकती और मुझसे रुक जानेका आग्रह किया। मैंने यह लडाई लडने तक, यानी महीने दो महीने, रुक जाना मंजूर किया। उसी रात धारा सभाको भेजनेके लिए अर्जी तैयार की। बिलके और वाचन मुल्तवी रखनेके लिए तार भेजा गया। तुरत एक कमेटी बनाई गई। उसके अध्यक्ष सेठ अब्दुल्ला हाजी बनाये गये। तार उन्हींके नामसे भेजा गया। बिलकी कारवाई दो दिन रुकी रही। दक्षिण अफ्रीकाकी धारा सभाओंमेंसे नेटालकी धारा सभामें हिंदुस्तानियोंका यह पहला आवेदनपत्र था। उसका असर तो अच्छा हुआ, पर बिल पास हुआ ही। उसका अंत क्या हुआ, यह तो चौथे प्रकरणमें बता चुका हूं। इस तरह लड़नेका वहां हिंदुस्तानियोंका यह पहला अनुभव था। इससे उनमें खूब जोश पैदा हुआ। रोज सभाएं होती और

अधिकाधिक लोग उनमें सम्मिलित होते। इस कामके लिए जितना चाहिए था उससे अधिक पैसा इकट्ठा हो गया। नकलें करने, दस्तखत लेने आदिके कामोंमें मदद करनेके लिए बिना पैसा लिए और पासका पैसा लगाकर काम करनेवाले भी बहुसंख्यक स्वयंसेवक मिल गये। गिरमिटमुक्त हिंदुस्तानियोंकी संतान भी इस काममें उत्साहके साथ शामिल हुई। ये सभी अंग्रेजी जाननेवाले और सुंदर अक्षर लिखनेवाले युवक थे। उन्होंने नकलें तैयार करने आदिका काम रात-दिनका ख्याल न कर बड़े उत्साहसे किया। एक महीनेके अंदर ही दस हजार हस्ताक्षरों वाला आवेदनपत्र लार्ड रिपनके पास भेज दिया और मेरा तात्कालिक काम पूरा हुआ।

मैंने विदा मांगी; पर भारतीय जनताको इस संघर्षमें इतना रस मिलने लगा था कि अब वह मुझे छोड़ना ही नहीं चाहती थी। उसने कहा—"आप ही तो हमें समझाते हैं कि हमें जड़मूलसे उखाड़ फेंकनेका यह पहला कदम है। विलायतसे क्या जवाब आयेगा, इसे कौन जानता है? हमारा उत्साह आपने देख लिया। हम काम करनेको तैयार हैं। करना चाहते भी हैं। हमारे पास पैसा भी है। पर रास्ता दिखानेवाला न हुआ तो इतना किया-धरा बेकार हो जायगा। इसलिए हम तो मानते हैं कि कुछ दिन यहां और रह जाना आपका फर्ज है।" मुझे भी दिखाई दिया कि कोई स्थायी संस्था हो जाय तो अच्छा है। पर रहूं कहां और किस तरह? उन लोगोंने मुझे तनख्वाह देनेकी बात कही, पर मैंने तनख्वाह लेनेसे साफ इनकार कर दिया। सार्वजनिक कार्य बड़ी-बड़ी तनख्वाह लेकर नहीं हो सकता। फिर मैं तो नींव डालनेवाला था। रहना भी ऐसे ढंगसे चाहिए कि उस वक्तके मेरे विचारोंके अनुसार बैरिस्टरको फबे और जातिको भी शोभा दे। अर्थात् खर्च भी भारी था। लोगोंको दबाकर

उनसे ऐसा करके आदोलन वढाना और इसके साथ-साथ अपनी रोजी भी कमा लेना, यह दो परस्पर विरोधी वातोका सगम होगा। इससे मेरी अपनी काम करनेकी शक्ति भी घट जायगी। ऐसे अनेक कारणोसे मैंने लोकसेवाके कार्यके लिए पैसा लेनेसे साफ इनकार कर दिया। पर मैंने यह सुझाव पेश किया कि आप लोगोमेसे वडे व्यापारी अपनी वकालतका काम मुझे दे और इसके लिए मुझे पेशगी 'रिटेनर'[1] दे तो मैं रुकनेको तैयार हू। एक वरसका रिटेनर आप दे। एक वरस हम एक-दूसरेका अनुभव प्राप्त करे, सालभरके कामका हिसाव करके देखे और फिर ठीक जान पडे तो आगे काम चलाए। इस सुझावका सवने स्वागत किया। मैंने वकालतकी सनदके लिए दरख्वास्त दी। वहाकी 'ला सोसायटी' अर्थात् वकील मडलने मेरी दरख्वास्तका विरोध किया। उनकी दलील एक ही थी कि नेटालके कानूनके मशाके अनुसार काले या गेहुँए रगके लोगोको वकालतकी सनद नही दी जा सकती। मेरी दरख्वास्तकी हिमायत वहाके मशहूर वकील श्री एस्कवने की, जो पहले एटर्नी जनरल थे और पीछे नेटालके प्रधान-मत्री हो गये थे। आमतौरपर लवे अरसेसे यह रिवाज चला आ रहा था कि वकालतकी सनदकी दरख्वास्त कानून-पडितोमेसे जो अग्रणी हो वह विना मेहनतानेके अदालतके सामने पेश करे। इसी प्रथाके अनुसार श्री एस्कवने मेरी वकालत मजूर की। वह दादा अब्दुल्लाके वडे (सीनियर) वकील भी थे। वकील-मडलकी दलील वडी अदालत (सीनियर कोर्ट) ने रद्द करदी और मेरी दरख्वास्त मजूर कर ली। यो वकील-मडलका विरोध विना चाहे मेरी दूसरी प्रसिद्धिका कारण हो गया।

---

[1] वकील-बैरिस्टरको इस दृष्टिसे दिया हुआ पेशगी मेहनताना कि जरूरत पडनेपर काम लेनेका हक रहे।

दक्षिण अफ्रीकाके अखबारोंने वकील-मंडलकी हंसी उड़ाई और कुछने मुझे बधाई भी दी।

जो कामचलाऊ कमेटी बनाई गई थी उसे स्थायी रूप दिया गया। मैंने कांग्रेसकी एक भी बैठक देखी तो नहीं थी, पर कांग्रेसके बारेमें पढ़ा था। हिंदके दादा (दादा भाई) के दर्शन कर चुका था। उनकी मैं पूजा करता था। अतः कांग्रेसका भक्त तो होना ही चाहिए था। उसके नामको लोकप्रिय बनानेका भी ख्याल था। नया जवान नया नाम क्यों ढूढने जाय? फिर उसमें भूल कर बैठनेका भी भारी भय था। अतः मैंने सलाह दी कि कमेटी 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' नाम ग्रहण करे। कांग्रेसके विषयमें अपना अधूरा ज्ञान अधूरी रीतिसे मैंने लोगोंके सामने रखा। १८९४ ई० के मई या जूनमें कांग्रेसकी स्थापना हुई। भारतीय संस्था और इस संस्थामें इतना अंतर था कि नेटाल कांग्रेसकी बैठकें बारहो मास हुआ करती थीं और जो सालमें कम-से-कम तीन पौंड दे सके वही उसका सदस्य हो सकता था। अधिक-से-अधिक तो जो कुछ भी दिया जाय वह सधन्यवाद स्वीकार किया जाता। पांच-सात सदस्य सालाना २४ पौंड देनेवाले भी निकल आए। १२ पौंड देनेवालोंकी तादाद तो काफी थी। एक महीनेके अंदर कोई तीन सौ सदस्योंके नाम दर्ज हो गये। हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि जितने धर्मों और प्रान्तोंके लोग वहां थे उसमें शामिल हुए। पहले बरसभर काम बड़े जोशसे चला। सेठ लोग निजकी सवारियां लेकर दूर-दूरके गांवोंमें नये मेंबर बनाने और चंदा इकट्ठा करने जाते थे। हर आदमी मांगते ही पैसा नहीं दे देता था। उन्हें समझाना होता था। समझानेमें एक प्रकारकी राजनैतिक शिक्षा मिलती थी और लोग परिस्थितिसे परिचित होते थे। फिर हर महीने कम-से-कम एक बार तो कांग्रेसकी बैठक होती

ही थी। उसमें उस महीनेका पाई-पाईका हिसाब सुनाया जाता और वह पास होता। महीनेके अंदर घटित सारी घटनाए भी सुनाई जाती और कार्रवाई लिख ली जाती। सदस्य-गण जुदा-जुदा सवाल पूछते। नए कामोंपर मशवरा होता। यह सब करते हुए, जो लोग कभी ऐसी सभाओंमे नही बोलते थे वे वक्ता बन जाते थे। भाषण भी शिष्टता, औचित्यका ध्यान रखकर ही करते थे। यह सारा हमारे लिए नया अनु-भव था। लोगोंने उसमे बहुत रस लिया। इस बीच लार्ड-रिपनके नेटालका (मताधिकार हरण) बिल नामजूर कर देनेकी खबर आई। उससे लोगोका हर्ष और आत्म-विश्वास दोनों बढे।

जैसे बाहर काम हो रहा था वैसे लोगोंके अदर काम करने-का आदोलन भी चल रहा था। हमारी रहन-सहनके बारेमें सारे दक्षिण अफीकामें गोरे जोरदार आदोलन कर रहे थे। हिंदुस्तानी बहुत गंदे है, कजूस हैं, जिस मकानमें व्यापार करते है उसीमें रहते भी है, उनके घर जैसे मांद हो, अपने आरामके लिए भी वे पैसा नही खर्च करते। ऐसे मैले, मक्खीचूस लोगोके साथ साफ-सुथरे, उदार और बहुत ज्यादा जरूरतो वाले गोरे व्यापारमें कैसे प्रतियोगिता कर सकते है ? यह उनकी हमेशाकी दलील थी। इससे घर साफ-सुथरा रखने, घर और दुकान अलग-अलग रखने, कपडे साफ रखने, बड़ी कमाईवाले व्यापारीको फबने लायक रहन-सहन रखने आदिके बारेमें भी कांग्रेसकी बैठकोमे विवेचन और विवाद होता, सुझाव रखे जाते। कारंवाई सारी मातृभाषामें ही होती।

इस सबसे लोगोको अनायास कितनी व्यावहारिक शिक्षा और राजनैतिक काम-काजका कितना अनुभव मिल रहा था, पाठक इसे समझ सकते है। कांग्रेसके ही अंतर्गत गिरमिट-मुक्त हिंदुस्तानियोंकी सन्तान अर्थात् नेटालमे ही जन्मे हुए

अंग्रेजी बोलनेवाले भारतीय युवकोंके सुभीतेके लिए एक शिक्षण-मंडल भी स्थापित किया गया। उसमें नामकी फीस रखी गई। मुख्य उद्देश्य था उन नौजवानोंको इकट्ठा करना, उनमें हिन्दुस्तानके प्रति प्रेम उत्पन्न करना और उसका सामान्य ज्ञान करा देना। साथ ही यह हेतु भी था कि स्वतंत्र भारतीय व्यापारी उन्हें अपना ही समझते हैं। यह उन्हें दिखा दिया जाय और व्यापारीवर्गमें भी उनके लिए आदर उत्पन्न किया जाय। अपना खर्च चलाते हुए भी कांग्रेसके पास एक बड़ी रकम इकट्ठी हो गई थी। उसकी जमीन खरीदी गई और इस जमीनकी आमदनी आजतक उसे मिला करती है।

इतना ब्योरा मैंने जानबूझ कर दिया है। सत्याग्रह कैसे स्वाभाविक रीतिसे उत्पन्न हुआ और लोग कैसे उसके लिए तैयार हुए। ऊपरके ब्योरे जाने बिना पाठक इस बात-को पूरी तरह नहीं समझ सकते थे। कांग्रेसके ऊपर मुसीबतें आईं, सरकारी अधिकारियोंकी ओरसे हमले हुए, उन हमलोंसे वह कैसे बची, यह और ऐसी दूसरी बातोंका जानने लायक इतिहास मुझे छोड़ देना पड़ रहा है। पर एक बात बता देना जरूरी है। अतिशयोक्तिसे भारतीय जनता सदा बचती रहती। उसकी कमियां उसे दिखानेका यत्न सदा किया जाता। गोरोंकी दलीलोंमें जितनी सचाई होती, वह तुरंत स्वीकार कर ली जाती और गोरोंके साथ स्वतंत्रता और आत्मसम्मानकी रक्षा करते हुए सहयोग करनेके हर अवसरका स्वागत किया जाता। हिन्दुस्तानियोंके आन्दोलनका जितना समाचार वहांके अखबार ले सकते थे उतना उन्हें दे दिया जाता और अखबारोंमें हिंदुस्तानियोंपर बेजा हमला होता तो उसका जवाब भी दिया जाता।

नेटालमें जैसी 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' थी वैसी ही संस्था

ट्रासवालमे भी थी। पर ट्रासवालकी सस्था नेटालसे सर्वथा स्वतंत्र थी। उनके विधानमे भी अतर था। पर उसकी चर्चामे पाठकोको उलझाना नही चाहता। ऐसी सस्था केप टाउनमे भी थी। उसका विधान नेटाल और ट्रासवाल दोनोंकी सस्थाओसे भिन्न प्रकारका था। फिर भी तीनोके कार्य लगभग एक ही तरहके कहे जा सकते है।

१८९४का साल खतम हुआ। कांग्रेसका पहला बरस भी १८९५के मध्यमे पूरा हो गया। मेरा वकालतका काम भी मवक्किलोंको पसंद आया। मेरा प्रवासकाल और लबा हो गया। १८९६ मे लोगोसे इजाजत लेकर ६ महीनेके लिए हिंदुस्तान लौटा, पर पूरे छ महीने भी न रह पाया था कि नेटालसे तार मिला और मुझे तुरत लौट जाना पडा। १८९६-९७ का हाल हमे अलग अध्यायमे मिलेगा।

: ७ :

भारतीयोंने क्या किया ?—२

इस प्रकार नेटाल इंडियन काग्रेसका काम स्थिर हो गया। मैंने भी लगभग ढाई बरस अधिकतर राजनैतिक काम करते हुए नेटालमे बिता लिए। अब मैंने सोचा कि अगर मुझे दक्षिण अफ्रीकामे अभी और रहना हो तो बाल-बच्चोको भी साथ रखना जरूरी है। कुछ समय देशका दौरा कर आनेका भी मन हुआ। सोचा कि उस बीच भारतके नेताओको नेटाल और दक्षिण अफ्रीकाके दूसरे भागोमे बसनेवाले भारतीयोकी स्थितिकी सक्षिप्त कल्पना भी करा दूगा। काग्रेसने ६ महीनेकी छुट्टी दी और मेरी जगह नेटालके सुप्रसिद्ध व्यापारी स्व० आदमजी मिया खाको मत्री

नियुक्त किया। उन्होंने बड़ी होशियारीसे काम किया। स्व० आदमजी मिया खां अंग्रेजी अच्छी जानते थे। अनुभवसे अपने कामचलाऊ ज्ञानको उन्होंने खूब बढ़ा लिया था। गुजराती-का सामान्य अभ्यास था। उनका व्यापार खासतौरसे हब्शियोंमें था। अतः जुलू भाषा और हब्शियोंके रस्म-रिवाजकी उन्हें अच्छी जानकारी थी। स्वभाव शांत और बहुत ही मिलन-सार था। जितना जरूरी हो उतना ही बोलनेकी आदत थी। यह सब लिखनेका हेतु इतना ही है कि बड़ी जिम्मेदारीके पदपर काम करनेके लिए अंग्रेजीके या दूसरे अक्षरज्ञानकी जितनी आवश्यकता होती है उससे कहीं अधिक आवश्यकता सचाई, शान्ति, सहनशीलता, दृढ़ता, अवसरकी पहचान और तदनु-रूप कार्य करनेकी योग्यता, हिम्मत और व्यवहार-बुद्धिकी होती है। ये गुण न हों तो अच्छे-से-अच्छे अक्षरज्ञानकी भी सामाजिक काममें धेले भर कीमत नहीं होती।

१८९६ के मध्यमें मैं हिंदुस्तान लौटा। कलकत्तेके रास्ते आया, क्योंकि उस वक्त नेटालसे कलकत्ते जानेवाले स्टीमर आसानीसे मिल जाते थे। गिरमिटिया कलकत्ते या मद्राससे जहाजपर सवार होते थे। कलकत्तेसे बंबई आते हुए रास्तेमें मेरी ट्रेन छूट गई। इससे मुझे एक दिन इलाहा-बादमें अटकना पड़ा। वहींसे मैंने अपना काम शुरू किया। 'पायोनियर'के मि० चेजनीसे मिला। उन्होंने सौजन्यके साथ बातें कीं। सचाईके साथ मुझे बता दिया कि उनका झुकाव उपनिवेशोंकी ओर है; पर कहा कि आप जो कुछ लिखेंगे उसे पढ़ जाऊंगा और अपने पत्रमें उसपर टिप्पणी भी लिखूंगा। मैंने इतनेको ही काफी समझा।

देशमें रहनेके दिनोंमें दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंकी स्थितिके विषयमें मैंने एक पुस्तिका लिखी। उस पर लगभग सभी अखबारोंमें टीका-टिप्पणी हुई। उसके दो संस्करण

छपवाने पडे। पाच हजार प्रतिया देशके भिन्न-भिन्न स्थानोमे भेजी गई। इन्ही दिनो मैने भारतके नेताओके दर्शन किये--बबईमे सर फीरोजशाह मेहता, न्यायमूर्ति बदरुद्दीन तैयबजी, न्यायमूर्ति रानडे इत्यादिके, पूनामे लोकमान्य-तिलक और उनके मडल, प्रोफेसर भाडारकर, गोपाल कृष्ण गोखले और उनके मंडल वालोके। बबईसे आरभ करके पूना और मद्रासमे भाषण भी किये। इनका विवरण यहां नही देना चाहता।

पर पूनाका एक पवित्र सस्मरण दिये बिना नही रह सकता, यद्यपि अपने विषयके साथ उसका कोई सबध नही। पूनामे सार्वजनिक सभा लोकमान्य तिलकके हाथमे थी। स्वर्गीय गोखलेजीका सबंध दक्खिन सभाके साथ था। मै पहले मिला तिलक महाराजसे। उनसे मैने जब पूनामे सभा करनेकी बात कही तो उन्होने मुझसे पूछा--"आप गोपालरावसे मिल चुके है?"

मैने पहले उनका आशय नही समझा। अत उन्होने फिर पूछा--"श्री गोखलेसे आप मिल चुके है? उन्हे जानते है?"

मैने जवाब दिया--"अभी मिला नही। उन्हे नामसे ही जानता हू। पर मिलनेका इरादा है।"

लोकमान्य--"आप हिंदुस्तानकी राजनीतिसे परिचित नही जान पडते।"

मैने कहा--"विलायतसे पढकर लौटनेके बाद मै हिंदुस्तानमे थोड़े ही दिन रहा और उस अल्पकालमे भी राजनैतिक मामलोंमे जरा भी दखल नही दिया। इस चीजको मै अपने बसके बाहरकी बात मानता था।"

लोकमान्य--"तब मुझे आपको कुछ परिचय देना पडेगा। पूनामे दो पक्ष है--एक सार्वजनिक सभाका, दूसरा दक्खिन सभाका।"

मैंने कहा—"इसके बारेमें तो मैं कुछ-कुछ जानता हूं ।"

लोकमान्य—"यहां सभा करना तो आसान है; पर मैं देखता हूं कि आप अपना सवाल सब पक्षोंके सामने रखना चाहते हैं और मदद भी सबकी चाहते हैं। यह बात मुझे पसंद आती है, पर आपकी सभाका सभापति हममेंसे कोई हो तो दक्खिन सभावाले नहीं आयंगे और दक्खिन सभाका कोई आदमी सभापति बने तो हममेंसे कोई नहीं आयगा। अतः आपको तटस्थ सभापति ढूंढना चाहिए। मैं तो इस मामलेमें सलाह भर दे सकता हूं। दूसरी मदद मुझसे नहीं हो सकेगी। आप प्रोफेसर भांडारकरको जानते हैं ? न जानते हों तो भी उनके पास जाइए। वह तटस्थ माने जाते हैं। राजनैतिक कामोंमें शामिल भी नहीं होते, पर शायद आप उन्हें ललचा सकें। श्री गोखलेसे इस बारेमें बात कीजिए। उनकी सलाह भी लीजिए। बहुत करके वह भी आपको यही सलाह देंगे। प्रोफेसर भांडारकर जैसा पुरुष सभापति बनना स्वीकार कर ले तो मुझे विश्वास है कि दोनों पक्ष सभाका आयोजन करनेका काम उठा लेंगे। हमारी मदद तो इसमें आपको पूरी रहेगी।"

यह सलाह लेकर मैं गोखलेजीके पास गया। इस पहले मिलनमें ही उन्होंने मेरे हृदयमें कैसे राज्याधिकार प्राप्त कर लिया, इसे तो दूसरे प्रसंगमें लिख चुका हूं। जिज्ञासुजन 'यंग इंडिया' या 'नवजीवन'की फाइल देखनेका कष्ट करें।' लोकमान्यकी सलाह गोखलेजीको भी पसंद आई। मैं तुरंत प्रोफेसर भांडारकरके पास पहुंचा। उन विद्वान् बुजुर्गके दर्शन किए। नेटालकी कहानी ध्यान-पूर्वक सुनकर उन्होंने कहा—"आप देखते हैं कि मैं तो सार्वजनिक जीवनमें क्वचित् ही पड़ता हूं। अब तो बूढ़ा भी हुआ। फिर भी आपकी

'देखिये 'यंग इंडिया' १३ जुलाई १९२१, 'नवजीवन' २८ जुलाई '२१

बातोंने मेरे मनपर बहुत असर किया है। आपके सब पक्षोंकी सहायता प्राप्त करनेके विचारको मैं पसंद करता हूं। फिर आप हिंदुस्तानकी राजनीतिसे अनजान जान पड़ते हैं और युवक हैं। अतः दोनो पक्षोसे कहिए कि मैंने आपका अनुरोध स्वीकार कर लिया। जब सभा हो तो उनमेंसे कोई भी मुझे खबर दे देगा तो मैं जरूर हाजिर हूंगा।" पूनामें सुंदर सभा हुई। दोनों पक्षोंके नेता उपस्थित हुए और भाषण दिये।

अनन्तर मैं मद्रास गया। वहां जस्टिस सुब्रह्मण्यम् ऐयरसे मिला। श्री आनंद चार्लु, 'हिंदू' के तत्कालीन संपादक श्री जी० सुब्रह्मण्यम्, 'मद्रास स्टैंडर्ड'के संपादक श्री परमेश्वरम् पिल्ले, प्रख्यात वकील श्री भाष्यम् आयंगार, मि० नॉर्टन आदिसे भी मिला। वहां भी सभा हुई। वहांसे मैं कलकत्ते गया। श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, महाराज ज्योतीन्द्रमोहन ठाकुर, 'इंग्लिशमैन' के संपादक मि० साडर्स आदिसे भी मिला। वहां सभाकी तैयारी हो रही थी कि इतनेमें, यानी १८९६ ई० के नवबर महीनेमें, मुझे नेटालसे तार मिला—"अविलंब आइए।" मैं समझ गया कि हिंदुस्तानियोंके खिलाफ कोई नया आन्दोलन उठा होगा। अतः कलकत्तेका काम पूरा किये बिना ही पीछे फिरा और बम्बईसे जानेवाले पहले ही जहाजपर सवार हो गया। यह स्टीमर दादा अब्दुल्लाकी फर्मने खरीद लिया था और उसके अनेक साहसोंमें नेटाल और पोरबंदरके बीच जहाज चलानेका यह पहला साहस था। इस स्टीमरका नाम 'कोर्लैंड' था। इस स्टीमरके बाद तुरंत ही पर्शियन स्टीम नेविगेशन कंपनीका स्टीमर 'नादरी' भी नेटालके लिए रवाना हुआ। मेरा टिकट 'कोर्लैंड'का था। मेरा कुटुंब भी मेरे साथ था। दोनो जहाजोंमें सब मिलाकर दक्षिण अफ्रीका जाने वाले कोई ८०० मुसाफिर रहे होंगे।

हिंदुस्तानमें जो आंदोलन मैंने किया वह इतनी बड़ी चीज

हो गया—और बड़े अखबारोंमेंसे अधिकांशने उसपर लेख-टिप्पणियां लिखी—कि रायटरने उसके बारेमें विलायत तार भेजे। यह खबर मुझे नेटाल पहुंचते ही मिली। विलायत-के तारोंपरसे रायटरके वहांके प्रतिनिधिने एक मुख्तसर तार दक्षिण अफ्रीका भी भेजा। इस तारमें जो कुछ मैंने हिंदु-स्तानमे कहा था उसमें थोडा नमक-मिर्च लगा दिया गया था। ऐसी अतिशयोक्ति हम अकसर होते देखते हैं। यह सब जान-बूझकर नही किया जाता। बहुधंधी लोग किसी चीजको ऊपर-ऊपरसे पढ लेते हैं। उनका कुछ अपना खयाल तो होता ही है। उसका एक खुलासा होता है। दिमाग उसका एक दूसराही खुलासा बना लेता है। फिर वह जहां-जहा जाता है वहां उसका एक नया ही अर्थ किया जाता है। ये सारी बातें अनायास हुआ करती है। सार्वजनिक कामोंमे यह खतरा रहता है और यह उनकी हद भी होती है। हिंदुस्तानमें मैंने नेटालके गोरोंपर आक्षेप किए। गिरमिटियोंपर लगाये गए तीन पौंडके करके विरुद्ध बहुत कड़ी बातें कहीं। सुब्रह्मण्यम् नामक निरपराध गिरमिटियाको उसके मालिकने पीट दिया। उसके जख्म मैंने अपनी आंखों देखे। उसका सारा मामला मेरे ही हाथमें था। इससे उसकी तसवीर अपनी शक्तिके अनुसार मै ठीक-ठीक खीच सका था। इस सबका खुलासा जब नेटालवासी गोरोने पढ़ा तब वे मुझपर बहुत क्रुद्ध हुए। खूबी यह थी कि जो कुछ मैंने नेटालमें लिखा था वह हिंदुस्तानमें कही और लिखी हुई बातोंसे अधिक तीखा और अधिक ब्योरेवार था। हिंदुस्तानमें मैंने एक भी बात नही कही थी जिसमें तनिक भी अतिशयोक्ति हो, पर अनुभवसे मै इतना जानता था कि किसी भी घटनाका वर्णन अनजान आदमीके सामने करो तो जितना अर्थ हमने उसमें रखा हो वह अनजान श्रोता या पाठक उससे अधिक अर्थ उसमें

देखता है। इससे जानबूझकर हिंदुस्तानमे नेटालका चित्र मैंने कुछ हल्का ही खीचा था। पर नेटालमें तो मेरा लेख बहुत थोड़े गोरे पढते और उसकी परवाह करनेवाले और भी कम होते। हिंदुस्तानमें कही हुई बातके विषयमे इसका उल्टा ही होता और हुआ। रायटरके खुलासोंको तो हजारो गोरे पढते थे। फिर जो बात तारसे लिखने लायक समझी गई हो उसका महत्व जितना वास्तवमें हो उससे अधिक समझा जाता है। नेटालके गोरे जितना सोचते थे उतना असर हिंदुस्तानमें किए हुए मेरे कामका पड़ा होता तो गिरमिटकी प्रथा शायद बद हो जाती और इससे सैकड़ो गोरे मालिकोका नुकसान होता। इसके सिवा यह भी समझा जा सकता है कि नेटालके गोरोकी हिंदुस्तानमें बदनामी हुई।

इस प्रकार नेटालके गोरोका पारा गरम हो रहा था कि इतनेमे उन्होंने सुना कि मै बाल-बच्चोंके साथ 'कोर्लैंड' जहाजमे लौट रहा हू। उस जहाजमें ३-४ सौ हिंदुस्तानी यात्री है। उसीके साथ 'नादरी' नामका दूसरा स्टीमर भी उतने ही मुसाफिर लेकर आ रहा है। इससे बल्ती आगमे घी पड़ा और वह बड़े जोरसे भडक उठी। नेटालके गोरोंने बडी-बडी सभाए की और लगभग सभी प्रमुख यूरोपियन उनमे शामिल हुए। खासतौरसे मेरी और आमतौरसे हिंदुस्तानी कौमकी कड़ी आलोचना की गई। 'कोर्लैंड' और 'नादरी' के आगमनको 'नेटालपर चढ़ाई' का रूप दिया गया। सभामे बोलनेवालोने यह अर्थ निकाला कि मै इन ८०० यात्रियोंको साथ ले आया हू और नेटालको स्वतत्र भारतीयोसे भर देनेके प्रयत्नमें यह मेरा पहला कदम है। सभामें एकमतसे यह प्रस्ताव पास हुआ कि दोनो स्टीमरोंके मुसाफिरोको और मुझे जहाजसे उतरने न दिया जाय। नेटालकी सरकार उन्हें न रोके या न रोक सके तो अपनी जो कमेटी बनाई गई है

वह कानूनको अपने हाथमे ले ले और अपने ही बलसे हिंदुस्तानियोंको उतरनेसे रोके। दोनो स्टीमर एक ही दिन नेटालके बंदर डर्बन पहुचे।

पाठकोंको याद होगा कि १८९६ ई० में हिंदुस्तानमे प्लेगके प्रथम दर्शन हुए। नेटालकी सरकारके पास हमें पीछे लौटानेका कोई कानून-संगत साधन तो था ही नही, प्रवेश प्रतिबंधक कानून तबतक नही बना था। नेटाल सरकारकी सारी हमदर्दी तो ऊपर लिखी हुई कमेटीकी तरफ ही थी। उसके एक मन्त्री स्व० मि० एस्कब उसके काममे पूरा हिस्सा ले रहे थे। उसको भड़का भी वही रहे थे। सभी बंदरगाहोमे यह नियम है कि किसी भी जहाजमें छूतके रोगकी शिकायत हो या वह ऐसे बंदरगाहसे होकर आ रहा हो जहा कोई छूतवाला रोग फैला हुआ हो तो वह इतने दिनोतक 'क्वारंटाइन'मे रखा जाय यानी उस जहाजके साथ संसर्ग बंद रखा जाय और मुसाफिर, माल आदिको उस अवधितक उतारनेकी मनाही रहे। यह रोक आरोग्य-नियमोंके अंदर और बंदरगाहके डाक्टरकी आज्ञासे ही लगाई जा सकती है। नेटालकी सरकारने इस प्रतिबंधके अधिकारका शुद्ध राजनैतिक उपयोग अर्थात् दुरुपयोग किया और दोनों स्टीमरोंपर कोई भी छूतका रोगी न होनेपर भी दोनोको २३ दिनतक डर्बनके बंदरगाहके प्रवेशपथमे रोक रखा। इस बीच कमेटीका काम चलता रहा। दादा अब्दुल्ला 'कोर्लैंड'के मालिक और 'नादरी' के एजेंट थे। कमेटीने उन्हें खूब धमकाया। जहाजोको लौटा दे तो लाभका लोभ भी दिखाया गया और न लौटानेपर व्यापारको धक्का पहुंचानेका डर भी कितनोंने दिखाया। पर कोठीके हिस्सेदार डरपोक न थे। धमकी देनेवालोको जवाब दिया—जबतक हमारा सारा कार-बार चौपट न हो जाय, हम बिलकुल बरबाद न हो जाय, हम

लड़ते रहेंगे। पर डरकर इन निर्दोष यात्रियोंको लौटा देनेका पाप हम करनेवाले नही। जैसे आपको अपने देशका अभिमान है वैसे ही मान लीजिए कि हमे भी कुछ होना चाहिए।" इस कोठीके जो पुराने वकील मि० एफ० ए० लॉटन थे वह भी हिम्मतवाले और बहादुर थे।

इसी बीच भाग्यवश स्वर्गीय श्री मनसुखलाल हीरालाल नाजर (सूरतके कायस्थ और स्वर्गीय न्यायमूर्ति नानाभाई हरिदासके भानजे) अफ्रीका पहुचे। मैं उन्हें जानता नही था। उनके जानेकी भी मुझे खबर नहीं थी। मुझे यह कहनेकी जरूरत शायद ही हो कि 'नादरी' और 'कोर्लैंड' के यात्रियोके लानेमें मेरा कुछ भी हाथ नही था। उनमें अधिकतर तो दक्षिण अफ्रीकाके पुराने बाशिंदे थे। उनमेसे भी बहुतेरे ट्रांसवाल जानेके लिए सवार हुए थे। इन मुसाफिरोके लिए भी कमेटीने धमकीके नोटिस भिजवाये। कप्तानने उन्हें पढकर यात्रियोको सुनाया। उनमे साफ लिखा हुआ था—"नेटालके गोरे बहुत उत्तेजित है और उनके मिजाजकी हालत जानते हुए भी अगर हिंदुस्तानी यात्री उतरनेकी कोशिश करेंगे तो बंदरगाहके ऊपर कमेटीके आदमी खडे रहेंगे और एक-एक भारतीयको उठाकर समुद्रमे फेक देगे।" 'कोर्लैंड'के मुसाफिरोंको इस नोटिसका उलथा मैंने सुनाया। 'नादरी' के मुसाफिरोंको उनमेसे किसी अंग्रेजी जाननेवालेने उसका आशय समझाया। दोनो जहाजोके यात्रियोने वापस जानेसे साफ इनकार कर दिया। यह भी जता दिया—"बहुतेरे यात्रियोको तो ट्रांसवाल जाना है। जो नेटालमे उतरना चाहते है उनमे भी बहुतसे नेटालके पुराने निवासी है। कुछ भी हो, हरएकको नेटालमें उतरनेका कानूनन् हक है और कमेटीकी धमकीके बावजूद अपना हक साबित करनेके लिए मुसाफिर यहा उतरेंगे ही।"

नेटालकी सरकार भी हारी। अनुचित प्रतिबंध कितने दिन चल सकता है ? २३ दिन तो हो गए, पर दादा अब्दुल्ला न डिगे और न हिंदुस्तानी यात्री ही। अतः २३ दिन बाद रोक हटा ली गई और जहाजोंको अंदर आनेकी इजाजत मिली। इस बीच मि० एस्कबने उत्तेजित कमेटीको ठंडा कर दिया। उन्होंने सभा करके कहा—"डर्बनमें यूरोपियनोंने खूब एकता और हिम्मत दिखाई। आप लोगोंसे जितना हो सकता था उतना आपने किया, सरकारने भी आपकी सहायता की। इन लोगोंको २३ दिनतक जहाजसे उतरने नहीं दिया। अपनी भावना और अपने जोशका जो दृश्य आपने दिखाया है वह काफी है। इसका गहरा असर बड़ी सरकारपर पड़ेगा। आपके कामसे नेटाल सरकारका रास्ता आसान हो गया। अब आपने बल-प्रयोग करके एक भी हिंदुस्तानी मुसाफिरको उतरनेसे रोका तो अपना काम आप अपने हाथों बिगाड़ देंगे। नेटाल सरकारकी स्थिति भी कठिन हो जायगी और ऐसा करके भी इन लोगोंको रोकनेमें आप सफल नहीं होंगे। मुसाफिरोंका तो कोई दोष है ही नहीं। उनमें स्त्रियां और बच्चे भी हैं। बम्बईमें जब वे जहाजपर सवार हुए उस वक्त आपकी मनोदशाकी उन्हें खबर भी नहीं थी। इसलिए अब आप मेरी सलाह मानकर अपने-अपने घर चले जाएं और इन लोगोंके आनेमें तनिक भी रुकावट न डालें। पर मैं आप लोगोंको यह वचन देता हूं कि इसके बाद आनेवालोंको रोकनेका अधिकार नेटालकी सरकार धारा सभासे प्राप्त करेगी।" यह तो भाषणका सारमात्र है। मि० एस्कंबके श्रोता निराश तो हुए, पर नेटालके गोरोंपर उनका बहुत भारी प्रभाव था। अतः उनके कहनेसे वे बिखर गए। दोनों जहाज बंदरगाहके अंदर आये।

मेरे बारेमें उन्होंने कहला भेजा—"आप दिन रहते जहाज-

में न उतरें। शामको मैं (मि० एस्कंब) बंदरगाहके सुपरिटेंडेंटको आपको लेनेके लिए भेजूंगा। उनके साथ आप घर जायं। आपके घरवाले जब चाहें उतर सकते हैं।" यह कोई जाब्तेका हुक्म नहीं था, बल्कि कप्तानके लिए मुझे उतरने न देनेकी सलाह थी और मेरे सिरपर जो खतरा झूल रहा था उसकी चेतावनी थी। कप्तान मुझे जबर्दस्ती तो रोक नहीं सकता था। पर मैंने सोचा कि मुझे यह सलाह मान लेनी चाहिए। बाल-बच्चोंको मैंने घर न भेजकर डर्बनके प्रसिद्ध व्यापारी और मेरे पुराने मवक्किल तथा मित्र पारसी रुस्तमजीके यहां भेजा और उनसे कहा कि वहीं तुम लोगोंसे मिलूंगा। मुसाफिर वगैरह उतर गए। इतनेमें मि० लॉटन, दादा अब्दुल्लाके वकील और मेरे मित्र, आये और मुझसे मिले। उन्होंने पूछा—"आप अबतक क्यों नहीं उतरे?" मैंने मि० एस्कंबके पत्रकी बात कही। उन्होंने कहा—"मुझे तो शामतक इंतजार करना और फिर चोर या अपराधीकी तरह शहरमें दाखिल होना पसंद नहीं आता। आपको कोई डर न हो तो अभी मेरे साथ चलें और हम इस तरह पैदल शहरसे होकर चले जायंगे कि जैसे कुछ हुआ ही न हो।" मैंने जवाब दिया—"मैं यह नहीं मानता कि मुझे किसी तरहका डर है। मि० एस्कंबकी सूचनाका आदर करूं या नहीं, यही सवाल मेरे सामने है। इसमें कप्तानकी कुछ जिम्मेदारी है या नहीं, इसको भी थोडा सोच लेना चाहिए।" मि० लॉटनने हंसकर कहा—"मि० एस्कंबने ऐसा क्या किया है कि उनकी सूचनापर आपको तनिक भी ध्यान देना ही पडे। फिर इस सूचनामें शुद्ध भलमनसी ही है, कोई छल-कपट नहीं है, यह माननेके लिए भी आपके पास क्या आधार है? शहरमें क्या हुआ है और उसमें इन भाईसाहबका कितना हाथ है, यह जितना आप जानते हैं उससे ज्यादा मैं जानता हूं। (मैंने

बीचमें सिर हिलाया।) फिर यह मानलें कि उन्होंने अच्छे इरादेसे सलाह दी है तो भी उसपर अमल करनेमें आपकी प्रतिष्ठाकी हानि है, यह मै पक्का मानता हू। इसलिए मेरी तो सलाह ह कि आप तैयार हों तो अभी चलें। कप्तान तो अपना ही आदमी है। इसलिए उसकी जिम्मेदारी अपनी जिम्मेदारी है। उससे पूछनेवाले केवल दादा अब्दुल्ला हो सकते है। वह क्या सोचेंगे, यह मैं जानता हू, क्योंकि इस लड़ाईमें उन्होंने खूब बहादुरी दिखाई है।" मैंने कहा—"तो फिर चलें। मुझे कोई तैयारी नही करनी है। सिर्फ पगड़ी सिरपर धर लेना बाकी है। कप्तानको बताऊं और चल दें।" हमने कप्तानकी इजाजत ले ली।

मि० लॉटन डर्बनके बहुत पुराने और प्रसिद्ध वकील थे। हिंदुस्तान लौटनेके पहले ही उनके साथ मेरा बहुत निकटका संबंध स्थापित हो चुका था। अपने टेढे मुकदमोंमें मैं उनकी ही मदद लेता और अकसर उन्हे बडा (सीनियर) वकील भी बनाता था। वह खुद हिम्मतवाले आदमी थे। कद ऊंचा-पूरा था।

हमारा रास्ता डर्बनके बडे-से-बडे महल्लेसे होकर जाता था। हम जब रवाना हुए तब शामके चार-साढे चार बजे होंगे। आकाशमें कुछ थोड़ेसे बादल थे, पर सूरजको छिपा देनेके लिए काफी थे। सेठ रुस्तमजीके मकान का पैदल जानेपर कम-से-कम एक घंटेका रास्ता था। ज्योंही हम जहाजसे उतरे, कुछ लडकोंने हमें देख लिया। उनमें कोई बड़ी उम्रवाला तो था ही नहीं। आमतौरसे बंदरगाहपर जितने आदमी रहा करते है उतने ही आदमी दिखाई देते थे। मेरी जैसी पगड़ी पहननेवाला अकेला मैं ही था। इससे लड़कोंने मुझे तुरंत पहचान लिया और 'गांधी' 'गांधी', 'इसको मारो,' 'घेरो' चिल्लाते हुए हमारी ओर बढ़ आए। कुछ लडके ढेले भी

फेंकने लगे। कुछ अधेड उम्रवाले गोरे भी उनमें शामिल हो गए। धीरे-धीरे हल्ला बढा। मि० लॉटनने देखा कि पैदल जानेमें खतरा लेना है। अत उन्होंने 'रिक्शा' बुलाया। 'रिक्शा'के मानी है आदमीके खीचनेकी छोटी-सी गाडी। मै तो कभी 'रिक्शा'में बैठा ही न था, कारण कि जिस सवारी-को आदमी खीचता हो उसमे बैठनेसे मुझे सख्त नफरत थी। मगर आज मुझे जान पडा कि रिक्शामे बैठ जाना मेरा धर्म है। पर भगवान् जिसको बचाना चाहते हों वह गिरना चाहे तो भी नही गिर सकता, इसका तो मुझे अपने जीवनके पाच-सात कठिन प्रसगोंमें प्रत्यक्ष अनुभव हो चुका है। मै नही गिरा, इसका तनिक भी यश मै नही ले सकता। रिक्शा खीचनेवाले हवशी ही होते है। छोकरो और बडी उम्रवाले गोरोंने भी रिक्शावालेको धमकाया कि तुमने इस आदमीको रिक्शामें बैठाया तो हम तुम्हें पीटेगे और तुम्हारा रिक्शा भी तोड डालेगे। अत रिक्शावाला 'खा' अर्थात् ना कहकर चलता बना और मेरा रिक्शामे बैठना रह गया।

अब पैदल चलकर जानेके सिवा हमारे पास दूसरा रास्ता नही रहा। हमारे पीछे खासा मजमा जुट गया। ज्यों-ज्यो हम आगे बढते, मजमा भी बढता जाता था। मुख्य रास्ते वैस्ट स्ट्रीटमे पहुचनेपर तो छोटे-बडे सैकडों लोग उसमें शामिल हो गये। एक तगडे आदमीने मि० लॉटनको दोनो हाथोंमें पकडकर मुझसे अलग कर दिया। अत. अब उनकी स्थिति ऐसी न रही कि मेरे पास पहुच सकें। मुझपर गालियो, पत्थरो और जो कुछ भी उनके हाथमे आया उस सब की वर्षा होने लगी। मेरी पगड़ी सिरसे गिरा दी गई। इतनेमें एक मोटे-तगड़े आदमीने पहुचकर मुझको थप्पड जमाया और फिर लात भी मारी। मै चक्कर खाकर गिरही रहा था कि इतनेमें रास्तेके पासके एक मकानके आगनकी रेलिंग मेरे

हाथमें आ गई। मैंने जरा दम लिया और चक्कर दूर होनेपर आगे बढा। जीता घर पहुंचनेकी आशा लगभग छोड़ चुका था; पर इतना मुझे अच्छी तरह याद है कि उस वक्त भी मेरा दिल मारनेवालोंका रत्ती भर भी दोष नही देखता था।

इस तरह मैं अपना रास्ता तै कर रहा था कि इतनेमे डर्बनके पुलिस सुपरिंटेडेटकी पत्नी सामनेकी ओरसे आ निकली। हम एक-दूसरेको अच्छी तरह पहचानते थे। यह महिला बहादुर थी। यद्यपि आकाशमे बादल घिर रहे थे और सूरज भी डूबनेको था, फिर भी इस महिलाने अपनी छतरी मेरी रक्षाके लिए खोल दी और मेरी बगलमे होकर चलने लगी। स्त्रीका अपमान और वह भी डर्बनके बहुत पुराने और लोकप्रिय कप्तानकी पत्नीका यह गोरे नही कर सकते थे। उन्हे चोट भी नही पहुचा सकते थे। अत. उनको बचाते हुए मुझपर जो मार पड़ती वह बहुत हल्की होती। इस बीच पुलिस सुपरिंटेडेटको इस हमलेकी खबर मिली और उन्होंने पुलिसका एक दस्ता भेज दिया, जिसने मुझको घेर लिया। हमारा रास्ता पुलिस चौकीकी बगलसे होकर जाता था। वहां पहुंचे तो देखा कि पुलिस सुपरिंटेडेट खड़े हमारी राह देख रहे है। उन्होंने मुझे चौकीमे ही चले जानेकी सलाह दी। मैंने उन्हे धन्यवाद दिया और उसमे आश्रय लेनेसे इनकार कर दिया। मैंने कहा कि मुझे तो अपने ठिकाने पर ही पहुंचना है। मुझे डर्बनके लोगोंकी न्यायवृत्ति और अपने सत्यपर विश्वास है। आपने जो मेरे रक्षार्थ पुलिस भेजी उसके लिए अहसानमद हू। इसके सिवा मिसेज अलेक्जेडरने भी मेरी रक्षा की है।"

मैं सही-सलामत रुस्तमजीके यहां पहुचा। वहां पहुंचते-पहुंचते लगभग शाम हो गई थी। 'कोलैंड' के डाक्टर दाजी बरजोर रुस्तमजी सेठके यहां मौजूद थे। उन्होने मेरी चोटोका इलाज शुरू किया। चोटे देखी। वे अधिक नही थी।

एक भीतरी बद मुंहकी चोट बहुत दुख रही थी, पर अभी मुझे शांति पानेका अधिकार नहीं मिला था। रुस्तमजी सेठके घरके सामने हजारो आदमी जमा हो गए। रात हुई तो बहुत-से लफंगे लोग भी उस मजमेमें मिल गए। उन लोगोंने रुस्तमजी सेठको कहला भेजा कि गांधीको हमारे हवाले नहीं कर दोगे तो उसके साथ ही तुम्हें और तुम्हारी दुकानको भी जलाकर खाक कर देंगे। रुस्तमजी ऐसे भारतीय न थे जो किसीके डरानेसे डर जाते। सुपरिंटेंडेंट अलेक्जेंडरको इसकी खबर मिली तो वह अपनी खुफिया पुलिसके साथ आकर चुपकेसे इस मजमेमे घुस गए। एक चौकी मगाकर वह उसके ऊपर खड़े हो गए। यो लोगोसे बातचीत करनेके बहाने रुस्तमजीके मकानके दरवाजेपर कब्जा कर लिया, जिससे कोई उसको तोड़कर घुस न सके। खुफिया पुलिसके आदमियोको उन्होंने पहले ही मुनासिब जगहो पर रख दिया था। पहुंचनेके साथ ही उन्होंने अपने एक अहलकारको कह दिया था कि हिंदुस्तानीकी पोशाक पहन और चेहरा रंगकर हिंदुस्तानी व्यापारीका भेष बना ले और मुझसे मिलकर कहे—"आप अपने मित्रकी, उनके मेहमानोकी, उनके मालकी और अपने बालबच्चोंकी रक्षा चाहते हो तो हिंदुस्तानी सिपाहीका पहनावा पहनकर रुस्तमजीके गोदामसे निकलकर मजमेंमेंसे ही मेरे आदमीके साथ चुपकेसे निकल जाइए और पुलिस चौकीपर पहुंच जाइए। इस गलीके मोड़पर आपके लिए गाडी तैयार खड़ी है। आपको और दूसरोको बचानेका मेरे पास बस यही एक रास्ता है। मजमा इतना उत्तेजित है कि उसे रोक रखनेके लिए मेरे पास कोई साधन नहीं। आप जल्दी न करेंगे तो यह मकान जमीदोज कर दिया जायगा। यही नहीं, जानमालका कितना नुकसान होगा, इसका अंदाजा भी मैं नहीं कर सकता।"

मै स्थितिको तुरत समझ गया। मैने उसी क्षण सिपाहीकी पोशाक मांगी और उसे पहनकर निकल गया और उक्त पुलिस कर्मचारीके साथ सही-सलामत चौकीपर पहुच गया। इस बीच श्री अलेक्जेडर अवसरके अनुरूप गीतो और भाषणसे भीड़को रिझा रहे थे। जब उन्हे यह इशारा मिल गया कि मै पुलिस चौकीमे पहुच गया तब उन्होंने अपना सच्चा भाषण आरभ किया :

"आप लोग क्या चाहते है ?"

"हम गांधीको चाहते है।"

"उसको क्या करना चाहते है ?"

"उसे हम जलाएगे।"

"उसने आपका क्या बिगाडा है ?"

"उसने हमारे बारेमे हिंदुस्तानमे बहुतसी झूठी बाते कही हैं और नेटालमे हजारों हिंदुस्तानियोंको घुसा देना चाहता है।"

"पर वह बाहर न निकले तो क्या कीजिएगा ?"

"तो हम इस मकानमे आग लगा देगे।"

"इसमे तो उसके बाल-बच्चे है। दूसरे स्त्री-पुरुष है। स्त्रियो और बच्चोंको आगमे भूनते आपको शर्म नही आती ?"

"यह तो आपका दोष है। आप हमे लाचार करते हैं तो हम क्या करे ? हम तो और किसीको कष्ट देना नही चाहते। गांधीको सौप दीजिए। बस हमें और कुछ नही चाहिए। आप अपराधीको न सौपें और उसे पकड़नेमे दूसरोको नुक-सान पहुचे तो इसका दोष हमारे सिर डालना कहांका न्याय है ?"

सुपरिंटेंडेटने हलकी हंसी हंसकर उन लोगोंको यह खबर दी कि गांधी तो उन लोगोंके बीचसे होकर सही-सलामत दूसरी जगह पहुंच गया ! लोग खिलखिलाकर हंस पड़े और 'झूठ-झूठ' चिल्ला उठे।

सुपरिंटेंडेंट बोले—"आप अपने बूढे कप्तानकी बातका विश्वास न करते हो तो जिन तीन या चार आदमियोंको पसंद करें उनकी कमेटी चुन दें। दूसरे सब लोग यह वचन दें कि कोई मकानके अंदर न घुसेगा और अगर कमेटी गांधीको घरके भीतर न पा सके तो सब लोग शांत होकर घर लौट जाएंगे। आप लोगोंने जोशमें आकर पुलिसके अधिकारको आज नहीं माना, इसमें बदनामी पुलिसकी नहीं, आपकी ही है। इसीसे पुलिसने आपके साथ चाल चली। आपके शिकारको आपके बीचसे ही निकाल लेगई और आप हार गए, इसमें पुलिसको तो आप दोष दे ही नहीं सकते। जिस पुलिस को आपने ही नियुक्त किया है उसने अपने कर्तव्यका पालन किया है।"

यह सारी बातचीत सुपरिंटेंडेंटने इतनी मिठास, इतने हास्य और इतनी दृढताके साथ की कि जो वचन वह मांग रहे थे लोगोंने दे दिया। कमेटी बनी। उसने पारसी रुस्तमजीके मकानका कोना-कोना छान डाला और लोगोंसे कहा—"सुपरिंटेंडेंटकी बात सच है। उसने हमें हरा दिया।" लोग निराश तो हुए; पर अपने वचनपर स्थिर रहे, कोई नुकसान नहीं किया और अपने-अपने घर चले गए। यह दिन १८९७ ई० की १३ वीं जनवरीका था।

इसी दिन सवेरे ज्योंही मुसाफिरोंपर लगी हुई रोक हटी, डर्बनके एक अखबारका रिपोर्टर मेरे पास आया और मुझसे सारी बातें पूछ गया था। मुझपर लगाये गए इलजामोंकी पूरी सफाई दे देना बहुत ही आसान था। मैंने मिसालें देकर दिखा दिया था कि मैंने तिलभर भी अत्युक्ति नहीं की है। जो कुछ मैंने किया है वह मेरा धर्म था। वह मैं न करूं तो मनुष्य कहलानेका भी अधिकारी न होऊंगा। यह सारी कैफियत दूसरे दिन पूरी-की-पूरी प्रकाशित हुई और समझदार

यूरोपियनोंने अपना दोष स्वीकार किया। अखबारोंने नेटालकी परिस्थितिसे सहानुभूति प्रकट की, पर साथ ही मेरे कार्यका पूरा समर्थन किया। इससे मेरी प्रतिष्ठा बढ़ी और साथ-साथ हिंदुस्तानी कौमकी भी। गोरोंपर यह बात साबित हो गई कि गरीब हिंदुस्तानी भी नामर्द नहीं हैं, और व्यापारी भी अपने व्यापारकी परवा किए बिना स्वाभिमान और स्वदेशके लिए लड़ सकते हैं।

इससे एक ओर यद्यपि जातिको दुःख सहन करना पड़ा और स्वयं दादा अब्दुल्लाको भारी नुकसान उठाना पड़ा, फिर भी मैं मानता हूं कि इसके अंतमें तो लाभ ही हुआ। जातिको अपनी शक्तिका कुछ अंदाजा मिला और उसका आत्मविश्वास बढ़ा। मैं भी कुछ अधिक कामका बना, बहुमूल्य अनुभव प्राप्त किया। उस दिनका विचार करता हूं तो देखता हूं कि ईश्वर मुझे सत्याग्रहके लिए तैयार कर रहा था।

नेटालकी घटनाओंका असर विलायतमें भी हुआ। उपनिवेश-सचिव श्री चेंबरलेनने नेटालकी सरकारको तार दिया कि जिन लोगोंने मुझपर हमला किया उनपर मुकदमा चलाया जाना चाहिए और मुझको न्याय मिलना चाहिए।

मि० एस्कंब न्याय-विभागके प्रधान एटर्नी-जनरल थे। उन्होंने मुझे बुलाया और मि० चेंबरलेनके तारकी बात कही। मुझे जो चोट पहुंची थी उसके लिए दुःख प्रकट किया और मैं बच गया इसपर प्रसन्नता प्रकट की। उन्होंने कहा—"मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि आपको या आपकी कौमके किसी आदमीको कष्ट पहुंचे, यह मैं तनिक भी नहीं चाहता था। आपको कष्ट पहुंचनेका मुझे डर था, इसीसे रातमें जहाजसे उतरनेके लिए संदेसा भेजा; पर आपको मेरा सुझाव पसंद नहीं आया। मि० लॉटनकी सलाह आपने मानी

इसके लिए मै आपको तनिक भी दोष नही देना चाहता। आपको जो ठीक जान पड़े उसे करनेका आपको पूरा अधिकार था। मि० चेंबरलेनकी मागके साथ नेटालकी सरकार पूरी तरह सहमत है। हम चाहते है कि अपराधियोंको दंड मिले। हमला करनेवालोमेसे आप किसीको पहचान सकते है ?" मैंने जवाब दिया—"मुमकिन है, एक-दो आदमियोंको मै पहचान सकू, पर यह बात आगे बढे इसके पहले ही मुझे आपको यह बता देना चाहिए कि मैने अपने दिलमे यह निश्चय कर रखा है कि अपने ऊपर हुए हमलेके बारेमें मैं किसीके खिलाफ अदालतमे फरियाद नही करूँगा। हमला करनेवालोका तो मैं कोई दोष भी नही देखता। उन्हे जो कुछ भी खबर मिली वह अपने नेताओसे मिली। उसकी सचाईकी जाच करने वह थोडे बैठ सकते है? मेरे बारेमे उन्होने जो कुछ सुना वह सही हो तो वे भडक उठे और आवेशमे आकर जो न करना चाहिए वह कर बैठे, इसके लिए मै उन्हे दोष नही दे सकता। उत्तेजित जनसमूह इसी रीतिसे न्याय करता आया है। अगर इस विषयमे किसीका दोष है तो उस कमेटीका है जो इस मामलेमे बनाई गई थी, और खुद आपका है और इसलिए नेटालकी सरकारका है। रायटरने चाहे जैसे तार भेजे हो, पर जब आप जानते थे कि मै खुद यहां आ रहा हू तब आपका और कमेटीका फर्ज था कि जो अनुमान आपने किए उनके बारेमे पहले मुझसे पूछते और मेरा जवाब सुनते, फिर जो आपको मुनासिब मालूम होता है वह करते। अब मुझपर जो हमला हुआ उसके लिए मै आपपर या कमेटीपर मुकदमा चला सकू, ऐसा तो है ही नही और यह मुमकिन हो तो भी अदालतके द्वारा न्याय पानेकी इच्छा मुझे नही है। नेटालके गोरोके हककी रक्षाके लिए आपको जो कुछ करना ठीक जान पड़ा वह आपने किया।

यह राजनैतिक विपंय हुआ। मुझे भी इसी मैदानमें आपसे लड़ना और आपको और दूसरे गोरोंको यह दिखाना है कि भारतीय राष्ट्र ब्रिटिश साम्राज्यके एक बड़े भागके रूपमें, गोरोंको नुकसान पहुचाए बिना, केवल अपने सम्मान और अधिकारकी रक्षा करना चाहता है।"

मि० एस्कंब बोले—"आपने जो कुछ कहा वह मैंने समझ लिया और वह मुझे पसद भी आया। आपसे यह सुननेकी मैं आशा नही रखता था कि आप मुकदमा चलाना नही चाहते, और आप मुकदमा चलाना चाहते तो मैं जरा भी नाखुश न होता; पर जब आपने फरियाद न करनेका विचार प्रकट कर दिया है तब मुझे यह कहनेमे हिचक नही कि आपने उचित निश्चय किया है। इतना ही नही, अपने इस सयमसे आप अपनी कौमकी विशेष सेवा करेंगे। साथ ही मुझे यह भी कबूल करना चाहिए कि अपने इस निश्चयसे आप नेटाल सरकारको विषम स्थितिसे बचा लेंगे। आप चाहे तो हम घर-पकड़ वगैरह करेंगे, पर आपको यह बतानेकी जरूरत नही है कि यह सब करनेसे गोरोंका क्रोध फिर उमड़ेगा, अनेक प्रकारकी टीकाएं होंगी और ये बातें किसी भी सरकारको नही रुच सकती। पर अगर आपने अंतिम निश्चय कर लिया हो तो आप अपना विचार जतानेवाली एक चिट्ठी मुझको लिख दें। हमारी बातचीतका खुलासा भेजकर ही हम मि० चेंबरलेनके सामने अपनी सरकारका बचाव नही कर सकते। मुझे तो आपके पत्रके भावार्थका ही तार करना होगा। पर मैं यह नही कहता कि यह चिट्ठी आप मुझे अभी लिखकर दे दें। अपने मित्रोंके साथ आप मशविरा कर लें। मि० लॉटनकी भी सलाह ले लें। इसके बाद भी अगर आप अपनी रायपर कायम रहें तो मुझे लिखें। पर इतना मुझे कह देना चाहिए कि अपनी चिट्ठीमें फरियाद न करनेकी जिम्मेदारी आपको साफ तौरपर अपने

ही ऊपर लेनी होगी। तभी मैं उसका उपयोग कर सकूगा।" मैंने कहा—"इस बारेमे मैंने किसीके साथ मशविरा नही किया है। आपने इस बातके लिए मुझे बुलाया है, यह भी मैं नही जानता था। और इस विषयमें किसीसे सलाह-मशविरा करनेकी इच्छा भी नही है। जब मि० लॉटनके साथ चल देनेका निश्चय किया तभी अपने दिलमे तै कर लिया था कि मुझे कोई चोट पहुचे तो इसके लिए दिलमे बुरा नही मानूगा। अत. पीछे फरियाद करनेका तो सवाल ही नही हो सकता। मेरे लिए तो यह धार्मिक प्रश्न है और जैसा कि आप कहते है, मै यह मानता भी हू कि अपने इस सयमसे मैं अपनी कौमकी सेवा करूँगा। यही नही, खुद मेरा भी इससे लाभ ही है। इसलिए मै अपने ऊपर सारी जिम्मेदारी लेकर यही आपको पत्र लिख देना चाहता हू।" और मैंने वही उनसे सादा कागज लेकर चिट्ठी लिख दी।

: ८ :

भारतीयोंने क्या किया ?—२

विलायतसे संबंध

पिछले प्रकरणोमे पाठकोंने देखा होगा कि भारतीय समाजने अपनी स्थिति सुधारनेके लिए विशेष और सामान्य रूपसे कितना प्रयत्न किया और उससे अपनी प्रतिष्ठा बढाई। दक्षिण अफ्रीकामे जैसे उसने अपने सभी अगोका विकास करनेके लिए यथाशक्ति प्रयत्न किया उसी तरह हिंदुस्तान और विलायतसे जितनी मदद मिल सकती हो उतनी पानेकी कोशिश भी की। हिंदुस्तानके बारेमे तो थोड़ा पहले ही लिख चुका हू। विलायतसे मदद पानेके लिए क्या-क्या किया

गया, अब इसका उल्लेख आवश्यक है। कांग्रेसको ब्रिटिश कमेटीके साथ तो संबंध जोड़ना ही चाहिए था। इसलिए हर हफ्ते हिंदके दादा (दादाभाई नवरोजी) और कमेटीके अध्यक्ष सर विलियम वेडरबर्नको पूरे विवरणकी चिट्ठी लिखी जाती और जब-जब आवेदन-पत्रकी नकल वगैरह भेजनेकी जरूरत होती तब-तब डाक-खर्च वगैरह और कमेटीके साधारण खर्चमें सहायताके रूपमें कम-से-कम १० पौंड भेज दिए जाते।

यही दादाभाईका एक पवित्र संस्मरण लिख दूं। वह इस कमेटीके अध्यक्ष न थे, फिर भी हमें यही जान पड़ा कि रुपये उन्हीकी मार्फत भेजना हमें शोभा देगा, वह भले ही उन्हें हमारी ओरसे अध्यक्षको दे दिया करें। पर पहली ही बार जो रकम हमने भेजी, दादाभाईने उसे लौटा दिया और लिखा कि रुपये भेजने आदि कमेटीसे संबंध-रखनेवाले काम आपको सर विलियम वेडरबर्नकी मार्फत ही करने चाहिए। मेरी अपनी (दादाभाईकी) मदद तो रहेगी ही। पर कमेटीकी प्रतिष्ठा सर विलियम वेडरबर्नकी मार्फत काम लेनेमें ही बढ़ेगी। मैंने यह भी देखा कि दादाभाई इतने बूढ़े होनेपर भी अपने पत्रव्यवहारमें बहुत ही नियमित थे। उन्हें कुछ लिखना न हो तो भी पत्रकी पहुंच तो लौटती डाकसे आ ही जाती और उसमें आश्वासनके दो शब्द तो होते ही। ऐसी चिट्ठियां भी खुद ही लिखते और इन पहुंचवाली चिट्ठियोंकी नकल भी अपनी टिशू पेपर बुकमें छाप लेते।

एक पिछले प्रकरणमें मैं यह भी दिखा चुका हूं कि यद्यपि कांग्रेसका नाम आदि हमने रखा था, पर अपने मसलेको एक पक्ष-का प्रश्न बना देनेकी बात हमने कभी सोची ही नहीं थी। इससे दादाभाईकी जानकारीमें दूसरे पक्षोंके साथ भी हमारा पत्र-व्यवहार चलता रहता। इसमें दो आदमी मुख्य थे ..एक सर मंचेरजी भावनगरी और दूसरे सर विलियम विलसन हंटर। सर

मंचेरजी भावनगरी उन दिनों पार्लमेंटके सदस्य थे। इनको अच्छी मदद मिलती और वह सदा उपयोगी सूचनाएं भी दिया करते; पर दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नके महत्त्वको भारतीयोंसे भी पहले समझने और कीमती मदद देनेवाले थे सर विलियम विलसन हंटर। ये 'टाइम्स'के भारतीय विभागके सम्पादक थे। उनको जब हमारा पहला पत्र मिला तभीसे वह दक्षिण अफ्रीकाकी स्थितिका सच्चा रूप ब्रिटिश जनताके सामने रखने लगे और जहां-जहां ठीक जान पड़ा वहां-वहां निजी पत्र भी लिखे। जब कोई जरूरी मसला पेश होता तब उनकी डाक लगभग हर हफ्ते आती। अपने पहले ही उत्तरमें उन्होंने लिखा—"आपने जो स्थिति जताई है उसे पढ़कर मुझे दुःख हुआ है। अपना काम आप विनयसे, शांतिसे और अत्युक्तिसे बचते हुए कर रहे हैं। मेरी हमदर्दी इस मामलेमें पूरे तौरपर आपकी तरफ है और आपको न्याय मिले इसके लिए जो कुछ मुझसे हो सके वह निजी और सार्वजनिक रूपमें भी करना चाहता हूं। मुझे निश्चय है कि इस मामलेमें हम एक इंच भी पीछे नहीं हट सकते। आपकी मांग ऐसी है कि निष्पक्ष मनुष्य उसमें काटछांट करनेकी बात कह ही नहीं सकता।" लगभग यही शब्द 'टाइम्स'में इस विषयपर उन्होंने जो पहला लेख लिखा उसमें भी लिखे। यही स्थिति उन्होंने अंततक कायम रखी। लेडी हंटरने एक पत्रमें लिखा था कि जीवनके आखिरी दिनोंमें भी वह भारतीय प्रश्नपर एक लेखमाला लिखनेकी बात सोच रहे थे और उसका खाका तैयार कर लिया था।

मनसुखलाल नाजरका नाम पिछले प्रकरणमें दे चुका हूं। अपने प्रश्नको अधिक अच्छी तरह समझानेके लिए वे कौमकी तरफसे विलायत भेजे गए थे। उन्हें दोनों पक्षोंसे मिलकर काम करनेकी हिदायत की गई थी और विलायतमें

रहनेके दिनोंमें वह स्व० सर विलियम हंटर, सर मंचेरजी भावनगरी और कांग्रेसकी ब्रिटिश कमेटीके साथ बराबर मिलते रहते थे। वैसेही वे भारतीय सिविल सर्विसके पेंशनर कर्मचारियों, भारतीय सचिवके दफ्तर और उपनिवेश विभाग आदिसे भी सम्पर्क रखते थे। इस प्रकार एक भी दिशा, जहां हमारी पहुंच हो सकती थी, कोशिशसे खाली नहीं रखी। इस सबका फल इतना तो पक्के तौरसे हुआ कि प्रवासी भारतीयोंकी स्थिति बड़ी सरकारके लिए एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न बन गई और उसका भला-बुरा असर दूसरे उपनिवेशोंपर भी पड़ा। यानी जहां-जहां हिंदुस्तानी बसते थे वहां-वहां हिंदुस्तानी और गोरे दोनों जाग्रत हो गए।

: ६ :

बोअर-युद्ध

जिन पाठकोंने पिछले प्रकरणोंको ध्यानपूर्वक पढा होगा उन्हें इसकी कल्पना हो गई होगी कि बोअर-युद्धके समय दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंकी क्या स्थिति थी। तबतक हुए प्रयत्नोंकी चर्चा भी की जा चुकी है।

१८९९ ई० में डाक्टर जेमिसनने, खानोंके मालिकोंके साथ हुए गुप्त परामर्शके अनुसार, जोहान्सबर्गपर धावा किया। दोनोंकी आशा तो यह थी कि जोहान्सबर्गपर कब्जा हो जानेके बाद ही बोअर सरकारको उनके धावेकी खबर होगी; पर यह हिसाब लगानेमें डा० जेमिसन और उनके दोस्तोंने भारी भूल की। उनका दूसरा अंदाजा यह था कि उनकी गुप्त योजना प्रकट हो भी गई तो रोडेशियामें सिखाये हुए निशानबाजोंके सामने रण-शिक्षासे कोरे बोअर किसान क्या कर

सकेंगे, उन्होंने यह भी सोच रखा था कि जोहान्सवर्गकी आवादीका वहुत वडा भाग तो हमारा स्वागत ही करेगा। पर इस भले डाक्टरका यह हिसाब भी गलत रहा। राष्ट्रपति क्रूगरको सारी योजनाकी खवर वक्तसे मिल गई थी। उन्होंने अतिशय शाति और कुशलताके साथ गुप्त रीतिसे डाक्टर जेमिसनका सामना करनेकी तैयारी कर ली और साथ-साथ जो लोग साजिशमे उनके साथी थे उन्हे गिरफ्तार कर लेनेकी तैयारी भी कर रखी। अत. डाक्टर जेमिसन जोहान्सवर्गके पास पहुच पाए इसके पहले ही वोअर सेनाने गोलियोंकी वौछारसे उनका स्वागत किया। इस सेनाके सामने डाक्टर जेमिसनका जत्था टिक नही सकता था। जोहान्सवर्गमे कोई वगावत न कर सके, इसका भी पूरा प्रवध कर लिया गया था। इससे वहा किसीने सिर उठानेका साहस नही किया। राष्ट्रपति क्रूगरकी सरगर्मीसे जोहान्सवर्गके करोडपति अवाक् रह गये। इतनी वढिया तैयारी कर रखनेका अति सुदर फल यह हुआ कि इस सकटका सामना करनेमे सरकारका कम-से-कम पैसा खर्च हुआ और जानका नुकसान भी कम-से-कम हुआ।

डा० जेमिसन और उनके दोस्त सोनेकी खानोंके मालिक पकडे गए। उनपर तुरत मुकदमा चलाया गया। कितनोंको फांसीकी सजा हुई। इनमे अधिकांश तो करोडपति ही थे। वड़ी सरकार इसमे क्या कर सकती थी? दिन-दहाडेका हमला था। राष्ट्रपति क्रूगरका महत्व एकवारगी वढ गया। उपनिवेश-सचिव मि० चेवरलेनने दीनवचन-युक्त तार भेजा और राष्ट्रपति क्रूगरके दयाभावको जगाकर उन वडे आदमियोंके लिए दयाकी भीख मागी। राष्ट्रपति क्रूगर अपना दाव अच्छी तरह खेलना जानते थे। दक्षिण अफ्रीकामे कोई शक्ति उनकी राजशक्ति छीन सकती है, इसका डर उन्हे था ही नही।

डाक्टर जेमिसन और उनके मित्रोकी साजिश उनकी गणनाके अनुसार तो सुयोजित वस्तु थी, पर राष्ट्रपति क्रूगरके हिसाबसे वह बालबुद्धिका कार्य थी। इसलिए उन्होने मि० चेवरलेनकी विनती स्वीकार कर ली और किसीको भी फांसीकी सजा नही दी। इतना ही नही, सभी अपराधियोको क्षमा देकर छोड़ दिया!

पर उछला हुआ अन्न कबतक पेटमें रह सकता है? राष्ट्रपति क्रूगर भी जानते थे कि डा० जेमिसनका हमला तो गभीर रोगका छोटासा चिन्ह-मात्र था। जोहान्सवर्गके करोड़पति अपनी बेइज्जतीको किसी तरह भी धो डालनेका प्रयत्न न करें, यह हो नही सकता था। फिर जिन सुधारोंके लिए डा० जेमिसनके हमलेकी योजना की गई थी उनमेसे तो एक भी नही हो पाया था। इसलिए करोडपति मुंह बद किये बैठे रहे यह मुमकिन नही था। उनकी मांगोके साथ दक्षिण अफ्रीकामे ब्रिटिश साम्राज्यके प्रधान प्रतिनिधि (हाई कमिश्नर) लार्ड मिल्नरकी पूरी हमदर्दी थी। वैसे ही मि० चेवरलेनने भी ट्रांसवालके विद्रोहियोके प्रति राष्ट्रपति क्रूगरकी महती उदारताकी सराहना करनेके साथ ही सुधार करनेकी आवश्यकताकी ओर भी उनका ध्यान खीचा था। सभी मानते थे कि बिना तलवार उठाये यह झगडा मिटनेवाला नही है। खानोके मालिकोकी मागे ऐसी थीं कि उनका अन्तिम परिणाम ट्रासवालमे बोअरोंकी प्रधानताका नष्ट हो जाना ही हो सकता था। दोनों पक्ष समझते थे कि आखिरी नतीजा लड़ाई ही है। इसलिए दोनो उसकी तैयारी कर रहे थे। इस समयका शब्द-युद्ध देखने लायक था। राष्ट्रपति क्रूगर बाहरसे अधिक हथियार मंगाते तो ब्रिटिश एजट उन्हें चेतावनी देता कि आत्मरक्षाके लिए अग्रेज सरकारको भी दक्षिण अफ्रीकामे थोड़ी सेना लानी होगी। जब ब्रिटिश सेना दक्षिण

अफ्रीकामे दाखिल होती तो राष्ट्रपति क्रूगरकी ओरसे ताना मारा जाता और ज्यादा तैयारी की जाती। यो एक पक्ष दूसरेपर दोष लगाता और दोनो युद्धकी तैयारी करते जाते।

राष्ट्रपति क्रूगर जब पूरी तैयारी कर चुके तब उन्होंने देखा कि अब बैठे रहना तो अपनी गरदन खुद दुश्मनके हाथमे दे देना है। ब्रिटिश साम्राज्यके पास धन-जनका अक्षय्य भडार है। वह लंबे अरसेतक धीरे-धीरे तैयारी करते और राष्ट्रपति क्रूगरको समझाते-बुझाते न्यायकी विनती करते हुए वक्त गुजार सकता है और यो दुनियाको दिखा सकता है कि जब राष्ट्रपति क्रूगर खान मालिकोको न्याय दे ही नही रहे है तब हमे निरुपाय होकर युद्ध करना पड़ रहा है। यो कहकर वह ऐसी जबर्दस्त तैयारीके साथ युद्ध करेगा कि बोअर उसके सामने टिक ही नही सकेगे और उन्हे दीन बनकर उसकी मांगे मंजूर करनी पड़ेगी। जिस जातिके १८ से लगाकर साठ सालतकके सारे पुरुष कुशल योद्धा हो, जिसकी स्त्रिया भी चाहे तो तलवारके हाथ दिखा सकती हो, जिस जातिमे स्वतंत्रता धार्मिक सिद्धात माना जाता हो, वह जाति चक्रवर्ती राजाके बलके सामने भी दैन्य ग्रहण नही करेगी ! बोअर जनता ऐसी ही वीर थी।

आरेंज फ्री स्टेटके साथ राष्ट्रपति क्रूगरने पहले ही मंत्रणा कर ली थी। इन दोनों बोअर राज्योकी एक ही पद्धति थी। राष्ट्रपति क्रूगरका यह इरादा बिल्कुल ही नही था कि ब्रिटिश मांगको पूरा-पूरा या इस हदतक मजूर कर ले कि खानोंके मालिकोको सतोष हो जाय। अत. दोनो राज्योने सोचा कि जब युद्ध होना ही है तब अब इसमे जितनी देर की जायगी उतना ही वक्त ब्रिटिश सल्तनतको अपनी तैयारी बढानेके लिए मिलेगा। फलत राष्ट्रपति क्रूगरने अपना अतिम विचार और आखिरी मांग लार्ड मिलनरको लिख भेजी। इसके साथ ही ट्रांसवाल और आरेंज फ्री स्टेटकी सरहदोंपर फौज

भी जमादी। इसका नतीजा दूसरा कुछ हो ही नही सकता था। ब्रिटिश साम्राज्य जैसा चक्रवर्ती राज्य धमकीके सामने कब झुक सकता है? 'अल्टिमेटम'की अवधि पूरी हुई और बोअर सेना विद्युद्वेगसे आगे बढ़ी। उसने लेडी स्मिथ, किंबरली और मेफेकिंगका घेरा डाल दिया। इस प्रकार १८९९ मे यह महायुद्ध आरभ हुआ। पाठक जानते ही है कि इस युद्धके कारणोमें यानी ब्रिटिश मागोमे बोअर राज्योंमे भारतीयोंकी परिस्थिति, और उनके साथ होनेवाला व्यवहार भी शामिल था।

इस अवसरपर दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंका कर्तव्य क्या है, यह महत्वपूर्ण प्रश्न उनके सामने उपस्थित हुआ। बोअर लोगोंमेसे तो सारा पुरुषवर्ग लड़ाईपर चला गया। वकीलोंने वकालत छोडी, किसानोने अपने खेत छोड़े, व्यापारियोने अपनी कोठियो-दुकानोपर ताले डाल दिए, नौकरी करनेवालोने नौकरी छोड़ी। अग्रेजोंकी तरफसे बोअरोके बराबर तो नही, फिर भी केप कॉलोनी, नेटाल और रोडेशियामे असैनिक वर्गके बहुसख्यक लोग स्वयसेवक बने। बहुतसे बड़े अंग्रेज वकीलो और व्यापारियोने उनमे नाम लिखाया। जिस अदालतमें मै वकालत करता था उसमे भी अब बहुत ही थोड़े वकील दिखाई दिये। बड़े वकीलोमेसे तो अधिकाश लड़ाईके काममे लग गये थे। हिन्दुस्तानियो पर जो तुहमते लगाई जाती है उनमेसे एक यह है, "ये लोग दक्षिण अफ्रीकामे केवल पैसा कमाने और जोडनेके लिए आते है। हम (अग्रेजो) पर वे निरे भार रूप है और जैसे कीडा काठके भीतर बसकर उसको कुरेदकर खोखला कर देता है वैसे ही ये लोग हमारा कलेजा कुरेदकर खा जानेके लिए ही आये है। इस देशपर हमला हो, हमारा घरबार लुट जानेका वक्त आजाय तो ये हमारे कुछ भी काम आनेवाले नही। हमे लुटेरोसे अपना ही बचाव नही करना होगा, इन लोगोकी रक्षा भी करनी होगी।"

इस आरोपपर भी हम सभी भारतीयोने विचार किया। हम सबको जान पडा कि यह आरोप मिथ्या, निराधार है। इसे सिद्ध करनेका यह बहुत बढिया मौका है। पर दूसरी ओरसे नीचे लिखी बाते भी सोचनी पडी :

"हमे तो अंग्रेज और बोअर दोनों एकसा सताते हैं। ट्रांसवालमे दु ख हो और नेटाल, केप कॉलोनीमें न हो, सो बात नही है। कोई अतर है तो केवल मात्राका। फिर हमारी स्थिति तो गुलाम कौमकी-सी कही जाती है। हम जानते है कि बोअर जैसी मुट्ठीभर आदमियोकी कौम अपने अस्तित्वके लिए लड रही है। इस दशामे भी हम उसका विनाश होनेमे सहायक क्यो हो? अतमे व्यवहारकी दृष्टिसे देखे तो कोई यह कहनेका साहस नही कर सकता, कि बोअर इस लडाईमें हार जाएंगे। वह जीत गए तो हमसे बदला चुकानेमे कब चूकनेवाले है?"

इस दलीलको पेश करनेवाला हममेसे एक सबल पक्ष था। मैं खुद भी इस दलीलको समझता और उसको मुनासिब वजन भी देता था। फिर भी वह मुझे ठीक नही लगी और उसके भीतर भरे हुए अर्थका उत्तर मैंने अपने आपको और कौमको इस प्रकार दिया

"दक्षिण अफ्रीकामे हमारी हस्ती महज ब्रिटिश प्रजाकी हैसियतसे ही है। हरएक अर्जीमे हमने ब्रिटिश प्रजाकी हैसियतसे ही हक मागे है। ब्रिटिश प्रजा होनेमे हमने गौरव माना है, या अपने ऊपर शासन करनेवालो और दुनियासे यह मनवाया है कि उसमे हमारा गौरव है। राज्याधिकारियोने भी हमारे हकोकी रक्षा केवल इसीलिए की है कि हम ब्रिटिश प्रजाजन हैं और जो थोडे-बहुत हक बचाए जा सके है वह भी हमारे ब्रिटिश प्रजा होनेसे ही। जब अग्रेजोका और हमारा भी घरबार लुट जानेका खतरा हो तब महज दर्शककी

तरह दूरसे तमाशा देखते रहे तो यह हमारे मनुष्यत्वको शोभा नही देगा। यही नहीं, यह अपने कष्टको और बढा लेना भी होगा। जिस आरोपको हम मिथ्या मानते है उसको झूठा साबित कर देनेका हमें अनायास अवसर मिला है। इस अवसरको खो देना अपने हाथों ही उस इल्जामकी सचाईका सबूत पेश कर देना होगा। फिर हमारे ऊपर अधिक दु.ख आए और अंग्रेज और ज्यादा ताना मारें तो यह अचरज-की बात न होगी। यह तो हमारा ही अपराध माना जायगा। अंग्रेजोंके सारे आरोप आधार-रहित है, उनमे दलीलके लायक भी दम नही है, यह कहना अपने आपको ठगने जैसा है। यह सही है कि ब्रिटिश साम्राज्यमें हमारी हैसियत गुलाम की-सी है, पर अबतक हमारा व्यवहार यही रहा है कि साम्राज्यमे रहते हुए गुलामीसे छूटनेकी कोशिश करते रहे। हिंदुस्तानके सभी नेता इसी नीतिका अनुसरण कर रहे है। हम भी यही करते रहे है। अगर हम चाहते हों कि ब्रिटिश साम्राज्यके अंग बने रहकर ही अपनी स्वाधीनता प्राप्त करें और उन्नति करें तो इस वक्त लड़ाईमे तन-मन-धनसे अंग्रेजों-की मदद करके वैसा करनेका यह सुनहला मौका है। बोअरोंका पक्ष न्यायका पक्ष है, यह बात अधिकांशमे स्वीकार की जा सकती है; पर किसी राज्यतंत्रके अंदर रहकर प्रजावर्गका प्रत्येक जन हर मामलेमे अपनी निजकी रायपर अमल नहीं कर सकता। राज्याधिकारी जितने काम करें सब ठीक ही हों, यह नही होता। फिर भी प्रजावर्ग जबतक शासन-विशेषको स्वीकार करता है तबतक उसके कार्योंके अनुकूल होना और उनमे सहायता करना उसका स्पष्ट धर्म है।

"फिर प्रजाका कोई वर्ग धार्मिक दृष्टिसे राज्यके किसी कार्यको अनीतिमय मानता हो तो उसका फर्ज है कि उस कार्यमे विघ्न डालने या सहायता करनेके पहले राज्यको उस

अनीतिसे बचानेकी कोशिश पूरे तौरसे और जानकी जोखिम उठाकर भी करे। हमने ऐसा कुछ नही किया। ऐसा धर्म हमारे सामने उपस्थित भी नही है और न हममेंसे किसीने यह कहा या माना है कि ऐसे सार्वजनिक और व्यापक कारणसे हम इस लडाईमें शामिल होना नहीं चाहते। अत प्रजारूपमे हमारा सामान्य धर्म तो यही है कि लडाईके गुण-दोषका विचार न कर जब वह हो ही रही है तो उसमे यथाशक्ति सहायता करे। अंतमे यह कहना या मानना कि बोअर राज्योंकी जीत होनेपर—वे न जीतेंगे यह माननेके लिए कोई भी कारण नही है—हम चूल्हेसे निकलकर भाडमें गिरेंगे और पीछे वे मनमाना वैर चुकाएंगे, वीर बोअर-जाति और खुद अपने साथ भी अन्याय करना है। यह बात तो महज हमारी नामर्दीकी निशानी गिनी जायगी। ऐसा सोचना तक अपनी वफादारीको बट्टा लगाना होगा। कोई अंग्रेज क्या क्षणभरके लिए भी यह सोच सकता है कि अंग्रेज हार गए तो मेरी अपनी क्या दशा होगी? लडाईके मैदानमे उतरनेवाला कोई भी आदमी अपनी मनुष्यता गंवाए बिना ऐसी दलील कर ही नहीं सकता।"

यह दलील मैंने १८९९ मे सामने रखी थी और आज भी उसमे कही रद्दोबदलकी गुंजाइश नही दिखाई देती। अर्थात् ब्रिटिश राज्यतंत्रके प्रति जो मोह उस वक्त मेरे मनमें था, उस राज्यतंत्रके अधीन रहकर अपनी आजादी हासिल कर लेनेकी जो आशा उस समय मैंने बांधी थी वह मोह और वह आशा आज भी मेरे मनमें बनी हो तो मैं अक्षरशः यही दलील दक्षिण अफ्रीकामे और वैसी परिस्थिति-में यहां भी पेश करूंगा। इस दलीलका खडन करने-वाली बहुतेरी दलीले मैंने दक्षिण अफ्रीकामें सुनी और उसके बाद विलायतमे भी सुनी। फिर भी अपने विचार बदलनेका

कोई भी कारण मैं नहीं देख सका। मैं जानता हूं कि मेरे आजके विचारोंका प्रस्तुत विषयके साथ कुछ भी संबंध नहीं; पर ऊपरका भेद जता देनेके लिए दो सबल कारण हैं। एक तो यह कि यह पुस्तक उतावलीसे हाथमें लेनेवाला इसे धीरजके साथ और ध्यानपूर्वक पढ़ेगा, यह आशा रखनेका मुझे कोई हक नहीं। ऐसे पाठकको मेरी आजकलकी सरगर्मीके साथ उपर्युक्त विचारोंका मेल बैठाना कठिन होगा। दूसरा कारण यह है कि इस विचार-श्रेणीके अन्दर भी सत्यका ही आग्रह है। जैसा अन्तरमें है वैसा ही दिखाना और तदनुसार आचरण करना धर्माचरणकी आखिरी नहीं, पहली सीढ़ी है। धर्मकी इमारत इस नींवके बिना खड़ी करना असंभव है।

अब हम पिछले इतिहासकी ओर लौटें।

मेरी दलील बहुतोंको पसंद आई। मैं पाठकोंसे यह मनवाना नहीं चाहता कि यह दलील अकेले मेरी ही थी। फिर यह दलील पेश की जानेके पहले भी लड़ाईमें साथ देनेका विचार रखनेवाले बहुतेरे हिंदुस्तानी थे ही; पर अब व्याव-हारिक प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि युद्धके इस नक्कारखानेमें हिंदुस्तानी तूतीकी आवाज कौन सुनेगा? उसकी क्या गिनती होगी? हथियार तो हममेंसे किसीने कभी हाथमें लिया ही नहीं था। युद्धके बिना हथियारवाले काम करनेके लिए भी तालीम तो मिलनी ही चाहिए। यहां तो एक तालपर कूच करना भी हममेंसे किसीको नहीं आता था। सेनाके साथ लंबी मंजिलें करना, अपना सामान खुद लादकर चलना, यह भी हमसे कैसे होगा? फिर गोरे हम सबको कुली ही समझेंगे। अपमान भी करेंगे, तिरस्कारकी दृष्टिसे देखेंगे। यह सब कैसे सहन होगा? हमने फौजमें भरती होनेकी मांग की तो इस मांगको मंजूर कैसे करायेंगे? अन्तमें हम सब इस

निश्चयपर पहुचे कि इस मागको मजूर करानेके लिए जोरदार कोशिश करें। काम कामको सिखाता है। इच्छा होगी तो शक्ति ईश्वर देगा ही। सौंपा हुआ काम कैसे होगा, इसकी चिंता छोड दें। युद्ध-कार्यकी जितनी शिक्षा मिल सके उतनी ले ले और एक वार सेवा-धर्म स्वीकार करनेका निश्चय कर लें तो फिर मान-अपमान के विचारको दूर रखे। अपमान हो तो उसे सहकर भी सेवा करते रहे।

अपनी मांगको मजूर करानेमे हमे वेहद कठिनाइयोका सामना करना पडा। उनका इतिहास रोचक है, पर उसे देनेका यह स्थान नही। इसलिए इतना ही कह देना काफी होगा कि हममेसे मुख्य जनोने घायलो और रोगियोकी सेवा-शुश्रूषा करनेकी शिक्षा प्राप्त की, अपनी शारीरिक स्थितिके विषयमे डाक्टरका सार्टिफिकेट हासिल किया और लडाईपर जानेकी माग सरकारके पास भेज दी। इस पत्र और मागको मंजूर करनेके लिए उसमे जो आग्रह दिखाया गया था उसका बहुत अच्छा असर हुआ। पत्रके उत्तरमे सरकारने हमारा उपकार माना, पर उस वक्त हमारी माग मजूर करनेसे इन्कार किया। इस वीच वोअरोका वल वढता गया। उनका वढाव जवर्दस्त वाढकी तरह हुआ और नेटालकी राजधानीतक पहुच जानेका खतरा दिखाई देने लगा। हजारो जख्मी हुए। हमारी कोशिश तो जारी ही थी। अतमे 'ऐम्ब्युलेंस कोर' (घायलोंको उठाने और उनकी सेवा करनेवाले दस्ते) के रूपमे हमे स्वीकार कर लिया गया। हम तो लिख ही चुके थे कि अस्पतालोमे पाखाने साफ करने या झाडू लगानेका काम भी हमे मजूर होगा। अतः ऐम्ब्युलेंस कोर बनानेका सरकारका विचार हमे स्वागत करने योग्य जान पडे, इसमें कोई अचरजकी वात नही। हमारा प्रस्ताव स्वतत्र और गिरमिट-मुक्त भारतीयोके विषयमें ही था, पर हमने सलाह दी थी कि

गिरमिटियोंको भी इसमे शामिल कर लेना वांछनीय है। इस वक्त तो सरकारको जितने भी आदमी मिल सके उतने दरकार थे। इससे सब कोठियोमे भी निमत्रण भेजे गये। फलत. लगभग ११०० भारतीयोंका शानदार विशाल दस्ता डर्बनसे रवाना हुआ। उसके प्रस्थानके समय श्री एस्कंबने, जिनके नामसे पाठक परिचित ही है और जो नेटालके गोरे स्वयं-सेवकोके महानायक थे, हमे धन्यवाद और आशीर्वाद दिया।

अग्रेजी अखवारोंको यह सव चमत्कार-सा लगा। हिंदुस्तानी युद्धमे कुछ भी मदद देगे इसकी उन्हे आशा ही नही थी। एक अग्रेजने अपने एक प्रमुख पत्रमे एक स्तुतिकाव्य लिखा, जिसके टेककी पक्तिका अर्थ यह है, "अन्ततः हम सभी एक ही साम्राज्यके बच्चे है।"

इस दस्तेमे ३०० से ४०० तक गिरमिट-मुक्त हिंदुस्तानी थे जो स्वतत्र भारतीयोंकी कोशिशसे इकट्ठा हुए थे। इनमेसे ३७ मुखिया माने जाते थे। इन्ही लोगोंके हस्ताक्षरसे सरकारके पास प्रस्ताव भेजा गया था और दूसरोको इकट्ठा करनेवाले भी यही थे। नेताओमे बैरिस्टर, क्लर्क, मुनीम आदि थे। वाकीके लोगोंमे कारीगर, राज, वढ़ई और मामूली मजदूर वगैरह थे। इनमे हिंदू, मुसलमान, मद्रासी, उत्तर भारत वाले इस प्रकार सभी वर्गोंके लोग थे। व्यापारी वर्गमेंसे, कह सकते है कि एक भी आदमी नही था; पर व्यापारियों-ने अपना हिस्सा पैसेके रूपमे दिया और काफी दिया।

इतने बड़े दस्तेको जो फौजी भत्ता मिलता है उसके अति-रिक्त दूसरी जरूरते भी होती है और वे पूरी हो जाय तो इस कठिन जीवनमे कुछ राहत मिल जाती है। ऐसी राहत देने-[illegible] चीजे जुटानेका भार व्यापारी वर्गने अपने सिर लिया। [illegible] साथ-साथ जिन घायलोकी हमे सेवा करनी पड़ती थी उनके लिए भी मिठाई, बीड़ी-सिगरेट आदि देनेमें

उन्होंने अच्छी मदद की। हमारा पडाव जब किसी नगरके पास होता तो वहाके व्यापारी ऐसी मदद देनेमे पूरा हिस्सा लेते थे।

जो गिरमिटिए हमारे दस्तेमे शामिल हुए थे उनके लिए उनकी अपनी कोठियोसे अग्रेज नायक भेजे गए थे; पर काम तो सबका एक ही था। सबको साथ ही रहना भी होता था। ये गिरमिटिए हमे देखकर बहुत खुश हुए और एक पूरे दस्तेकी व्यवस्था सहज ही हमारे हाथमे आ गई। इससे यह सारा दस्ता हिंदुस्तानी दस्ता ही कहा गया और उसके कामका यश भी भारतीय जनताको ही मिला। सच पूछिये तो गिरमिटियोके इसमे शामिल होनेका यश भारतीय जनता नही ले सकती थी, उसके अधिकारी तो कोठीवाले ही थे। पर इतना सही है कि दस्ते सगठित हो जानेके बाद उसकी सुव्यवस्थाका यश स्वतत्र भारतीय अर्थात् भारतीय जनता ही ले सकती थी और इसका स्वीकार जनरल बूलरने अपने खरीतोमे किया है।

हमे घायलो और पीडितोकी सेवा-शुश्रूषाकी शिक्षा देनेवाले डाक्टर बूथ भी मेडिकल सुपरिटेडेंटके रूपमे हमारे दस्तेके साथ थे। ये भले पादरी थे और भारतीय ईसाइयोमें काम करते हुए भी सबके साथ मिलते-जुलते थे। ऊपर जिन ३७ आदमियोको मैने नेताओमे गिनाया है उनमेंसे अधिकाश इस भले पादरीके शिष्य थे।

जैसे हिंदुस्तानियोका दस्ता बना था वैसे ही यूरोपियनोका भी बनाया गया था। दोनोको एक ही जगह काम भी करना होता था।

हमारा प्रस्ताव बिना शर्तके था। पर स्वीकार-पत्रमें यह जता दिया गया था कि हमे तोप या बदूककी मारकी हदमे जाकर काम नही करना होगा। इसके मानी यह होते थे कि

रणक्षेत्रमे जो सिपाही घायल हो उन्हे सेनाके साथ रहनेवाला स्थायी सेवादल (ऐम्ब्युलेंस कोर) उठाकर फौजके पीछे, तोप-बंदूककी मारके बाहर पहुंचा दे। गोरोका और हमारा तात्कालिक सेवादल संगठित करनेका कारण यह था कि लेडी स्मियमे घिरे हुए जनरल व्हाइटको छुड़ानेके लिए जनरल बूलर महाप्रयास करनेवाले थे और इसमे इतने आदमियोके घायल होनेका डर था कि स्थायी सेवादल उन्हे सम्हाल नही सकता था। लड़ाई ऐसे प्रदेशमे हो रही थी जहा रणक्षेत्र और केन्द्रके बीच पक्की सड़के भी नही थी। इस कारण घोड़ा-गाडी आदि सवारियोंसे घायलोंको ले जाना भी मुमकिन नही था। केन्द्रीय शिविर सदा किसी-न-किसी रेलवे स्टेशनके पास रखा जाता था और वह मैदानसे सात-आठसे लगाकर पच्चीस मीलतकके फासले पर होता था।

हमे काम तुरत मिल गया और वह जितना हमने सोचा था उससे ज्यादा कड़ा था। घायलोको उठाकर ७-८ मील ले जाना तो मामूली बात थी, पर अकसर बुरी तरह घायल सैनिको और अफसरोको उठाकर हमे पच्चीस-पच्चीस मील ले जाना पड़ता था। रास्तेमें उन्हे दवा भी देनी पडती थी। कूच सवेरे ८ बजे शुरू होता और शामके पांच बजे छावनीके अस्पतालपर पहुच जाना पडता। यह बहुत कठिन काम समझा जाता। घायलको उठाकर एक ही दिनमे २५ मील ले जानेका मौका तो एक ही बार आया। फिर गुल्मे अंग्रेजोंकी हार-पर-हार हो गई और जख्मियोकी तादाद बहुत बढ़ गई। इससे हमे मारके अंदर ले जानेका विचार भी अधिकारियोको ताकपर रख देना पड़ा। पर मुझे यह बता देना होगा कि जब ऐसा मौका आया तब हमसे यह कह दिया गया कि आपके साथ की हुई शर्तके अनुसार आप लोग ऐसी जगह नही भेजे जा सकते जहा आपको तोपका गोला या बदूककी गोली लगनेका खतरा हो। इसलिए

अगर आप इस खतरेमे न पडना चाहते हो तो आपको इसके लिए मजबूर करनेका जनरल बूलरका जरा भी इरादा नही। पर आप यह जोखिम उठा लेगे तो सरकार आपका अहसान मानेगी। हम तो जोखिम लेना चाहते ही थे। खतरेसे बाहर रहना हमे कभी पसंद नही आया था। अत हम सबने इस अवसरका स्वागत किया, पर किसीको न गोली लगी और न कोई और तरहकी चोट पहुची।

इस दस्तेके रोचक अनुभव तो कितने ही है, पर उन सबको देनेके लिए यहा स्थान नही। फिर भी इतना बता देना चाहिए कि हमारे दस्तेको, जिसमे अनघड, शिक्षा-सस्कार-रहित गिरमिटिए भी शामिल थे, यूरोपियनोके स्थायी सेवादल और काली फौजके गोरे सिपाहियोसे अकसर मिलने-जुलने और साथ काम करनेके मौके आते, पर हममेसे किसीको यह नही जान पडा कि गोरे हमारे साथ अशिष्ट व्यवहार करते है या हमें तुच्छ समझते है। गोरोके तात्कालिक दस्तेमे तो दक्षिण अफ्रीकामे बसे हुए गोरे ही भरती हुए थे। लडाईके पहले वे हिंदुस्तानी विरोधी आन्दोलन करनेवालोमेसे थे, पर इस सकट-कालमे हिंदुस्तानी अपने निजके दुख भूलकर हमारी मददके लिए आगे आये है, इस ज्ञान और इस दृश्यने उनके दिलको भी क्षण भरके लिए पिघला दिया था। जनरल बूलरके खरीतेमे हमारे कामकी तारीफ की गई थी, यह लिख चुका हू। ३७ मुखियोको लडाईमे अच्छा काम करनेके लिए तमगे भी दिए गये।

लेडी स्मिथके छुटकारेके लिए जनरल बूलरने जो यह हमला किया था उसके पूरा होनेके दो महीनेके अदर ही हमारे और गोरोके दस्तोको भी घर जानेकी इजाजत दे दी गई। लडाई तो इसके बाद बहुत दिनोतक चलती रही। हम तो फिर शामिल होनेके लिए सदा ही तैयार थे और विघटनके आदेशके

साथ यह कह दिया गया था कि फिर ऐसी जबर्दस्त जंगी कार्रवाई करनी पडी तो सरकार आपकी सेवाका उपयोग अवश्य करेगी।

दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयों द्वारा युद्धमें अर्पित यह सहायता नगण्य गिनी जायगी। उनके काममें जानका खतरा तो कह सकते हैं कि बिलकुल ही नहीं था। फिर भी शुद्ध इच्छाका असर तो हुए बिना रहता ही नहीं। फिर इस इच्छाका अनुभव ऐसे वक्त हो जब कोई उसकी आशा न रखता हो तब तो उसकी कीमत दूनी आकी जाती है। जबतक लड़ाई चलती रही, भारतीयोंके विषयमें ऐसी सुंदर भावना बनी रही।

इस प्रकरणको समाप्त करनेके पहले मुझे एक जानने योग्य वृत्तांत सुना देना चाहिए। लेडी स्मिथमें घिरे हुए लोगोंमें अंग्रेजोंके साथ-साथ वहां बसनेवाले इक्के-दुक्के हिंदुस्तानी भी थे। उनमें कुछ व्यापारी और शेष गिरमिटिया थे, जो रेलवे कर्मचारी और गोरे गृहस्थोंके यहां खिदमतगारी करते थे। उनमें एक प्रभुसिंह नामका गिरमिटिया था। घिरे हुए आदमियोंको अफसर कुछ काम तो सौंपता ही है। एक बड़ा ही जोखिमवाला और उतना ही मूल्यवान् काम कुलियोंमें गिने जानेवाले प्रभुसिंहके जिम्मे किया गया था। लेडी स्मिथके पासकी पहाड़ीपर बोअर लोगोंकी एक 'पोम-पोम' तोप थी। इसके गोलोंसे बहुत-से मकान धराशायी हुए और बहुत-से लोगोंने जानसे भी हाथ धोया। तोपसे गोलेके दगने और दूरके निशानेतक पहुंचनेमें एक-दो मिनट तो लग ही जाते हैं। इतनी देरकी चेतावनी भी घिरे हुए लोगोंको मिल जाय तो वे किसी-न-किसी आडमें छिप जाते और अपनी जान बचा लेते। प्रभुसिंहको एक पेड़के नीचे बैठनेकी ड्यूटी दी गई थी। जबसे तोप दगने लगी और जबतक दगती रही तबतक उसे वहां बैठे और तोपवाली पहाड़ीकी ओर आंख लगाये

रहना पडता। ज्योंही उसे आग भडकती दिखाई दे, तुरत घंटा बजा देना होता। उसे सुनकर जैसे बिल्लीको देखकर चूहे अपने बिलमें घुस जाते हैं वैसे ही जानलेवा गोलेके आनेकी सूचनाका घंटा बजते ही नगरवासी अपनी-अपनी छिपनेकी जगहमें छिप जाते और अपनी जान बचा लेते।

प्रभुसिहकी इस अमूल्य सेवाकी सराहना करते हुए लेडी स्मिथके फौजी अफसरने लिखा है कि प्रभुसिहने ऐसी निष्ठासे काम किया कि एक बार भी वह घंटा बजानेसे नही चूका। यह बतानेकी जरूरत शायद ही हो कि प्रभुसिहको खुद तो सदा खतरेमे ही रहना पडता था। यह बात नेटालमे तो मशहूर हुई ही, लार्ड कर्जन (हिंदुस्तानके तत्कालीन वाइसराय) के कानतक भी पहुची। उन्होने प्रभुसिहको भेट करनेके लिए एक काश्मीरी जामा भेजा और नेटालकी सरकारको लिखा कि प्रभुसिहको यह उपहार समारोह-पूर्वक प्रदान किया जाय और जिस कारगुजारीके लिए उसे यह दिया जा रहा है उसका जितना ढिंढोरा पीटा जा सकता हो पीटा जाय। यह काम डर्बनके मेयरको सौपा गया और डर्बनके टाउनहालमे सार्वजनिक सभा करके प्रभुसिहको उक्त उपहार अर्पित किया गया। यह दृष्टात हमे दो बाते सिखाता है एक तो यह कि हम किसी भी मनुष्यको तुच्छ न समझे। दूसरी यह कि डरपोक-से-डरपोक आदमी भी अवसर आनेपर वीर बन सकता है।

: १० :

लड़ाईके बाद

युद्धका मुख्य भाग १९०० मे पूरा हो गया। इस बीच लेडी स्मिथ, किंबरली और मेफेकिंगका छुटकारा हो गया

था। जनरल क्रोजे हार चुके थे। बोअरोंने ब्रिटिश उपनिवेशोंका जितना भाग जीत लिया था वह सब ब्रिटिश सल्तनतको वापस मिल चुका था। लार्ड किचनरने ट्रांसवाल और ऑरेंज फ्री स्टेटको भी जीत लिया था। अब कुछ बाकी था तो केवल 'बानर युद्ध' (गोरीला वारफेयर)।

मैंने सोचा कि दक्षिण अफ्रीकामें अब मेरा काम पूरा हो गया मान लिया जा सकता है। एक महीनेके बदले में छ बरस रह गया। कार्यकी रूप-रेखा बध गई थी। फिर भी भारतीय जनताके खुशीसे इजाजत दिये बिना मेरा निकास नही हो सकता था। मैंने अपने साथियोको बताया कि मेरा इरादा हिंदुस्तानमे लोकसेवा करनेका है। स्वार्थके बदले सेवाधर्मका पाठ मै दक्षिण अफ्रीकामे पढ़ चुका था। उसकी धुन समा चुकी थी। मनसुखलाल नाजर दक्षिण अफ्रीकामे थे ही। खान भी थे। दक्षिण अफ्रीकासे ही गये हुए कितने ही भारतीय युवक बैरिस्टर होकर लौट भी चुके थे। अत मेरा देश लौटना किसी तरह अनुचित नही माना जा सकता था। यह सब दलीले देते हुए भी मुझे इस शर्तपर इजाजत मिली कि दक्षिण अफ्रीकामें कोई अनसोची अड़चन आ पड़े और मेरी जरूरत समझी जाय तो कौम मुझे चाहे जब वापस बुला सकती है और मुझे तुरत वापस जाना होगा। यात्राका और मेरे रहनेका खर्च कौमको उठाना होगा। यह शर्त मंजूर कर मै देश लौटा।

मैंने बम्बईमे बैरिस्टरी करनेका निश्चय किया और चेंबर ले लिया। इसमें मुख्य हेतु तो था स्वर्गीय गोखलेकी सलाहसे और उनकी देखरेखमें सार्वजनिक कार्य करना, पर साथ ही आजीविका कमानेका भी उद्देश्य था। मेरी वकालत भी कुछ चल निकली। दक्षिण अफ्रीकाके साथ जो मेरा इतना गहरा संबंध जुड गया था उससे

वहासे लौटे हुए मवक्किलोसे ही मुझे इतना पैसा मिल जाता था कि मेरा खर्च आसानीसे चल जाता। पर मेरे भाग्यमे स्थिर होकर बैठना लिखा ही न था। मुश्किलसे तीन-चार महीने बबईमे स्थिर होकर बैठा हूगा कि दक्षिण अफ्रीकासे तार आया--"स्थिति गंभीर है। मि० चेबरलेन जल्दी ही आ रहे है। आपकी उपस्थिति आवश्यक है।"

बम्बईका दफ्तर और घर समेटा और पहले ही जहाजसे दक्षिण अफ्रीकाके लिए रवाना हो गया। यह सन् १९०२ के अतका समय था। १९०१के आखिरमें मै हिंदुस्तान लौटा था। १९०२के मार्च-अप्रैलमे बबईमे दफ्तर खोला। तारसे मै पूरी बात जान नही सका था। मैने अटकल लगाई कि सकट कही ट्रांसवालमे ही होगा। पर चार-छ महीनेके अदर लौट सकूगा, यह सोचकर बाल-बच्चोको साथ लिए बिना ही मै चल दिया था। मगर ज्योही डर्बन पहुचा और सारी हकीकत सुनी मै दिग्मूढ हो गया। हममेंसे बहुतोंने सोचा था कि युद्धके बाद सारे दक्षिण अफ्रीकामें हिंदुस्तानियोंकी हालत सुधर जायगी। ट्रासवाल और फ्री स्टेटमें तो कोई कठिनाई हो ही नही सकती, क्योकि लार्ड लैंसडाउन, लार्ड सेल्बर्न आदि बडे ब्रिटिश अधिकारियोने कहा था कि बोअर राज्योमे भारतीयोकी विषम स्थिति भी इस युद्धका एक कारण है। प्रिटोरियामे रहनेवाला ब्रिटिश राजदूत भी अनेक बार मेरे सामने कह चुका था कि ट्रांसवाल ब्रिटिश उपनिवेश हो जाय तो हिंदुस्तानियोंके सारे कष्ट तुरंत मिट जायगे। यूरोपियन भी मानते थे कि राज्य-व्यवस्था बदल जानेपर ट्रासवालके पुराने (भारतीय विरोधी) कानून हिंदुस्तानियोंपर लागू नही हो सकेंगे। यह बात इतनी सर्वमान्य हो गई थी कि नीलाम करनेवाले जो गोरे जमीनकी बोली बोलते समय लडाईके पहले हिंदुस्तानियोंकी बोली मजूर नही करते थे वे

अब खुले तौरपर उसे स्वीकार करने लगे। कितने ही हिंदुस्तानियोंने इस तरह नीलाममे जमीन खरीद भी ली। पर जब वे तहसीलमे जमीनकी रजिस्ट्री कराने गये तो मालके अफसरने १८८५ का कानून सामने रख दिया और दस्तावेजकी रजिस्ट्री करनेसे इन्कार कर दिया। डर्बनमे उतरनेपर मैंने इतना तो सुन लिया। नेताओंने मुझसे कहा कि आपको ट्रांसवाल जाना है। मि० चेंबरलेन पहले तो यही आयगे। यहाकी (नेटालकी) स्थितिसे भी उनको वाकिफ करा देना जरूरी है। यहाका काम निबटाकर उन्हीके पीछे-पीछे आपको ट्रांसवाल जाना होगा।

नेटालमे श्री चेंबरलेनसे एक शिष्टमडल मिला। उन्होंने सारी बाते बड़े सौजन्यके साथ सुन ली और नेटालके मत्रिमडलके साथ बाते करनेका वचन दिया। नेटालमे जो कानून युद्धके पहले बन गए थे उनमे तुरंत हेर फेर होनेकी आशा मै खुद नही करता था। इन कानूनोंका वर्णन पिछले प्रकरणोंमे किया जा चुका है।

पाठक यह तो जानते ही है कि लडाईके पहले चाहे जो हिंदुस्तानी चाहे जब ट्रांसवालमे दाखिल हो सकता था। पर मैने देखा कि अब ऐसी स्थिति नही है। फिर भी इस वक्त जो रुकावटे थी वे गोरे और हिंदुस्तानी दोनोपर समान रूपसे लागू होती थी। आज भी देशकी दशा ऐसी थी कि बहुतसे लोग एक साथ उसमे भर जाय तो सबको अन्न-वस्त्र भी पूरा न मिल सके। लडाईके कारण बन्द हुई बहुतसी दुकाने अब भी बन्द थी। दुकानोंका अधिकाश माल बोअर सरकार साफ कर गई थी। अत मैंने मनमे सोचा कि अगर यह रुकावट एक थोड़ी मुद्दतके लिए ही हो तो भय करनेका कारण नही, पर गोरे और हिंदुस्तानीके लिए ट्रांसवाल जानेका परवाना लेनेकी रीतिमे अंतर था और यह भेद ही

भयका कारण हो गया। परवाने देनेके दफ्तर दक्षिण अफ्रीकाके जुदा-जुदा बदरगाहोमे खोले गये थे। गोरेको तो कह सकते है कि मांगते ही परवाना मिल जाता था, पर हिंदुस्तानियोके लिए तो ट्रांसवालमे एक एशियाटिक विभाग स्थापित किया गया था।

यह अलग महकमेकी स्थापना एक नयी घटना थी। हिंदुस्तानियोको इस महकमेके अफसरके पास अर्जी भेजनी होती। वह मजूर हो गई तो डर्बन या किसी दूसरे बदरगाहसे आमतौरसे परवाना मिल जाता था। यह अर्जी मुझे भी देनी होती तो मि० चेबरलेनके ट्रांसवालसे चल देनेके पहले परवाना मिलनेकी आशा नही रखी जा सकती थी। ट्रांसवालके भारतीय वैसा परवाना प्राप्त कर मुझे नही भेज सके थे। यह बात उनके बसके बाहर थी। मेरे परवानेका आधार उन्होने डर्बनसे मेरे परिचय, मेरे सबधका बनाया था। परवाना देनेवाले अफसरसे मेरी जान-पहचान नही थी, पर डर्बनके पुलिस सुपरिटेडेटसे थी। इसलिए उन्हे साथ लेजाकर अपनी पहचान दिला दी। १८९३ मे मै एक सालतक ट्रांसवालमे रह चुका हू, यह अधिकार बताकर मैने परवाना हासिल किया और प्रिटोरिया पहुचा।

यहां मैने बिलकुल दूसरा ही वातावरण पाया। मैने देखा कि एशियाटिक विभाग एक भयानक महकमा है और महज हिंदुस्तानियोको दबानेके लिए कायम किया गया है। उसके अफसर उन लोगोमेसे थे जो युद्धकालमे हिंदुस्तानी सेनाके साथ दक्षिण अफ्रीका गए थे और भाग्यपरीक्षाके लिए वहा रह गए थे। उनमेसे कितने तो घूसखोर थे। दो अफसरोपर मुकदमा भी चला। जूरीने तो उन्हे छोड दिया, पर चूकि उनके घूस खानेके बारेमे कोई सदेह नही रह गया था, इसलिए वे नौकरीसे अलग कर दिये गए। पक्षपातकी

तो कोई हद ही न थी, जहा इस तौरपर एक खास महकमा
कायम किया गया हो और जब वर्ग-विशेषके स्वत्वोपर अंकुश
रखनेके लिए ही उसका निर्माण हुआ हो तब अपनी हस्ती
कायम रखनेके लिए और वह अपने कर्तव्यका पालन ठीक
तौरसे कर रहा है यह दिखानेके लिए उसका झुकाव नए-नए
अंकुश ढूंढ़ते रहनेकी ओर ही होता है। हुआ भी यही।

मैंने देखा कि मुझे फिरसे श्रीगणेश करना होगा।
एशियाटिक महकमेको तुरंत इसका पता नही लग सका
कि मैं ट्रांसवालमें कैसे दाखिल हो गया। मुझसे पूछनेकी
तो यकायक उसकी हिम्मत हुई नही। मैं मानता हू कि
उसके अधिकारियोने इतना तो माना होगा कि मैं चोरीसे
नही दाखिल हुआ हूगा। इधर-उधरसे पूछताछकर उन्होंने
यह भी मालूम कर लिया कि मैंने परवाना कैसे हासिल कर
लिया। प्रिटोरियाका शिष्ट-मण्डल भी मि० चेवरलेनके पास
जानेको तैयार हुआ। जो आवेदनपत्र उनके सामने पेश
किया जानेवाला था उसका मसविदा मैंने बना दिया। पर
एशियाटिक महकमेने मुझे उनके सामने जानेकी मनाही कर
दी। भारतीय नेताओंने सोचा कि ऐसी दशामे हमें भी
मि० चेवरलेनसे मिलने नही जाना चाहिए; पर मुझे
यह विचार नही रुचा। मैंने उन्हे यह सलाह दी कि मेरा जो
अपमान हुआ है उसे मुझे तो पी ही जाना चाहिए, कौमको
भी उसकी परवा नही करनी चाहिए। अर्जी तो तैयार
है ही, मि० चेवरलेनको उसे सुना देना बहुत जरूरी है।
हिंदुस्तानके एक बैरिस्टर मि० जार्ज गाडफ्रे वहां मौजूद थे।
मैंने उन्हे अर्जी पढ़ देनेके लिए तैयार कर लिया। शिष्ट-मण्डल
गया। मेरी बात उठी तो मि० चेवरलेनने कहा—"मि०
गाधीसे तो मैं डर्बनमें मिल चुका हू। इसलिए यह सोचकर कि
यहाके लोगोका वृत्तांत यहीके लोगोसे सुनना ज्यादा अच्छा

होगा मैंने उनसे मिलनेसे इन्कार कर दिया।" मेरी दृष्टिसे तो इस उत्तरने आगमे घीका काम दिया। एशियाटिक महकमेने जो सिखाया था मि० चेंबरलेन वही बोले। जो हवा हिंदुस्तानमें बहा करती है वही उक्त विभागने ट्रासवालमे बहा दी। गुजराती भाइयोको यह बात मालूम होनी ही चाहिए कि बम्बईका रहनेवाला चंपारनमे अंग्रेज अफसरोके लिए परदेसी होता है। इस नियमके अनुसार डर्बनमे रहनेवाला मै ट्रासवालकी स्थिति कैसे जान सकता हू, यह पाठ एशियाटिक विभागने मि० चेंबरलेनको पढाया। उनको क्या मालूम कि मै ट्रासवालमे रह चुका हूं और न रहा होऊ तो भी ट्रांसवालकी पूरी परिस्थितिसे परिचित हू। सवाल एक ही था ट्रासवालकी परिस्थितिसे सर्वाधिक परिचित कौन है? हिंदुस्तानसे मुझे खास तौरसे बुलाकर भारतीय जनताने इस प्रश्नका उत्तर दे दिया था, पर हुकूमत करनेवालेके सामने न्यायशास्त्रकी दलील नही चल सकती, यह कोई नया अनुभव नही। मि० चेंबरलेनपर इस वक्त स्थानीय ब्रिटिश अधिकारियोका इतना असर था और गोरोको सन्तुष्ट करनेके लिए वह इतने आतुर थे कि उनके हाथो न्याय होनेकी आशा तनिक भी नही थी या बहुत ही कम थी। पर न्याय पानेका एक भी उचित उपाय भूलसे या स्वाभिमानवश किये बिना न रह जाय, इस खयालसे शिष्ट-मण्डल उनके पास भेजा गया।

पर मेरे सामने १८९४से भी अधिक विषम प्रसंग उपस्थित हो गया। एक दृष्टिसे देखनेसे मुझे ऐसा दिखाई दिया कि मि० चेंबरलेन यहांसे रवाना हुए कि मै हिंदुस्तानको वापस जा सकता हू। दूसरी ओर मै यह भी साफ देख सकता था कि अगर मै कौमको भयावह स्थितिमें देखते हुए भी हिंदुस्तानमे सेवा करनेके अभिमानसे वापस जाऊ तो जिस सेवा-

धर्मकी झांकी मुझे हुई है वह दूषित हो जायगी। मैंने सोचा कि मेरी सारी जिंदगी भले ही दक्षिण अफ्रीकामें बीत जाय, पर जबतक घिरे हुए बादल बिखर नहीं जाते या हमारी सारी कोशिशके बावजूद और अधिक उमडकर कौमपर फट नहीं पड़ते, तबतक मुझे ट्रांसवालमें ही रहना चाहिए। मैंने नेताओंके साथ इस प्रकारकी बातचीत की और १८९४ की तरह वकालतकी आमदनीसे गुजर करनेका अपना निश्चय भी बता दिया। कौमको तो इतना ही चाहिए था।

मैंने तुरत ट्रांसवालमें वकालत करनेकी इजाजतकी दरख्वास्त दे दी। डर था कि यहां भी वकीलोंका मण्डल मेरी अर्जीका विरोध करेगा, पर वह निराधार निकला। मुझे सनद मिल गई और मैंने जोहान्सबर्गमें दफ्तर खोला। ट्रांसवालमें हिंदुस्तानियोंकी सबसे बड़ी आबादी जोहान्सबर्गमें ही थी। इसलिए मेरी आजीविका और सार्वजनिक काम दोनोंकी दृष्टिसे जोहान्सबर्ग ही मेरे लिए अनुकूल केन्द्र था। एशियाटिक विभागकी भ्रष्टताका कटु अनुभव मुझे दिन-दिन हो रहा था और वहांके भारतीय मंडल (ट्रांसवाल ब्रिटिश इंडियन असोसियेशन) का सारा जोर इस सडनको दूर करनेकी ही ओर लग रहा था। १८८५ के कानूनको रद कराना तो अब दूरका लक्ष्य हो गया था। तात्कालिक कार्य एशियाटिक विभागके रूपमें जो बाढ़ हमारी ओर चढ़ी आ रही थी उससे अपना बचाव करना था। लार्ड मिल्नर, लार्ड सेलबोर्न जो वहां आये थे, सर आर्थर लौली जो ट्रांसवालमें लफ्टिनेंट गवर्नर थे और पीछे मद्रासके गवर्नर, हुए, इन तथा इनसे नीचेकी श्रेणीके अधिकारियोंके पास भी शिष्ट-मण्डल गये। मैं अकेले भी अकसर उनसे मिलता। थोड़ी-बहुत राहत भी मिलती। पर वह सभी फटे कपड़ेमें पैवंद लगा देना जैसा था। लुटेरे हमारा सारा धन हर लें और पीछे

हम गिडगिडावे तो उसमेसे कुछ लौटा दे, इसमे हम जिस प्रकारका सन्तोष मान सकते है कुछ वैसा ही सतोष हमे मिलता। जिन अहलकारोके बरखास्त किये जानेकी बात ऊपर लिख चुका हू उनपर इस आन्दोलनके फलस्वरूप ही मुकदमा चलाया गया। भारतीयोके प्रवेशके विषयमे जो आशका होने-की बात पहले बता चुका हू वह सही निकली। गोरोको परवाना लेना जरूरी नही रहा, पर हिंदुस्तानियोके लिए उसकी पख लगी ही रही। ट्रासवालकी पुरानी बोअर सर-कारने जैसे कडे कानून बनाये थे वैसी कडाईसे उनपर अमल नही होता था। यह कुछ उसकी उदारता या भलमनसाहत नही थी, बल्कि उसका शासन-विभाग लापरवाह था और इस विभागके अधिकारी भले हो तो भलमनसी बरतनेका उन्हे जितना अवकाश पिछली सरकारकी अधीनतामे था उतना ब्रिटिश सरकारकी मातहतीमे नही था। ब्रिटिश राज्यतत्र पुराना होनेसे दृढ और व्यवस्थित हो गया है और अफसरो-अहल-कारोको उसमे यत्रकी तरह काम करना पडता है; क्योकि उनके ऊपर एकके बाद एक चढते-उतरते अंकुश लगे हुए है। इससे ब्रिटिश विधानमे राज्यपद्धति उदार हो तो प्रजाको उसकी उदारताका अधिक-से-अधिक लाभ मिल सकता है और अगर वह पद्धति जुल्म करनेवाली या कजूस हो तो इस नियत्रित शासनतत्रमे उसका दबाव भी वह पूरा-पूरा अनुभव करती है। इसकी उलटी स्थिति ट्रांसवालकी पुरानी शासन-व्यवस्था जैसे राज्यतत्रमे होती है। उदार कायदे-कानूनका लाभ मिलना न मिलना अधिकाशमे उस विभागके अधिकारियोके भले-बुरे होनेपर अवलबित होता है। अत जब ट्रासवालमे ब्रिटिश राज्य स्थापित हुआ तो भारतीयोसे सबध रखनेवाले सभी कानूनोपर उत्तरोत्तर अधिक कडाईसे अमल होने लगा। पकडसे बचनेके जो रास्ते पहले खुले रह

गये थे वे सब बन्द कर दिये गये। यह तो हम देख ही चुके हैं कि एशियाटिक विभागकी नीति कड़ाईकी होनी ही चाहिए थी। अतः पुराने कानून कैसे रद कराये जायं, यह सवाल तो अलग रहा, पर उनकी कठोरता अमलमें नरम कैसे कराई जा सकती है, फिलहाल तो इसी दृष्टिसे भारतीय जनताको प्रयत्न करना रहा।

एक सिद्धांतकी चर्चा जल्दी या देरसे हमे करनी ही होगी और इस जगह कर देनेसे आगे पैदा होनेवाली परिस्थिति और भारतीय दृष्टिबिन्दुको समझनेमें कुछ आसानी हो सकती है। ज्योंही ट्रांसवाल और औरेंज फ्री स्टेटमें ब्रिटिश पताका फहराने लगी, लार्ड मिल्नरने एक कमेटी नियुक्त की। उसका काम था दोनों राज्योंके पुराने कानूनोंकी जांचकर ऐसे कानूनोंकी सूची तैयार करना जो प्रजाके अधिकारपर प्रतिबंध लगाते हों या ब्रिटिश विधानके तत्वके विरुद्ध हों। भारतीयोंकी स्वतन्त्रतापर आघात करनेवाले कानून भी साफतौरसे इस सूचीमे आते थे। पर यह कमेटी नियुक्त करनेमें लार्ड मिल्नरका उद्देश्य हिंदुस्तानियोंके कष्टोंका नहीं, बल्कि अंग्रेजोंके कष्टोंका निवारण था। जिन कानूनोंसे अप्रत्यक्ष रीतिसे अंग्रेजोंको बाधा होती थी उन्हें जितनी जल्दी हो सके रद कर देना उनका उद्देश्य था। कमेटीकी रिपोर्ट बहुत ही थोड़े समयमें तैयार हो गई और छोटे-बड़े कितने ही कानून जो अंग्रेजोंके स्वार्थके विरोधी थे, कह सकते हैं कि कलमके एक ही फर्राटेमे रद कर दिये गए।

इसी कमेटीने भारतीय विरोधी कानूनोंको भी छांटकर अलग किया। वे एक पुस्तकके रूपमे छापे गये, जिसका उपयोग या हमारी दृष्टिसे दुरुपयोग एशियाटिक विभाग आसानीसे करने लगा।

अब अगर भारतीय विरोधी कानून बिना हिंदुस्तानियोंका

नाम उनमें रखे और इस ढगपर बनाये गए हों कि वे खास तौरसे उन्हींके खिलाफ न हो, बल्कि सबपर लागू होते हो, सिर्फ उनपर अमल करना न करना अधिकारीकी मर्जीपर छोडा गया हो, या उन कानूनोके अदर ऐसे प्रतिबध रखे गये हो जिनका अर्थ तो सार्वजनिक हो, पर उनकी अधिक चोट हिंदुस्तानियोंपर ही पडती हो, तो ऐसे कानूनोसे भी कानून बनानेवालोका अर्थ सिद्ध हो सकता था और फिर भी वे सार्वजनिक रूपसे लागू होनेवाले कहे जाते। उनसे किसीका अपमान न होता और कालक्रमसे जब विरोधका भाव नरम हो जाता तब कानूनमें कोई हेरफेर किये बिना, केवल उदार दृष्टिसे उसपर अमल होनेसे, जिस जाति-वर्गके विरुद्ध वह कानून बना होता वह बच जाता। जिस प्रकार दूसरी श्रेणीके कानूनोको मैंने सार्वजनिक कानून कहा है, वैसे ही पहले प्रकारके कानूनोको एकदेशीय या जातीय कानून कह सकते हैं। दक्षिण अफ्रीकामे उन्हे रंग-भेदकारी कानून कहते हैं, इसलिए कि उनमे चमडेके रगका भेद करके काले या गेहुआ रगके चमडेवाली जनतापर गोरोंके मुकाबले अधिक अंकुश रखा जाता है।

जो कानून बन चुके थे उनमेसे ही एक मिसाल लीजिये। पाठकोको याद होगा कि मताधिकार (हरण) का जो पहला कानून नेटालमे पास हुआ और जो पीछे साम्राज्य सरकार द्वारा रद कर दिया गया उसमे इस आशयकी धारा थी कि एशियाई मात्रको आगेसे चुनावमे मत देनेका अधिकार न होगा। अब ऐसे कानूनको बदलना हो तो लोकमतको इतना शिक्षित करना होगा कि अधिकाश जन एशियाइयोसे द्वेष करनेके बदले उनकी ओर मित्रभाव रखनेवाले हो जाय। जब ऐसा सुअवसर आये तभी नया कानून बनाकर यह रंगका दाग दूर किया जा सकता है। यह हुआ एकदेशीय या रंग-भेद करनेवाले

कानूनका दृष्टान्त। अब ऊपर बताया हुआ कानून रद होकर उसकी जगहपर जो दूसरा कानून बना उसमें भी मूल उद्देश्यकी लगभग रक्षा कर ली गई थी, फिर भी वह सार्वजनिक था और रंग-भेदका डंक उसमेंसे दूरकर दिया गया था। इस कानूनकी एक दफाका भावार्थ यह है . "जिस देशकी जनताको 'पार्लमेंटरी फ्रेंचाइज' अर्थात् ब्रिटिश जनताको अपनी साधारण सभा-सदस्यके चुनावमें मत-देनेका जैसा अधिकार प्राप्त है वैसा मताधिकार नहीं है उस देशका निवासी नेटालमें मताधिकारी नहीं हो सकता।" इसमें कहीं भी हिंदुस्तानी या एशियाईका नाम नहीं आता। हिंदुस्तानमें इंगलैंडका-सा मताधिकार है या नहीं, इस विषयमें विधान-शास्त्री तो भिन्न-भिन्न मत देंगे। पर दलीलकी खातिर मान लीजिये कि हिंदुस्तानमें उस वक्त यानी १८९४ में मताधिकार नहीं था या आज भी नहीं है, फिर भी नेटालमें मताधिकारियों—वोटके अधिकारियोंके नाम दर्ज करनेवाला अधिकारी हिंदुस्तानियोंका नाम वोटर-सूचीमें लिख ले तो यकायक कोई यह नहीं कह सकता कि उसने गैरकानूनी काम किया। सामान्य अनुमान सदा प्रजाके अधिकारकी ओर किया जाता है। अत: उस वक्तकी सरकार जबतक विरोध करनेका इरादा न करले तबतक ऊपर लिखे हुए कानूनके मौजूद रहते हुए भी भारतीयों और दूसरोंके नाम वोटर-सूचीमें दर्ज किये जा सकते हैं अर्थात् कुछ दिनोंमें नेटालमें हिंदुस्तानीसे नफरत करनेका भाव घट जाय, वहांकी सरकार हिंदुस्तानियोंका विरोध न करना चाहे तो कानूनमें कुछ भी फेरफार किये बिना हिंदुस्तानियोंके नाम वोटरोंके रजिस्टरमें दर्ज किये जा सकते हैं। सामान्य या सार्वजनिक कानूनकी यह खूबी होती है। ऐसी और मिसालें दक्षिण अफ्रीकाके उन कानूनोंसे दी जा सकती हैं जिनका जिक्र पिछले प्रकरणोंमें किया जा चुका है। इसलिए

बुद्धिमानीकी राजनीति यही मानी जाती है कि एकदेशीय—वर्ग या जाति विशेषपर ही लागू होनेवाले—कानून कम-से-कम बनाये जाय। बिलकुल ही न बनाना तो सर्वोत्कृष्ट नीति है। कोई कानून जब एक बार बन गया तो उसे बदलनेमे अनेक कठिनाइयां आती है। लोकमत जब बहुत शिक्षित समझदार हो जाय तभी कोई कानून रद किया जा सकता है। जिस लोकतत्रमें सदा कानूनोमें रद्दोबदल होती रहती है वह लोकतत्र सुव्यवस्थित नही माना जा सकता।

ट्रासवालमे एशियाइयोके खिलाफ जो कानून बने थे उनमे भरे हुए जहरका अन्दाजा अब हम अधिक अच्छी तरह कर सकते है। ये सारे कानून एकदेशीय थे। इनके अनुसार एशियावासी चुनावमे मत नही दे सकता था। सरकारने जो रकबे या महल्ले ठहरा दिये थे उनके बाहर न जमीन खरीद सकता था और न रख सकता था। इन कानूनोके रद हुए बिना अधिकारी वर्ग हिंदुस्तानियोकी मदद कर ही नही सकता था। ये कानून सार्वजनिक नही थे। इसीसे लार्ड मिल्नरकी कमेटी उन्हे अलग छांट सकी थी। वे सार्वजनिक होते तो दूसरे कानूनोके साथ वे सब कानून भी रद हो गये होते, जिनमे एशियाइयोंका नाम तो खासतौरसे नही लिया गया है, पर जिनका अमल उन्हीके खिलाफ होता था। अधिकारीवर्ग यह तो कह ही नही सकता था—"हम क्या कर सकते है? हम लाचार है। जबतक नई धारा सभा इन कानूनोंको रद नही कर देती तबतक हमे तो उनको अमलमे लाना ही होगा।"

जब ये कानून एशियाटिक महकमेके हाथमें आये तो उसने उनपर पूरे तौरसे अमल करना शुरू किया। इतना ही नही, शासक-मडल अगर उन कानूनोको अमल करने योग्य माने तो उनमे जो त्रुटियाँ छूट गई हो, बचावके रास्ते रह गये

हों, उन्हें बंद कर देनेके नये अधिकार भी उसे प्राप्त करने ही होंगे। दलील तो सीधी-सादी मालूम होती है। कानून अगर बुरे हैं तो उन्हें रद कर देना चाहिए और अच्छे हैं तो उनमें जो त्रुटियां रह गई हों उन्हें दूर कर देना चाहिए। कानूनोंपर अमल करानेकी नीति शासक-मंडलने स्वीकार कर ली थी। भारतीय जनता बोअर-युद्धमें अंग्रेजोंके कंधे-से-कंधा सटाकर खड़ी हुई थी और जानकी जोखिम उठाई थी, पर यह तो तीन-चार बरसकी पुरानी बात हो गई थी। ट्रांसवालका ब्रिटिश राजदूत भारतीय जनताका पक्ष लेकर लड़ा था, यह भी पुराने राजतन्त्रकी बात थी। युद्धके कारणोंमें भारतीयोंके कष्ट भी बताये गये थे; पर यह ऐसे अधिकारियोंकी घोषणा थी जो दूरदर्शितासे रहित और स्थानीय अनुभवसे कोरे थे। स्थानीय अनुभवने तो स्थानीय अधिकारियोंको साफ बता दिया कि बोअर-राज्यमें हिंदुस्तानियोंके खिलाफ जो कानून बनाये गये थे वे न यथेष्ट थे और न व्यवस्थित। हिंदुस्तानी जब जीमें आये ट्रांसवालमें घुस आयें और जहां जैसे जीमें आये रोजगार करने लगें तब तो अंग्रेज व्यापारियोंकी भारी हानि होगी। इन और ऐसी दूसरी दलीलोंने गोरों और उनके प्रतिनिधि शासक-मंडलके दिमागपर कसकर कब्जा जमाया। गोरे कम-से-कम समयमें अधिक-से-अधिक पैसा इकट्ठा कर लेना चाहते थे। हिंदुस्तानी इसमें थोड़ा भी हिस्सा बटाएं, यह उन्हें कब पसन्द आता? राजनीतिमें तत्त्वज्ञानका ढोंग भी घुसा। दक्षिण अफ्रीकाके बुद्धिमान पुरुषोंका सन्तोष निरी बनियाशाही, अपने लाभ, स्वार्थकी दलीलसे नहीं हो सकता था। अन्याय करनेके लिए भी मानव-बुद्धि सदा ऐसी दलीलें ढूंढ़ती है जो उसे ठीक लगे। दक्षिण अफ्रीकाकी बुद्धिने भी यही किया। जनरल स्मट्स आदिने जो दलीलें दी वे इस प्रकार थीं :

"दक्षिण अफ्रीका पश्चिमकी सभ्यताका प्रतिनिधि है। हिंदुस्तान पूर्वकी सभ्यताका केंद्र-स्थान है। दोनो सभ्यताओंका सम्मिलन हो सकता है, इस बातको इस जमानेके तत्त्वज्ञानी तो स्वीकार नही करते। इन दोनो सभ्यताओकी प्रतिनिधि जातियोका छोटे समुदायोमे भी सगम हो तो इसका परिणाम विस्फोटके सिवा और कुछ नही हो सकता। पश्चिम सादगी-का विरोधी है, पूर्वके लोग सादगीको प्रधान पद देते है। इन दोनोका मेल कैसे हो सकता है? इन दोनोमे कौन सभ्यता अधिक अच्छी है, यह देखना राजकाजी अर्थात् व्याव-हारिक पुरुषोका काम नही। पश्चिमकी सभ्यता अच्छी हो या बुरी; पर पश्चिमकी जनता उसे ही अपनाये रहना चाहती है। उस सभ्यताके रक्षार्थ पश्चिमकी जनताने अथक प्रयत्न किया है। खूनकी नदियां बहाई है। अनेक प्रकारके दूसरे दुःख सहे है। अत पश्चिमकी जनताको अब दूसरा रास्ता नही सूझनेका। इस दृष्टिसे देखा जाय तो हिंदुस्तानी और गोरोका सवाल न व्यापारद्वेषका है और न वर्णद्वेषका। केवल अपनी सभ्यताके रक्षणका, अर्थात् आत्मरक्षाके उच्चतम अधिकारके उपयोग और उससे प्राप्त कर्तव्यके पालनका सवाल है। हिंदुस्तानियोके दोष निकालना भाषणकर्ताओको लोगोको भड़कानेके लिए भले ही रुचता हो, पर राजनैतिक दृष्टिसे विचार करनेवाले तो यही मानते और कहते है कि भारतीयोके गुण ही दक्षिण अफ्रीकामें दोषरूप हो रहे है। अपनी सादगी, अपने लबे समयतक श्रम करनेके धैर्य, अपनी किफायतशारी, अपनी परलोक-परायणता, अपनी सहन-शीलता, इत्यादि गुणोके कारण ही हिंदुस्तानी दक्षिण अफ्रीकामें अप्रिय हो रहे है। पश्चिमकी जनता साहसिक, अधीर, दुनियवी आवश्यकताओको बढाने और उन्हे पूरी करनेमे मग्न, खाने-पीनेकी शौकीन, शरीरश्रम बचानेको आतुर और उडाऊ

स्वभावकी है। इससे उसे यह डर रहता है कि पूर्वकी सभ्यताके हजारो प्रतिनिधि दक्षिण अफ्रीकामे बस गये तो पश्चिमके लोगोका पछाड़ा जाना निश्चित ही है। इस आत्मघातके लिए दक्षिण अफ्रीकामे बसनेवाली पश्चिमकी जनता हर्गिज तैयार नहीं हो सकती और इस जनताके हिमायती उसे इस खतरेमे कभी नही पड़ने देंगे।"

मै समझता हू, भले-से-भले और चरित्रवान् यूरोपियन इस दलीलको जिस शक्लमे पेश करते है मैने उसी रूपमे निष्पक्षभावसे यहां उसे उपस्थित किया है। मै ऊपर इस दलीलको तत्त्वज्ञानका ढोग बता आया हू; पर इससे मै यह सूचित करना नही चाहता कि इस दलीलमे कुछ भी सार नही है। व्यावहारिक दृष्टि, अर्थात् तात्कालिक स्वार्थ-दृष्टिसे तो उसमे बहुत-कुछ सार है, पर तात्त्विक दृष्टिसे वह निरा ढोग है। मेरी छोटीसी अक्लको तो यही दिखाई देता है कि तटस्थ मनुष्यकी बुद्धि ऐसे निर्णयको स्वीकार नही कर सकती। कोई सुधारक अपनी सभ्यताको वैसी असहाय स्थितिमे नही डालेगा जैसी स्थितिमें ऊपरकी दलीले देनेवालोंने अपनी सभ्यताको डाल दिया है। पूर्वके किसी तत्त्वज्ञानीको यह भय होता हो कि पश्चिमकी जनता पूर्वके साथ आजादीसे मिले-जुले तो पूर्वकी सभ्यता पश्चिमकी बाढमे बालूकी तरह बह जायगी। यह मै नही जानता। पूर्वके तत्त्वज्ञानको जहांतक मै समझ पाया हू, मुझे तो यही दिखाई देता है कि पूर्वकी सभ्यता पश्चिमके स्वतत्र सगमसे निर्भय रहती है। यही नही, वैसे सम्पर्कका स्वागत करती है। इसकी उलटी मिसाले पूर्वमे दिखाई दे तो जिस सिद्धांतका प्रतिपादन मैने किया है उसको इससे आंच नही आती, क्योकि मै मानता हूं कि इस सिद्धांतके समर्थनमे अनेक दृष्टान्त दिये जा सकते है। कुछ भी हो, पश्चिमके तत्त्वज्ञानियोका दावा तो यह है कि

पश्चिमकी सभ्यताका मूल सिद्धात यही है कि पशुबल सर्वोपरि है और इसीसे इस सभ्यताके हिमायती पशुबलके रक्षणमे अपने समयका अधिक-से-अधिक भाग लगाते है। उनका तो यह भी सिद्धात है कि जो राष्ट्र अपनी आवश्यकताए नही बढाता उसका अतमे नाश होना निश्चित है। इसी सिद्धातका अनुसरण करके तो पश्चिमकी जातिया दक्षिण अफ्रीकामे बसी है और अपनी सख्याकी तुलनामे सैकडो गुना बडी तादादवाले हबशियोको अपने वशमे कर लिया है। उन्हे हिंदुस्तानकी रक जनताका भय हो ही कैसे सकता है ? इस सभ्यताकी दृष्टिसे वस्तुतः उन्हे कुछ भी भय नही है, इसका सबसे बडा सबूत तो यह है कि हिंदुस्तानी अगर सदाके लिए दक्षिण अफ्रीकामे मजदूर बनकर ही रहते तो उनके बसनेके विरुद्ध कोई आन्दोलन उठा ही नही होता।

अत. जो चीज बाकी रह जाती है वह है केवल व्यापार और वर्ण। हजारों यूरोपियनोने लिखा और कबूल किया है कि हिंदुस्तानियोका व्यापार छोटे अग्रेज व्यापारियोके लिए हानिकर है और गेहुए रगसे नफरत तो फिलहाल गोरे चमडेवाली जातियोंकी हड्डी-हड्डीमे व्याप्त हो गई है। उत्तरी अमरीकामे कानूनमे सबका बराबर हक है, पर वहां भी बुकरटी वाशिगटन जैसा पुरुष, जिसने ऊची-से-ऊची पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त की थी, जो अतिशय चरित्रवान और ईसाई धर्मको माननेवाला था और जिसने पश्चिमकी सभ्यताको पूरे तौरपर अपना लिया था, राष्ट्रपति रूजवेल्टके दरबारमे न जा सका और न आज तक जा सकता है। वहांके हबशियोने पश्चिमी सभ्यताको स्वीकार कर लिया है। वे ईसाई भी बन गये है; पर उनका काला चमडा उनका अपराध है और उत्तरी अमरीकामे अगर लोक व्यवहारमे उनका तिरस्कार किया जाता है तो दक्षिण अमरीकामे अपराधके सदेह-

मात्रसे गोरे उन्हें जिंदा जला देते हैं। दक्षिण अमरीकामें इस दंडनीतिका एक खास नाम भी है जो आज अंग्रेजी भाषाका प्रचलित शब्द हो गया है। वह है 'लिंच-ला।' लिंच-ला के मानी उस दंडनीतिके हैं जिसके अनुसार पहले सजा दी जाती है, पीछे अपराधका विचार किया जाता है। यह प्रथा लिंच नामके व्यक्तिसे चली है। अतः उसीके नाम पर इसका नामकरण हुआ है।

इस विवेचनसे पाठक देख सकते हैं कि ऊपर दी हुई तात्त्विक मानी जानेवाली दलीलमें अधिक तत्त्व या सार नहीं है। पर वे यह अर्थ भी न करें कि यह दलील देनेवाले सभी लोग उसे झूठी जानते हुए भी पेश करते हैं। उनमेंसे बहुतेरे सचाईके साथ मानते हैं कि उनकी दलील तात्त्विक है। हो सकता है कि हम वैसी स्थितिमें हों तो हम भी वैसी ही दलील पेश करें। कुछ ऐसे ही कारणोंसे 'बुद्धिः कर्मानुसारिणी' कहावत निकली होगी। इसका अनुभव किसको नहीं हुआ होगा कि हमारी अन्तर्वृत्ति जैसी बनी हो वैसी ही दलीलें हमें सूझा करती हैं और वे दूसरेके गले न उतरें तो हमें असन्तोष, अधीरता और अन्तमें रोष भी होता है।

इतनी बारीकीमें मैं जानबूझकर गया हूं। मैं चाहता हूं कि पाठक भिन्न-भिन्न दृष्टियोंको समझें और जो अबतक वैसा न करते आये हों वे भिन्न-भिन्न दृष्टियोंको समझने और उनका आदर करनेकी आदत डालें। सत्याग्रहका रहस्य समझने और खासकर इस अस्त्रको आजमानेके लिए ऐसी उदारता और ऐसी सहनशक्तिकी अति आवश्यकता है। इसके बिना सत्याग्रह हो ही नहीं सकता। यह पुस्तक कुछ लिखनेके शौकसे तो लिखी नहीं जा रही है। दक्षिण अफ्रीका-के इतिहासका एक प्रकरण जनताके आगे रखना भी उसका उद्देश्य नहीं। मेरा हेतु तो यह है कि जिस वस्तुके लिए मैं जीता

हूं, जीना चाहता हूं और यह मानता हूं कि जिसके लिए मरनेको भी उतना ही तैयार हूं, वह वस्तु कैसे पैदा हुई, उसका पहला सामुदायिक प्रयोग किस तरह किया गया, इसको सारी जनता जाने, समझे और जहांतक पसन्द करे और उसकी शक्ति हो वहांतक उसे अमलमें भी लाये।

अब हम अपनी कहानीको फिर चलाये। हम यह देख चुके कि ब्रिटिश शासनाधिकारियोंने यह निर्णय किया कि ट्रांसवालमें नये आनेवाले हिंदुस्तानियोंको रोके और पुराने बाशिन्दोंकी स्थिति ऐसी कठिन कर दे कि वे ऊबकर ट्रांसवाल छोड़ दे और न छोड़े तो लगभग मजदूर बनकर ही रह सके। दक्षिण अफ्रीकाके महान माने जानेवाले कितने ही राजपुरुष एकाधिक बार कह चुके हैं कि इस देशमें हिंदुस्तानी लकड़हारे और पानी भरने वालेके रूपमें ही खप सकते हैं। ऊपर जिस एशियाटिक विभागकी चर्चा की गई है उसके अधिकारियोंमें मि० लायनल कर्टिस भी थे जो हिंदुस्तानमें रह चुके थे और दो अमली शासन पद्धति (डायर्की) की खोज और प्रचार करने-वालेके रूपमें प्रसिद्ध हैं। वह एक कुलीन घरानेके नौजवान हैं। कम-से-कम उस वक्त, १९०५-६ में तो नौजवान ही थे। लार्ड मिल्नरके विश्वासपात्र थे। हर कामको शास्त्रीय पद्धतिसे ही करनेका दावा करते थे, पर उनसे भारी भूलें भी हो सकती थीं। जोहान्सबर्गकी म्युनिसिपैलिटीको अपनी एक ऐसी ही गलतीसे १४ हजार पौंडके घाटेमें डाल दिया था। उन्होंने इस बातकी खोज की कि नये हिंदुस्तानियोंका आना रोकना हो तो इस बारेमें सरकारका पहला कदम यह होना चाहिए कि हरएक पुराने हिंदुस्तानीका नाम-पता इस तौरपर दर्ज कर लिया जाय कि उसके बदले दूसरा इस देशमें दाखिल न हो सके और हो तो तुरंत पकड़ लिया जाय। ट्रांस-

वालमे अंग्रेजी राज्य कायम होनेके बाद हिंदुस्तानियोंके लिए जो परवाने निकाले गए थे उनमे उनके हस्ताक्षर और जो हस्ताक्षर न कर सके तो उनके अंगूठे की निशानी ली जाती थी। पीछे किसी अधिकारीने सुझाया कि उनका फोटो भी ले लिया जाय। यों फोटो, अंगूठेकी निशानी और दस्तखत तीनों लिए जाने लगे। इसके लिए किसी कानून-कायदेकी जरूरत तो थी नही, अत. नेताओंको तुरंत इसकी खबर भी नही हो सकी। धीरे-धीरे उन्हे इन नवीनताओंकी खबर हुई। जनताकी ओरसे अधिकारियोके पास आवेदनपत्र भेजे गए, शिष्ट-मण्डल भी भेजे गए। अधिकारियोकी दलील यह थी कि चाहे जो आदमी चाहे जिस रीतिसे इस देशमे दाखिल हो जाय, यह हमसे सहन नही हो सकता। अत सभी हिंदुस्तानियोंके पास एक ही तरहका परवाना होना चाहिए और उसमे इतना ब्योरा होना चाहिए कि परवाना पानेवाल असल आदमी ही उसके जरिए इस देशमे दाखिल हो सके, दूसरा कोई नहीं। मैंने यह सलाह दी कि गोकि कोई कानून तो ऐसा नही है जिसकी रूसे हम ऐसे परवाने रखनेको बधे हो, फिर भी जबतक शांति-रक्षा कानून मौजूद है तबतक ये लोग हमसे परवाना तो मांग ही सकते है। जैसे हिंदुस्तानमे भारतरक्षा कानून (डिफेस आव इडिया ऐक्ट)था वैसे ही दक्षिण अफ्रीकामे शांति-रक्षा कानून (पीस प्रिजर्वेशन आर्डिनेंस) था और जैसे हिंदुस्तानमें भारत-रक्षा कानून महज जनताको तग करनेके लिए ही लबी मुद्दततक कायम रखा गया वैसे ही यह शांति-रक्षा कानून भी महज हिंदुस्तानियोंको हैरान करनेके लिए रख छोडा गया था। गोरोंके ऊपर एक तरहसे उसका अमल बिलकुल ही नही होता था। अब अगर परवाना लेना ही हो तो उसमे पहचानकी कोई निशानी तो होनी ही चाहिए। इसलिए जो लोग अपना नाम न लिख सकते हों उनका अंगूठे-

की निशानी लगाना ठीक ही था। पुलिसवालोंने यह बात ढूंढ निकाली है कि दो आदमियोंकी उंगलियोंकी रेखाएं एकसी होती ही नहीं। उनके रूप और संख्याका उन्होंने वर्गीकरण किया है और इस शास्त्रके जानकार दो अंगूठोंकी छापकी तुलना करके एक-दो मिनटमें ही कह सकते हैं कि वे अलग-अलग आदमियोंके अंगूठेकी हैं या एक ही आदमीके अंगूठेकी। फोटो देना मुझे तो तनिक भी पसंद नहीं था और मुसलमानोंकी दृष्टिसे तो इसमें धार्मिक आपत्ति भी थी।

अन्तमें अधिकारियोंके साथ हमारी बातचीतके फलस्वरूप यह तै पाया कि हरएक हिंदुस्तानी अपना पुराना परवाना देकर उसके बदलेमें नये नमूनेके परवाने बनवाले और नये आनेवाले हिंदुस्तानी नये नमूनेके परवाने ही लें। यह करना हिंदुस्तानियोंका कानूनन फर्ज नहीं था, पर इस आशासे लगभग सभी भारतीयोंने अपनी खुशीसे फिरसे परवाने लेना मंजूर कर लिया कि कहीं उनपर नई रुकावटें न लगादी जायं, दूसरे वे दुनियाको यह दिखा देना चाहते थे कि भारतीय जनता धोखा देकर किसीको इस देशमें नहीं घुसाना चाहती और शांतिरक्षा कानूनका उपयोग नये आनेवाले हिंदुस्तानियोंको हैरान करनेके लिए न किया जायगा। यह कोई ऐसी-वैसी बात न थी। जो काम करना हिंदुस्तानियोंको कानूनसे तनिक भी फर्ज नहीं था उसे उन्होंने पूरे एका और बड़ी ही शीघ्रतासे कर दिखाया। यह उनकी सचाई, व्यवहार-कुशलता, भलमनसी, समझदारी और नम्रताका चिह्न था। इस कामसे भारतीय जनताने यह भी साबित कर दिया कि ट्रांसवालके किसी भी कानूनका किसी भी रीतिसे उल्लंघन करना वह चाहती ही नहीं। हिंदुस्तानी समझते थे कि जिस सरकारके साथ जो जनसमाज इतनी भलमनसीका बरताव करेगा वह उसे अपनायेगी, अपना विशेष प्रेमपात्र समझेगी। ट्रांसवालकी ब्रिटिश सर-

कारने इस भारी भलमनसीका बदला किस प्रकार दिया, इसे हम अगले प्रकरणमें देखेंगे।

: ११ :

भलमनसीका बदला—खूनी कानून

परवानोंका रद्दोबदल होनेतक हम १९०६ में प्रवेश कर चुके थे। १९०३ में मैं ट्रांसवालमें फिर दाखिल हुआ था। उस सालके लगभग मध्यमें मैंने जोहान्सवर्गमें दफ्तर खोला। यानी दो बरस ऐशियाटिक महकमेके हमलोंका सामना करनेमें ही गये। हम सबने मान लिया था कि परवानोंका झगडा तै होते ही सरकारको पूरा संतोष हो जायगा और भारतीय जनताको कुछ शांति मिलेगी। पर उसके भाग्यमें शांति थी ही नही। मि० लायनल कर्टिसका परिचय पिछले प्रकरणमें दे चुका हू। उन्होंने सोचा कि हिंदुस्तानियोंके नये परवाने ले लेनेसे ही गोरोंका उद्देश्य सिद्ध नही होता। उनकी दृष्टिसे बडे कामोंका आपसके समझौतेसे होना ही काफी नही था। ऐसे कामोके पीछे कानूनका बल होना चाहिए। तभी उनकी शोभा है और उनके मूलभूत सिद्धांतोंकी रक्षा हो सकती है। मि० कर्टिसका विचार था कि हिंदुस्तानियोंको जकड़नेके लिए कोई ऐसा काम किया जाय जिसका असर सारे दक्षिण अफ्रीकापर पड़े और अंतमे दूसरे उपनिवेश भी उसका अनुकरण करें। उनकी रायमें जबतक दक्षिण अफ्रीकाका एक भी दरवाजा हिंदुस्तानियोंके लिए खुला रहेगा तबतक ट्रांसवाल सुरक्षित नही माना जा सकता। फिर उनकी दृष्टिसे सरकार और भारतीय जनताके बीच समझौता होनेसे तो भारतीय जनताकी प्रतिष्ठा और बढ जाती थी। उनका

इरादा इस प्रतिष्ठाको बढानेका नही, बल्कि घटानेका था। उनको हिंदुस्तानियोकी रजामदीकी जरूरत नही थी। वह तो चाहते थे उनपर बाहरी प्रतिबध लगाकर उन्हे थर्रा देना। अत उन्होने एशियाटिक ऐक्टका मसविदा बनाया और सरकारको सलाह दी कि जबतक इस मसविदेके अनुसार कानून बनकर तैयार नही हो जाता तबतक हिंदुस्तानियोका लुक-छिपकर ट्रासवालमे दाखिल होना रोका नही जा सकता और जो इस तरह यहा पहुच जाय उन्हे निकाल बाहर करनेकी प्रचलित कानूनोमे कोई व्यवस्था नही है। मि० कर्टिसकी दलीले और मसविदा सरकारको पसद आया और उसने इस मसविदेके अनुरूप बिल ट्रासवालकी धारा सभामे पेश करनेके लिए ट्रासवालके सरकारी गजटमे प्रकाशित कर दिया।

इस बिलकी तफसीलमे जानेके पहले एक महत्त्वकी घटनाकी चर्चा थोडे शब्दोमे कर देना आवश्यक है। सत्याग्रहकी प्रेरणा करनेवाला मै ही हू। इसलिए यह बहुत जरूरी है कि पाठक मेरी स्थितियोको पूरी तरह समझले। यो जब ट्रांसवालमे हिंदुस्तानियोपर प्रतिबध लगानेके प्रयत्न हो रहे थे, नेटालमे वहाके हबशियो—जुलू लोगोने बगावत कर दी। इस झगडेको बगावत कह सकते है या नही, इस बारेमे मुझे शका थी और आज भी है। फिर भी नेटालमे इस घटनाका परिचय सदा इसी नामसे दिया गया है। इस मौकेपर भी नेटालमे रहनेवाले बहुतसे गोरे इस विप्लवको शात करनेमे सहायता देनेके लिए स्वयसेवकके रूपमे सेनामे भरती हुए। मै भी नेटालका ही निवासी माना जाता था। इसलिए मैने सोचा कि मुझे भी उसमे काम करने चाहिए। भारतीय जनताकी अनुमति प्राप्तकर मैने सरकारको लिखा कि घायलोकी सेवा करनेवाली एक छोटी-सी टुकडी खडी करनेकी

इजाजत मुझे दे दी जाय। सरकारने प्रस्ताव स्वीकार किया। अतः मैंने ट्रांसवालका घर तोड़ दिया। बालबच्चोंको नेटाल-में उस खेतपर भेज दिया जहांसे 'इंडियन ओपीनियन' नामका साप्ताहिक अखबार निकाला जाता था और जहां मेरे सह-कारी रहते थे। दफ्तर कायम रखा, क्योंकि मैं जानता था कि मुझे इसमे बहुत दिन नही लगेंगे।

२०-२५ आदमियोंकी छोटीसी टुकड़ी खड़ी करके मैं फौजमें शामिल हो गया। इस छोटी-सी टुकड़ीमें भी लगभग सभी जातियोंके भारतीय थे। इस टुकड़ीको एक महीने सेवा करनी पड़ी। हमें जो काम सौंपा गया उसको मैंने सदा ईश्वर-का अनुग्रह माना है। मैंने देखा कि जो हबशी जख्मी होते थे उन्हें हम ही उठायें तो वे उठें, नही तो वही पड़े सड़ा करें। इन जख्मियोंके जख्मोंकी मरहम-पट्टी करनेमें कोई भी गोरा हाथ न बटाता। जिस शस्त्रवैद्य डा० सेवेजकी मातहतीमें हमें काम करना था वह स्वयं अतिशय दयालु थे। घायलोंको उठाकर अस्पताल पहुंचा देनेके बाद उनकी सेवा-शुश्रूषा हमारे कार्य-क्षेत्रके बाहरकी बात हो जाती थी। पर हम तो यह सोच कर गए थे कि जो भी सेवा हमें सौंपी जाय वह हमारी कर्त्तव्य-परिधिके अन्दर ही होगी। अतः इस भले डाक्टरने हमसे कहा कि मुझे कोई भी गोरा हबशियोंकी सेवा करनेके लिए नहीं मिलता और मुझमें यह शक्ति नही कि किसीको इसके लिए मजबूर कर सकूं। आप यह दयाका काम करें तो आप-का अहसान मानूंगा। हमने इस कामका स्वागत किया। कितने ही हबशियोंके जख्म पांच-पांच, छः-छः दिनसे साफतक नहीं किये गये थे, इससे उनसें दुर्गंध आ रही थी। इन सबको साफ करना हमारे सिर पड़ा और हमें यह सेवा बहुत रुची। हबशी हमारे साथ बात तो कर ही नही सकते थे; पर उनकी चेष्टाओं और उनकी आंखोंमें हम यह देख सकते थे कि उनका

मन कह रहा है कि मानों भगवानने ही हमें उनकी सहायताके लिए भेज दिया हो। इस काममें अकसर हमें चालीस-चालीस मीलकी मंजिल करनी होती।

एक महीनेमे हमारा काम समाप्त हो गया। अधिकारियों-को संतोष हुआ। गवर्नरने कृतज्ञता-प्रकाशका पत्र लिखा। हमारी टुकडीमें तीन गुजराती थे, जिन्हें सार्जेंटका अधिकार दिया गया था। उनके नाम जानकर गुजरातियोंको प्रसन्नता होगी। उनमें एक थे उमियाशंकर, दूसरे सुरेन्द्रराय मेढ और तीसरे हरिशंकर जोशी। तीनों कसे हुए बदनके थे और तीनोंने बडी कड़ी मेहनत की। दूसरे भारतीयोंके नाम मुझे इस वक्त याद नहीं आ रहे हैं। पर एक पठान भी उनमें था, यह मुझे अच्छी तरह याद है। यह भी याद है कि हम उसके बराबर बोझ उठा लेते थे और कूचमे भी उसके साथ-साथ रहते थे, यह देखकर उसे अचरज होता था।

इस टुकडीके कामके सिलसिलेमें मेरे दो विचार, जो अरसेसे मनमे धीरे-धीरे पक रहे थे, पूरी तरह पक गये। उनमे एक तो यह है कि सेवाधर्मका प्रधानपद देनेवालेको ब्रह्मचर्यका पालन करना ही चाहिए, दूसरा यह कि सेवाधर्म स्वीकार करनेवालेको गरीबीको सदाके लिए अपना लेना चाहिए। वह किसी ऐसे धंधेमे न लगे जिससे सेवाधर्मके पालनमें उसे कभी संकोच होनेका अवसर आये, या उसमें तनिक भी रुकावट हो सके।

मैं इस टुकडीमे काम कर रहा था तभी जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी ट्रासवाल लौट आनेकी चिट्ठियां और तार आ रहे थे। अतः फिनिक्समे सब लोगोंसे मिलकर मैं तुरंत जोहान्सबर्ग पहुंचा और वहा वह बिल पढा जिसके बारेमे ऊपर लिख चुका हूं। बिलवाला गजट २२ अगस्त १९०६ ई० का मैं दफ्तरसे घर ले गया था। घरके पास एक

छोटीसी पहाड़ी थी। वहां अपने साथीको लेकर इस बिलका उलथा 'इंडियन ओपीनियन' के लिए करने लगा। ज्यों-ज्यों मैं उसकी धाराओंको पढ़ता गया त्यों-त्यों मेरा कलेजा अधिकाधिक कांपने लगा। उसमें मैं भारतीयोंके द्वेषके सिवा और कुछ भी नहीं देख सका। मुझे दिखाई दिया कि अगर यह बिल पास हो गया और भारतीयोंने उसे मंजूर कर लिया तो दक्षिण अफ्रीकासे उनके पैर जड़मूलसे उखड़ जायंगे। मुझे स्पष्ट दिखाई दिया कि भारतीय जनताके लिए यह जीवन-मरणका प्रश्न है। मुझे यह भी दिखाई दिया कि अर्जी अब देने-से सफलता नहीं मिली तो वह चुप नहीं बैठ सकती। इस कानून-के सामने सिर झुकानेसे मर मिटना बेहतर है। पर मरें कैसे? भारतीय जनता किस खतरेमें कूदे या कूदनेका साहस करे कि उसके सामने विजय या मृत्यु इन दोके सिवा तीसरा रास्ता रह ही न जाय? मेरे सामने तो ऐसी संगीन दीवार खड़ी हो गई कि मुझे रास्ता सूझा ही नहीं। जिस प्रस्तावित बिलने मेरे अतरमें इतनी हलचल मचा दी थी उसका ब्यौरा पाठकों-को जान लेना ही चाहिए। उसका सार यह है:

"ट्रांसवालमें रहनेका हक रखनेवाला हरएक भारतीय पुरुष, स्त्री और आठ बरस या इससे ऊपरका लड़का-लड़की एशियाई दफ्तरमें अपना नाम दर्ज कराके परवाना हासिल करे। यह परवाना लेते समय पुराना परवाना अधिकारी (रजिस्ट्रार) को सौंप दे। नाम दर्ज करनेकी अर्जीमें नाम, ठिकाना, जाति, उम्र आदि लिख दें। रजिस्ट्रार प्रार्थीके शरीरपर जो खास निशान हों उन्हें नोट कर ले और उसकी दसो उंगलियों और अंगूठेका निशान ले ले। जो भारतीय स्त्री-पुरुष नियत अवधिके अंदर ऐसी दर्खास्त न दे, उसका ट्रांसवालमें रहनेका हक रद हो जायगा। दर्खास्त न देना कानूनन् अपराध माना जायगा। उसके लिए जेलकी सजा

मिल सकती है, जुर्माना किया जा सकता है और अदालत उचित समझे तो देशनिकालेका दड भी दे सकती है। बच्चो-की ओरसे मा-बापको दरख्वास्त देनी होगी और उंगलियो-के निशान आदि लेनेके लिए उन्हें रजिट्रारके सामने हाजिर करनेकी जिम्मेदारी भी मां-बापपर होगी। मा-बापने इस कर्त्तव्यका पालन नही किया हो तो १६ वरसका होनेपर बालकको खुद यह फर्ज अदा करना चाहिए। उसके अदा न किये जानेपर मां-बाप जिस-जिस दंडके पात्र होते है उस दंडके अधिकारी १६ की उम्रको पहुंचते हुए लड़की-लड़के भी माने जायगे। प्रार्थीको जो परवाना या रजिस्टरीका सार्टिफिकेट दिया जाय उसे हर पुलिस अफसरके सामने, जब और जहां वह मागा जाय, पेश करना लाजिमी होगा। उसे पेश न करना अपराध माना जायगा और अदालत उसके लिए कैद या जुर्मानेकी सजा दे सकती है। राह चलते व्यक्तिसे भी परवाना पेश करनेको कहा जा सकता है। परवानेकी जांचके लिए पुलिस अफसर घरमें भी घुस सकते है। ट्रांसवालके बाहरसे आनेवाले भार-तीय स्त्री-पुरुषको जाच करनेवाले अफसरके सामने अपना परवाना पेश करना ही होगा। कोई कामसे अदालतमें जाय या मालके दफ्तरमे व्यापार या बाइसिकिल रखनेको अनुमति-पत्र लेने जाय तो वहां भी अफसर उससे परवाना मांग सकता है। अर्थात् कोई भारतीय किसी भी सरकारी दफ्तर-मे उस दफ्तरसे संबद्ध कार्यके लिये जाय तो अफसर उसकी प्रार्थना स्वीकार करनेसे पहले उससे उसका परवाना मांग सकता है। उसे पेश करने या उसे रखनेवाले व्यक्तिसे अधिकारी इस बारेमें जो कुछ पूछे उसे बतानेसे इन्कार करना भी अपराध माना जायगा और अदालत उसके लिए भी जेल या जुर्मानेकी सजा दे सकती है।"

दुनियाके किसी भी हिस्सेमे स्वतन्त्र मनुष्योके लिए इस

तरहका कानून है, इसका पता मुझे नही है। मैं जानता हूं कि नेटालके गिरमिटिया हिंदुस्तानियोंके लिए परवानेका कानून बहुत सख्त है पर वे बचारे तो स्वतंत्र लोग माने ही नही जा सकते। फिर भी कह सकते हैं कि उनके परवानेका कानून इस कानूनकी तुलनामे नरम है, और उस कानूनके तोड़नेकी सजा तो इस कानूनमे निर्दिष्ट दण्डके सामने कुछ भी नही है। लाखोंका कारबार करनेवाला रोजगारी इस कानूनके अनुसार देश निकालेकी सजा पा सकता है, यानी इस कानूनका भग होनेसे उसके बिलकुल तबाह हो जानेकी स्थिति उत्पन्न हो सकती है। धैर्यवान् पाठक आगे चलकर देख सकेंगे कि इस अपराधकेलिए लोगोंको देशनिकालेकी सजा भी मिल चुकी है। जरायम पेशा जातियोंके लिए हिंदुस्तानमे कितना कड़ा कानून है। इस कानूनमे जो दसों उंगलियोंकी निशानी लेनेकी दफा थी वह तो दक्षिण अफ्रीकामे बिलकुल नई बात थी। इस विषयका कुछ साहित्य पढ़ जाना चाहिए, यह सोचकर मै मि० हेनरी नामक पुलिस अफसर की लिखी हुई 'उंगलियोंकी निशानी' (फिगर इम्प्रेशन्स) पुस्तक पढ गया। उसमें मैंने देखा कि इस प्रकार कानूनन् उंगलियोंका निशान केवल अपराधियोंसे ही लिया जा सकता है। अत. जबर्दस्ती दसों उंगलियोंकी छाप लेनेकी बात मुझे अति भयानक लगी। स्त्रियोंको और वैसे ही १६ वरसके अदरके लड़के-लड़कियोंको भी परवाना लेना होगा, यह बात इस बिलमें पहलेपहल रखी गई थी।

अगले दिन कुछ गण्यमान्य हिंदुस्तानियोंको इकट्ठा कर मैंने इस कानूनका अक्षर-अक्षर समझाया। फलत: उसका जो असर मुझपर हुआ था वही उनपर भी हुआ। उनमेंसे एक तो आवेशमे आकर बोल उठे—"कोई मेरी स्त्रीसे परवाना मांगने आया तो मै उसको वही गोली मार दूंगा, पीछे मेरा जो होना हो वह होता रहे।" मैंने उन्हे शांत किया और सबको

सुनाकर कहा—"यह मामला बहुत ही गभीर है। यह बिल अगर पास हो गया और हमने उसे मान लिया तो उसका अनुकरण सारे दक्षिण अफ्रीकामें किया जायगा। मुझे तो उसका उद्देश्य ही इस देशमें हमारी हस्ती मिटा देना मालूम होता है। यह कानून आखिरी सीढी नही है, बल्कि हमें सताकर दक्षिण अफ्रीकासे भगा देनेका पहला कदम है। अत हमपर केवल ट्रासवालमे बसनेवाले १०-१५ हजार हिंदुस्तानियोंकी ही जिम्मेदारी नही है, बल्कि दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय मात्रकी है। फिर अगर हम इस बिलका अर्थ पूरे तौरपर समझ सकते हों तो सपूर्ण भारतवर्षकी प्रतिष्ठाकी जिम्मेदारी भी हमपर ही आती है; क्योंकि इस बिलसे केवल हमारा ही अपमान नही होता, बल्कि इसमे सारे हिंदुस्तानका अपमान है। अपमानका अर्थ ही है निर्दोष व्यक्तिका मान भंग होना। हम इस कानूनके पात्र है यह तो कोई कह ही नही सकता। हम निर्दोष है और राष्ट्रके एक भी निर्दोष व्यक्तिका अपमान सारे राष्ट्रका अपमान है। अत. इस कठिन अवसरपर हमने जल्दबाजीकी, अधीरता दिखाई, क्रोध किया तो उससे इस हमलेसे नही बच सकेंगे। पर अगर शातिसे उपाय ढूढकर वक्तपर उसका अवलम्बन करे, आपसमे एकता रखें और अपमानका सामना करते हुए जो कष्ट पडें उन्हे झेल ले तो मैं मानता हू कि ईश्वर स्वय ही हमारी सहायता करेगा।" बिलकी गभीरता सबने समझ ली और यह निश्चय किया कि सार्वजनिक सभा करके कुछ प्रस्ताव पास किये जायं। यहूदियोंकी एक नाटकशाला भाडेपर लेकर उसमें सभा की गई।

अब पाठक समझ सकते है कि इस प्रकरणके शीर्षकमें इस बिलका परिचय 'खूनी कानून' कहकर क्यो दिया गया है। यह विशेषण मैंने इस प्रकरणके लिए नही गढा है,

बल्कि इस विशेषणका उपयोग दक्षिण अफ्रीकामें ही इस कानूनका परिचय देनेके लिए प्रचलित हो गया था।

: १२ :

सत्याग्रहका जन्म

१९०६ की ११ वीं सितंबरको उक्त नाटकशालामें सभा हुई। ट्रांसवालके भिन्न-भिन्न नगरोंसे प्रतिनिधि बुलाये गये। पर मुझे कबूल करना होगा कि जो प्रस्ताव मैंने बनाये थे उनका पूरा अर्थ मैं खुद नहीं समझ सका। उनसे क्या नतीजे निकलेंगे, इसका भी अंदाजा उस वक्त नहीं कर सका था। सभा हुई। नाटकशाला ठसाठस भर गई थी। कुछ नया करना है, कुछ नया होना है—यह भाव मैं हरएकके चेहरेपर देख सकता था। ट्रांसवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशनके अध्यक्ष श्री अब्दुलगनी सभापतिके आसन पर विराज रहे थे। वह ट्रांसवालके बहुत ही पुरानेवाले बाशिंदोंमेंसे थे। मुहम्मद कासिम कमरुद्दीन नामक प्रसिद्ध फ़र्मके हिस्सेदार और उसकी जोहान्सवर्गकी शाखाके व्यवस्थापक थे। जो प्रस्ताव सभामें उपस्थित किये गये उनमें सच पूछिए तो एक ही महत्त्वका प्रस्ताव था। उसका आशय यह था कि इस बिलके विरोधमें सब उपाय करते हुए भी अगर वह पास हो जाय तो भारतीय उसके आगे सिर न झुकाएं और सिर न झुकानेसे जो-जो कष्ट सहने पड़ें उन्हें सह लें।

यह प्रस्ताव मैंने सभाको पूरी तरह समझा दिया। सभाने भी शांतिसे उसे सुन लिया। सभाका सारा कामकाज तो हिंदी या गुजरातीमें ही होता था, इसलिए यह तो हो ही नहीं सकता था कि कोई भी उसकी कोई बात न समझ पाये।

हिंदी न समझनेवाले तामिल और तेलगू भाइयोंके लिए उन भाषाओंके बोलनेवाले सारी बातोंको पूरे तौरपर समझा देते थे। प्रस्ताव नियम-पूर्वक उपस्थित किया गया। बहुतों-ने अनुमोदन-समर्थन भी किया। उनमें एक बोलनेवाले सेठ हाजी हबीब थे। ये भी दक्षिण अफ्रीकाके बहुत पुराने और अनुभवी बाशिंदे थे। उन्होंने बड़ा ही जोशीला भाषण दिया। आवेशमें आकर यहांतक कह गये—"यह प्रस्ताव हमें खुदाको साक्षी करके स्वीकार करना है। हमें चाहिए कि नामर्द बनकर इस कानूनके सामने कभी सिर न झुकाएं। इसलिए मैं खुदाकी कसम खाकर कहता हूं कि हरगिज इस कानूनके ताबे न होऊंगा। और मैं इस सारे जल्सेको सलाह देता हूं कि सब लोग खुदाको साक्षी करके कसम खायं।"

प्रस्तावके समर्थनमें और भी तीखे और जोरदार भाषण हुए थे। सेठ हाजी हबीब जब बोल रहे थे और कसमकी बातपर पहुंचे तो मैं तुरत चौंका और सावधान हो गया। तभी मैं अपनी निजकी और कौमकी जिम्मेदारीको पूरे तौरपर समझ सका। कौमने अबतक कितने ही प्रस्ताव पास किये थे। अधिक विचार या नये अनुभवसे उनमें फेरफार भी किये गये। यह भी हुआ कि सबने उन निश्चयोंपर अमल नहीं किया। स्वीकृत प्रस्तावमें रद्दोबदल, उससे सहमत हुए लोगोंका इन्कार आदि सारी दुनियामें सार्वजनिक जीवनके सामान्य अनुभव हैं। पर ऐसे प्रस्तावोंमें कोई ईश्वरका नाम बीचमें नहीं लाता। तात्त्विक दृष्टिसे विचार किया जाय तो निश्चय और ईश्वरका नाम लेकर की हुई प्रतिज्ञामें कोई अन्तर होनाही नहीं चाहिए। बुद्धिशाली मनुष्य सोच-समझकर कोई निश्चय करे तो उससे वह डिगता नहीं। उसकी निगाहमें उसका वजन ईश्वरको साक्षी करके की हुई प्रतिज्ञाके बराबर ही होता है। पर

दुनिया तात्त्विक निर्णयोंसे नही चलती। ईश्वरको साक्षी बनाकर की हुई प्रतिज्ञा और सामान्य निश्चयके बीच वह जमीन-आसमानका अंतर मानती है। सामान्य निश्चयको बदलनेमें निश्चय करने वाला शर्माता नहीं, पर प्रतिज्ञा करनेवाला अगर अपनी प्रतिज्ञाको तोड़ता है तो वह खुद तो शर्माता ही है, समाजभी उसको धिक्कारता है और पापी समझता है। इन बातोंकी जड इतनी गहरी हो गई है कि कानून भी कसम खाकर कही हुई बात झूठी ठहरे तो कसम खानेवालेको अपराधी मानता है और सख्त सजा मिलती है।

इन विचारोंसे भरा हुआ मैं जो प्रतिज्ञाओंका अनुभवी था और उनके मीठे फल चख चुका था, ऊपर लिखी प्रतिज्ञाकी बात सुनकर भयसे स्तब्ध हो गया। उसके परिणाम एक क्षणमें मेरे मानसचक्षुके सामने आ गये। इस घबराहटसे जोश पैदा हुआ और यद्यपि मैं इस सभामें प्रतिज्ञा करने या लोगोंसे करानेका इरादा लेकर नही गया था फिर भी सेठ हाजी हबीबका सुझाव मुझे बहुत पसंद आया। पर इसके साथ-साथ मैंने यह भी सोचा कि इस प्रतिज्ञाके सारे नतीजोंसे लोगोको वाकिफ करा देना चाहिए, प्रतिज्ञाका अर्थ स्पष्ट रूपसे समझा देना चाहिए। इसके बाद अगर वे प्रतिज्ञा कर सकें तो उसका स्वागत करना चाहिए और न कर सकें तो मुझे समझ लेना होगा कि अभी वे आखिरी कसौटीपर चढनेको तैयार नही हुए है। अतः मैंने सभापतिसे प्रार्थना की कि मुझे सेठ हाजी हबीबके कथनका अर्थ समझानेकी इजाजत दें। मुझे इसकी इजाजत मिल गई। मैं उठा और जो कुछ कहा उसका खुलासा जैसा आज मुझे याद है वैसा नीचे दे रहा हूं :

"मैं सभाको यह बात समझा देना चाहता हूं कि आजतक जो प्रस्ताव हमने स्वीकार किये है और जिस रीतिसे स्वीकार किये हे उन प्रस्तावो और उस रीतिसे इस प्रस्ताव और इसकी

रीतिमे भारी अतर है। यह प्रस्ताव अति गभीर है, क्योकि इसपर पूरा-पूरा अमल होनेपर दक्षिण अफ्रीकामें हमारी हस्तीका रहना-मिटना अवलबित है। यह प्रस्ताव स्वीकार करनेकी जो रीति हमारे भाईने सुझायी है वह जितनी गभीर है उतनी ही नवीन है। मै खुद इस रीतिसे निश्चय करानेका विचार करके यहा नही आया था। इस यशके अधिकारी अकेले सेठ हाजी हबीब है और इसकी जवाबदेही भी उन्हीपर है। उन्हे मै मुबारकबाद देता हूँ। इनका सुझाव मुझे बहुत रुचा है, पर आप उसे स्वीकार कर लेगे तो आप भी उनकी जिम्मेदारीमें साझी हो जाएगे। यह जिम्मेदारी क्या है, यह आपको समझ लेना चाहिए और कौमके सलाहकार और सेवकके रूपमे उसे पूरे तौरपर समझा देना मेरा फर्ज है।

"हम सभी एक ही सिरजनहारको माननेवाले है। उसको मुसलमान भले ही खुदा कहकर पुकारे, हिंदू भले ही उसको ईश्वरके नामसे भजे, पर है वह एक ही स्वरूप। उसको साक्षी करके, उसको बीचमे रखकर हम कोई प्रतिज्ञा करे या कसम खाए, यह कोई ऐसी-वैसी बात नही है। ऐसी कसम खाकर अगर हम उससे फिर जायं तो हम कौमके, दुनियाके और खुदाके सामने गुनहगार होगे। मै तो मानता हू कि सावधानीसे, शुद्धबुद्धिसे मनुष्य कोई प्रतिज्ञा करे और पीछे उसको तोड़ दे तो वह अपनी इसानियत, अपनी मनुष्यताको खो बैठता है। और जैसे पारा चढा हुआ ताबेका सिक्का रुपया नही है—यह मालूम होते ही उसकी कोई कीमत नही रहती, इतना ही नही, बल्कि उस खोटे सिक्केका मालिक दण्डका पात्र हो जाता है—वैसे ही झूठी कसम खानेवालेकी भी कोई कीमत नही होती, बल्कि लोक-परलोक दोनोंमें वह दण्डका अधिकारी होता है। सेठ हाजी हबीब ऐसी ही गभीर कसम खानेकी हमे सलाह दे रहे है। इस सभामे

ऐसा एक भी आदमी नही है जो बालक या नासमझ माना जा सके। आप सभी पुख्ता उम्रवाले है, दुनिया देखे हुए है, बहुतेरे तो प्रतिनिधि है और कमोबेश जिम्मेदारी भी उठा चुके है। अत. इस सभामें एक भी आदमी नही है जो 'मैंने बिना समझे प्रतिज्ञा कर दी थी' कहकर कभी उस बंधनसे निकल सके।

" मै जानता हूं कि प्रतिज्ञाए, व्रत आदि गंभीर अवसरोंपर ही लिए जाते है। उठते-बैठते प्रतिज्ञा करनेवाला जरूर ठोकर खायगा और गिरेगा। पर इस देशमे, अपने सामाजिक जीवनमे मै प्रतिज्ञा करने योग्य किसी अवसरकी कल्पना कर सकता हू तो वह अवसर अवश्य उपस्थित है। बहुत सम्हाल-कर और डर-डरके कदम उठाना बुद्धिमानी है। पर डर और सम्हालकी भी हद होती है। हम उस हदको पहुंच गये है। सरकार सभ्यताकी मर्यादा लांघ गई है। हमारे चारों ओर जब उसने दावानल सुलगा दिया है तब भी हम बलिदानकी पुकार न करे और सोच-विचारमे पड़े रहे तो हम नालायक और नामर्द साबित होंगे। अत. यह अवसर शपथ लेनेका है, इस विषयमे तनिक भी शंका नही। पर इस शपथकी शक्ति अपनेमे है या नही, यह हरएक को खुद सोच लेना होगा। ऐसे प्रस्ताव बहुमतसे पास नही किये जाते। जितने लोग कसम खाएं उतने ही उस कसमसे बधेंगे। ऐसी कसम दिखावेके लिए नही खाई जाती। उसका असर यहांकी सरकार, बडी (साम्राज्य) सरकार या भारत सरकारपर क्या होगा, इसका ख्याल कोई तनिक भी न करे। हरएक अपने हृदयपर हाथ रख उसको ही टटोले। अगर उसकी अन्त-रात्मा कहे कि तुममें शपथ लेनेकी शक्ति है तभी शपथ ले, तभी वह फलवती होगी।

"अब दो शब्द परिणामके विषयमे। बड़ी-से-बडी आशा

वीर्य तो यह कह सकते है कि अगर सब लोग अपनी कसमपर कायम रहें और भारतीय जनताका बड़ा भाग कसम खा सके तो यह कानून (आर्डिनेस) या तो पास ही न होगा या पास होगा तो तुरत रद हो जायगा। कौमको अधिक कष्ट न सहना पड़ेगा। हो सकता है कि कुछ भी कष्ट न सहना पड़े। पर कसम खानेवालेका धर्म जैसे एक ओरसे श्रद्धापूर्वक आशा रखना है, वैसे ही दूसरी ओरसे नितात आशा-रहित होकर कसम खानेको तैयार होना है। इसलिए मै चाहता हू कि हमारी लडाईमे जो कड़वे-से-कड़वे परिणाम हमारे सामने आ सकते है, उनकी तसवीर इस सभाके सामने खीचदू। मान लीजिए कि यहा उपस्थित हम सब लोग शपथ ले लेते है। हमारी सख्या अधिक-से-अधिक ३ हजार होगी। यह भी हो सकता है कि बाकीके १० हजार भारतीय कसम न खाय। शुरूमे तो हमारी हंसी होनी ही है। फिर इतनी सारी चेतावनी दे देनेपर भी यह मुमकिन है कि कसम खाने वालोंमे कुछ या बहुत-से पहली ही परीक्षामे कमजोर साबित हो जाय। हमे जेल जाना पड़े, जेलमे अपमान सहने पडे। भूख-प्यास, सरदी-गरमी भी सहनी पडे। कडी मशक्कत करनी पडे। उद्धत दरोगाओं (वार्डरो) के कोड़े खाने पड़े। जुर्माना हो और कुर्कीमे हमारा माल-असबाब भी बिक जाय। लडनेवाले बहुत थोड़े रह गये तो आज हमारे पास बहुत पैसा होते हुए भी हम कल कगाल हो जा सकते है। हमे देशनिकालेकी सजा भी मिल सकती है। जेलमे भूखे रहते और दूसरे कष्ट सहते हुए हममेसे कुछ बीमार हो सकते है और कोई मर भी सकता है। अर्थात्, थोड़ेमें कहा जा सकता है कि यह बात तनिक भी नामुमकिन नही कि जितने कष्टोंकी कल्पना हम कर सकते है वे सभी हमें सहने पडे और समझदारी इसीमे है कि ये सारे कष्ट सहन करने होंगे यह मानकर ही

हम कसम खायं। मुझसे कोई पूछे कि इस लड़ाईका अंत क्या होगा और कब होगा तो मैं कह सकता हूं कि अगर सारी कौम परीक्षामें पूरी तरह उत्तीर्ण हो गई तो लड़ाईका फैसला बहुत जल्दी हो जायगा। पर अगर हममेंसे बहुतसे संकटका सामना होनेपर फिसल गये तो लड़ाई लंबी होगी। पर इतना तो मैं हिम्मतके साथ और निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि जबतक मुट्ठीभर लोग भी अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ रहनेवाले होंगे तबतक इस युद्धका एक ही अंत समझिये—अर्थात् इसमें हमारी जीत ही होगी।

"अब दो शब्द अपनी व्यक्तिगत जिम्मेदारीके बारेमें भी कह दूं। यद्यपि मैं प्रतिज्ञा करनेकी जोखिमोंको बता रहा हूं, पर साथ ही आपको शपथ खानेकी प्रेरणा भी कर रहा हूं। इसमें मेरी अपनी जिम्मेदारी कितनी है, इसे मैं पूरे तौरपर समझता हूं। हो सकता है कि आवेशमें या गुस्सेमें आकर इस सभामें उपस्थित लोगोंका बड़ा भाग प्रतिज्ञा करले, पर संकट-कालमें कमजोर साबित हो, और मुट्ठीभर लोग ही अंतका ताप सहन करनेके लिए रह जायं। फिर भी मुझ जैसे आदमीकेलिए तो एक ही रास्ता होगा—'मर मिटना, पर इस कानूनके आगे सिर न झुकाना।' मैं तो मानता हूं कि मान लीजिये ऐसा होनेकी तनिक भी संभावना नहीं, फिर भी फर्ज कर लीजिए कि सब गिर गये और मैं अकेला ही रह गया, तो भी मेरा विश्वास है कि प्रतिज्ञाका भंग मुझसे हो ही नहीं सकता। यह कहनेका मतलब आप समझ लें। यह घमंडकी बात नहीं, बल्कि खासतौरसे इस मंचपर बैठे हुए नेताओंको सावधान करनेकी बात है। अपनी मिसाल लेकर मैं नेताओंसे विनयपूर्वक कहना चाहता हूं कि अगर आपमें अकेला रह जानेपर भी दृढ़ रहनेका निश्चय या वैसा करनेकी शक्ति न हो तो आप इतना ही न करें कि खुद प्रतिज्ञा न करें,

बल्कि लोगोंके सामने यह प्रस्ताव रखकर उनसे प्रतिज्ञा कराई जाय, इसके पहले ही आप अपना विरोध लोगोपर प्रकट कर दे और अपनी सम्मति उसमे न दे । यह प्रतिज्ञा यद्यपि हम सब साथ मिलकर करना चाहते है तो भी कोई इसका यह अर्थ कदापि न करे कि एक या अनेक लोग अपनी प्रतिज्ञाको तोड दें तो दूसरे सहज ही उसके बधनसे मुक्त हो सकते है। हरएक अपनी-अपनी जिम्मेदारीको समझ कर स्वतंत्र रूपसे प्रतिज्ञा करे और यह समझकर करे कि दूसरे कुछ भी करें, पर मैं खुद तो मरते दम तक उसका पालन करूंगा ही।"

इस आशयका भाषण करके मै अपनी जगहपर बैठ गया। लोगोने अतिशय शातिसे उसका एक-एक शब्द सुना । दूसरे नेता भी बोले। सबने अपनी और श्रोताओंकी जिम्मेदारीका विवेचन किया। सभापति उठे। उन्होंने भी स्थितिको समझाया और अतमें सारी सभाने खडे होकर हाथ उठाकर और ईश्वरको साक्षी करके प्रतिज्ञा की कि यह कानून पास हो गया तो हम उसके आगे सिर न झुकाएगे। वह दृश्य मुझे तो कभी भूलनेका नही। लोगोके उत्साहकी सीमा न थी। अगले ही दिन इस नाटकशालामे कोई दुर्घटना हुई और सारी नाटकशाला जलकर खाक हो गई। तीसरे दिन लोग मेरे पास यह खबर लाये और कौमको यह कहकर मुबारकबाद देने लगे कि नाटकशालाका भस्म हो जाना शुभ शकुन है। जैसे नाटकशाला जल गई वैसे ही यह कानून भी एक दिन आगकी नजर हो जायगा। इन लक्षणोका मुझपर कभी असर न हुआ था। अत. मैने इस घटनाको कोई महत्त्व न दिया। यहां उसका उल्लेख केवल यह बतानेके लिए किया है कि लोगोमें इस समय कितना शौर्य और श्रद्धा थी। इन दोनो बातोके दूसरे बहुतसे चिह्न पाठक अगले प्रकरणोंमे देखेंगे।

यह विराट सभा करनेके बाद काम करनेवाले बैठ नहीं रहे। जगह-जगह सभाएं की गईं और सर्वत्र सर्वसम्मतिसे प्रतिज्ञाएं दुहराई गईं। 'इंडियन ओपीनियन'मे अब यह खूनी कानून ही चर्चाका मुख्य विषय था। दूसरी ओर स्थानीय (प्रादेशिक) सरकारसे मिलनेके भी यत्न किये गये। उपनिवेश सचिव मि० डन्कनके पास एक शिष्ट-मंडल भेजा गया। प्रतिज्ञाकी बात उन्हे सुनाई गई। इस शिष्ट-मंडलमे सेठ हाजी हबीब भी थे। उन्होंने कहा—"कोई अफसर मेरी स्त्रीकी उंगलियोंका निशान लेने आया तो मैं अपने गुस्सेको जरा भी कावूमें न रख सकूगा। मे उसको वही मार डालूंगा और फिर अपने आपको खतम कर दूंगा!" मंत्री महोदय क्षण भर सेठ हाजी हबीबके मुहकी ओर ताकते रह गये। फिर कहा—"यह कानून औरतों पर लागू हो या नही, इस बारेमे सरकार विचार कर ही रही है। इतना इतमीनान तो मै आप लोगोंको अभी दिला सकता हू कि स्त्रियोंसे सबध रखनेवाली धाराए वापस ले ली जाएगी। इस विषयमे आपकी भावनाको सरकार समझ सकती है और उसका लिहाज करना चाहती है। पर दूसरी दफाओके बारेमे तो मुझे खेदके साथ बता देना होगा कि सरकार दृढ है और रहेगी। जनरल बोथा चाहते है कि आप भली भाति सोच-विचारकर इस कानूनको मजूर कर ले। गोरोंकी हस्तीके लिए सरकार उसको जरूरी समझती है। कानूनके मूल उद्देश्यकी रक्षा करते हुए ब्यौरेके बारेमे आपको कोई सुझाव पेश करना हो तो सरकार उसपर अवश्य ध्यान देगी। शिष्ट-मंडलको मेरी सलाह है कि अगर आप कानूनको स्वीकार करके तफसीलके बारेमें ही सुझाव पेश करें तो इसमें आपका हित है।" मंत्री महोदयके साथ जो दलीलें की गईं उन्हे मैं यहां नहीं देता; क्योंकि वे सभी दलीले पीछे दी जा चुकी

है। उनके सामने रखनेमे भेद केवल भाषाका था। दलीलें तो वही थी। मन्त्रीजीको यह सूचित करके कि आपकी सलाह होते हुए भी कोई इस कानूनको मजूर नही कर सकता और स्त्रियोंको उससे मुक्त रखनेके इरादेके लिए सरकारको धन्यवाद देकर शिष्ट-मडलने उनसे विदा ली। स्त्रियोकी मुक्ति भारतीय जनताके आन्दोलन की बदौलत हुई या सरकार-ने ही और विचार करके मि० कर्टिसकी शास्त्रीय पद्धतिको अस्वीकार करके कुछ लोक-व्यवहारका भी लिहाज किया, यह कहना कठिन है। सरकारी पक्षका कहना था कि सरकार-ने भारतीयोंके आन्दोलनके कारण नही, बल्कि स्वतत्र रूपसे विचार करके ही यह निश्चय किया है। चाहे जो हो, पर भारतीय जनताने तो 'काकतालीय न्याय'से यह मान ही लिया कि यह उसके आन्दोलनका ही फल है और इससे लड़नेका उत्साह बढ़ा।

कौमके इस सकल्प या आन्दोलनको कौनसा नाम दिया जाय, यह हममेसे कोई नही जानता था। उस वक्त मै इस आन्दोलनको 'पैसिव रेजिस्टेंस' कहता था। 'पैसिव रेजिस्टेंस'-का अर्थ भी पूरी तरह नही समझता था। इतना ही समझा था कि किसी नई वस्तुका जन्म हुआ है। लड़ाई ज्यो-ज्यो आगे बढ़ती गई त्यो-त्यो 'पैसिव रेजिस्टेंस' नामसे उलझन पैदा होने लगी और इस महान् युद्धका अग्रेजी नामसे ही परिचय देना मुझे लज्जा-जनक जान पड़ा। फिर कौमकी जबानपर यह शब्द चढ भी नही सकता था। अत 'इडियन ओपीनियन' में सबसे अच्छा नाम ढूढ निकालनेवालेके लिए छोटे-से इनामकी घोषणा की। कुछ नाम मिले। इस वक्त तक इस युद्धके अर्थ की 'इडियन ओपीनियन' मे भली भाति चर्चा हो चुकी थी। इससे प्रतियोगिता करनेवालोंके पास खोजके लिए काफी मसाला हो गया था। मगनलाल गाधीने भी इस

प्रतियोगितामें भाग लिया। उन्होंने 'सदाग्रह' नाम भेजा। इस शब्दको पसंद करनेका कारण बताते हुए उन्होंने लिखा कि हिंदुस्तानी कौमका यह आन्दोलन एक भारी आग्रह है और यह आग्रह 'सद्' अर्थात् शुभ है। इसलिए यह नाम पसंद किया। उनकी दलीलका सार मैंने थोड़ेमें दिया है। मुझे यह नाम रुचा। फिर भी जिस वस्तुका समावेश मैं करना चाहता था उसका समावेश उसमें नहीं होता था। इसलिए मैंने 'द' को 'त्' करके और उसमें 'य' जोड़कर 'सत्याग्रह' नाम बनाया। सत्यमें शांतिका अंतर्भाव माना और आग्रह किसी भी वस्तुका किया जाय तो उसमेंसे बल उत्पन्न होता है। अतः आग्रहमें बलका भी समावेश किया, और भारतीय आन्दोलनको 'सत्याग्रह' अर्थात् शांतिसे उत्पन्न होनेवाले बलके नामसे पुकारना शुरू किया। तभीसे इस संग्रामके लिए 'पैसिव रेजिस्टेंस' शब्दका उपयोग बंद कर दिया गया, यहांतक कि अंग्रेजी लेखोंमें भी 'पैसिव रेजि-स्टेंस' का उपयोग त्याग दिया और उसके बदले 'सत्याग्रह' या कोई दूसरा अंग्रेजी शब्द लिखना आरंभ किया। इस प्रकार जिस वस्तुका परिचय सत्याग्रहके नामसे दिया जाने लगा उस वस्तु और सत्याग्रह नामका जन्म हुआ। अपने इतिहासको आगे बढानेके पहले 'पैसिव रेजिस्टेंस' और 'सत्याग्रह' का भेद हम समझ लें, यह जरूरी है। इसलिए अगले प्रकरणमें हम यह भेद समझेंगे।

: १३ :

'सत्याग्रह' बनाम 'पैसिव रेजिस्टेंस'

आन्दोलन ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता गया त्यों-त्यों अंग्रेजोंको

भी उससे दिलचस्पी होती गई। मुझे यह बता देना चाहिए कि यद्यपि ट्रांसवालके अंग्रेजी अखबार आम तौरसे खूनी कानूनके पक्षमें ही लिखते थे और गोरोंके विरोधका समर्थन करते थे, फिर भी कोई प्रसिद्ध भारतीय उनको कुछ लिख भेजता तो वे खुशीसे उसको छापते थे। भारतीय सरकारके पास जो अर्जियां भेजते उन्हें भी पूरा-पूरा या उनका सार प्रकाशित कर देते। बडी सभाओंमें कभी-कभी अपने रिपोर्टर भेजते और जब ऐसा न होता तो जो रिपोर्ट हम लिखकर भेज देते वह छोटी होती तो छाप देते।

यह भलमनसी भारतीय जनताके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुई और आन्दोलन बढनेपर कुछ प्रमुख यूरोपियन भी उसमें रस लेने लगे। इन मुखियोंमें जोहान्सबर्गके लखपती मि० हॉस्किन भी थे। इनमें वर्ण-द्वेष तो आदिसे ही नहीं था। पर आन्दोलन आरंभ होनेके बाद हिंदुस्तानियोंके मसलेसे उन्हें गहरी दिलचस्पी हो गई। जर्मिस्टन नामका एक नगर है जो जोहान्सबर्गका उपनगर-सा है। वहांके गोरोंने मेरा भाषण सुननेकी इच्छा प्रकट की। सभा हुई। मि० हॉस्किनने उसमें हमारे आन्दोलनका और मेरा परिचय देते हुए कहा—"ट्रांसवालके भारतीयोंने न्याय प्राप्तिके लिए, दूसरे उपाय निष्फल हो जानेपर 'पैसिव रेजिस्टेंस' का अवलंबन किया है। उन्हें चुनावमें मत देनेका अधिकार नहीं। उनकी संख्या थोडी है। वे निर्बल हैं, उनके पास हथियार नहीं। इसलिए उन्होंने 'पैसिव रेजिस्टेंस' को, जो निर्बलोंका हथियार है, ग्रहण किया है।" यह सुनकर मैं चौंका और जो भाषण करने मैं गया था उसने दूसरा ही रूप ले लिया। मि० हॉस्किनकी दलीलका खंडन करते हुए मैंने 'पैसिव रेजिस्टेंस' को 'सोल-फोर्स' यानी आत्मबल बताया। इस सभामें मैंने देखा कि 'पैसिव रेजिस्टेंस' शब्दके उपयोगसे भयानक भ्रम होनेकी

संभावना है। सभामे दी हुई दलील और 'पैसिव रेजिस्टेंस' और आत्मबलका भेद समझानेके लिए जो कुछ और कहनेकी आवश्यकता है उसे मिलाकर मै दोनोके बीच रहनेवाले विरोधको समझानेकी कोशिश करूंगा।

'पैसिव रेजिस्टेंस' इन दो शब्दोंका उपयोग अंग्रेजी भाषामे पहले-पहल किसने किया और कब किया, इसका पता तो मुझे नही है। पर ब्रिटिश जनतामे जब-जब किसी छोटे समुदायको कोई कानून पसंद नहीं आया तब-तब उसने उस कानूनके विरुद्ध विद्रोह करनेके बदले उस कानूनके सामने सिर न झुकानेका 'पैसिव' अर्थात् हलका कदम उठाया और उसके फलस्वरूप जो सजा मिले उसे भुगत लेना पसंद किया। कुछ बरस पहले जब ब्रिटिश पार्लमेंटने शिक्षाका कानून (एजूकेशन-ऐक्ट) पास किया तब डाक्टर क्लिफर्डके नेतृत्वमे 'नान-कनफार्मिस्ट' नामक ईसाई सम्प्रदायने 'पैसिव रेजिस्टेंस'का अवलंबन किया था। इंगलैंडकी स्त्रियोने मताधिकार पानेके लिए जो जबर्दस्त आन्दोलन किया था उसे भी 'पैसिव रेजिस्टेंस'का नाम दिया गया था। इन दोनो आन्दोलनोको ध्यानमे रखकर ही मि० हॉस्किनने कहा कि 'पैसिव रेजिस्टेंस' निर्बल अथवा मताधिकार-रहितका हथियार है। डाक्टर क्लिफर्डके पक्षको मताधिकार प्राप्त था, पर आम सभामें उसकी संख्या इतनी कम थी कि वह वोटके बलसे शिक्षा-कानूनका पास होना नही रोक सका, अर्थात् यह पक्ष संख्याबलमे कमजोर ठहरा। अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिए यह पक्ष शस्त्रका उपयोग कभी करता ही नही, सो बात नही थी। पर इस काममें उसका उपयोग करके वह सफल नही हो पाता। सुव्यवस्थित राज्य-तंत्रमे हर वक्त यकायक बगावत करके ही हक हासिल करनेका तरीका चल ही नही सकता। फिर डाक्टर क्लिफर्डके पक्षके कुछ ईसाई सामान्य रीतिसे हथियारका इस्तेमाल हो

सकता हो तो भी उसका विरोध करते। स्त्रियोंके आन्दो-लनमे मताधिकार तो था ही नही। संख्या और शरीर-बलमे भी वे कमजोर थी। अत. यह उदाहरण भी मि० हॉस्किनकी दलीलका पोषण ही करता था। स्त्रियोंके आन्दोलनमें हथि-यारके उपयोगका त्याग नही किया गया था। उनके एक पक्षने तो मकानोमें आग लगाई और पुरुषोंपर हमला भी किया। किसीकी हत्या करनेका इरादा उन्होंने कभी किया हो यह तो मैं नही सोचता; पर मौका मिलनेपर लोगोंकी मरम्मत करना और इस प्रकार कुछ-न-कुछ उपद्रव खड़े करते रहना तो अवश्य उनका उद्देश्य था।

पर हिंदुस्तानियोंके आन्दोलनमें हथियारके लिए तो कही और किसी भी स्थितिमे स्थान ही नहीं था, और ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ेंगे पाठक देखेंगे कि बड़े-बड़े कष्ट पड़नेपर भी सत्याग्रहियोंने शरीरबलसे काम नही लिया और वह भी ऐसे मौकोंपर जब इस बलका सफलता-पूर्वक उपयोग करने-में वे समर्थ थे। फिर हिंदुस्तानियोंको मताधिकार नही था और वे कमजोर थे यह दोनो बातें सही है। फिर भी आन्दो-लनकी योजनाका इनके साथ कोई संबंध नही था। यह कहनेमें मेरा आशय यह नही है कि भारतीय जनताके पास मताधिकारका या हथियारका बल होता तो भी वह सत्याग्रह ही करती। मताधिकारका बल हो तो सत्याग्रहके-लिए बहुत करके अवकाश ही नही होता। हथियारका बल हो तो विपक्षी अवश्य सम्हलकर चलता है। अत. यह भी समझमें आनेवाली बात है कि हथियार-बलवालेके लिए सत्याग्रहके अवसर थोड़े ही आएगे। मेरे कहनेका तात्पर्य इतना ही है कि मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि भारतीय आन्दोलनकी कल्पनामे शस्त्रबलकी शक्यता-अशक्यताका सवाल मेरे मनमें उठा ही नही। सत्याग्रह केवल आत्माका बल है और जहां

और जितने अंशमें हथियार यानी शरीरबल या पशुबलका उपयोग होता हो या सोचा जाता हो वहां उतने अंशमें आत्म-बलका कम उपयोग होता है। मैं मानता हूं कि ये दोनों शुद्ध विरोधी शक्तियां हैं और आन्दोलनके जन्मकालमें भी यह विचार मेरे मनमें पूरा-पूरा बैठ गया था।

पर यहां हमें इसका निर्णय नहीं करना है कि ये विचार योग्य हैं या अयोग्य। हमें तो केवल 'पैसिव रेजिस्टेंस' और सत्याग्रहके बीचके अंतरको ही समझ लेना है। हमने यह देख लिया कि इन दोनों शक्तियोंके बीच मूलमें ही बहुत बड़ा अंतर है। इस भेदको समझे बिना अपने आपको 'पैसिव रेजि-स्टर' या सत्याग्रही माननेवाले दोनोंको एक ही चीज मान ले तो यह दोनोंके साथ अन्याय है और इसके बुरे नतीजे भी होंगे। हम खुद दक्षिण अफ्रीकामें 'पैसिव रेजिस्टेंस' शब्दका उपयोग किया करते थे। उससे मताधिकारके लिए लड़ने-वाली स्त्रियोंकी वीरता और आत्मबलका हमपर आरोप करके हमें यश देनेवाले तो बहुत थोड़े होते, पर हम भी उन स्त्रियोंकी तरह लोगोंके जान-मालको नुकसान पहुंचानेवाले मान लिये जाते और मि० हॉस्किन जैसे उदार हृदयके सच्चे मित्रने भी हमें कमजोर मान लिया। विचारमें यह बल है कि मनुष्य अपने आपको जैसा मानता है अंतमें वैसा ही बन जाता है। हम यह मानते रहे कि हम निर्बल हैं, इसलिए निरुपाय होकर 'पैसिव रेजिस्टेंस' का उपयोग कर रहे हैं और दूसरोंसे भी यही मनवाया करें तो 'पैसिव रेजिस्टेंस' करते हुए हम कभी बलवान हो ही नहीं सकेंगे और मौका मिलते ही इस निर्बलोंके हथियारको फेंक देंगे। इसके विपरीत अगर हम सत्याग्रही हों और अपने आपको सबल मानकर इस ताकतको इस्तेमाल करें तो इसके दो स्पष्ट परिणाम होते हैं। बलके विचारका पोषण करते हुए हम दिन-दिन अधिक बलवान होते जाते हैं

और ज्यों-ज्यो हमारा वल वढता जाता है त्यो-त्यो सत्याग्रहका तेज वढता जाता है और इस शक्तिका उपयोग छोड देनेका मौका हम कभी ढूढते ही नही। फिर 'पैसिव रेजिस्टेस' में जहा प्रेम-भावका अवकाश नही, वहा सत्याग्रहमे बैरभावके लिए अवकाश नही। इतना ही नही, वल्कि वह अधर्म माना जायगा। 'पैसिव रेजिस्टेंस' मे मौका मिले तो शस्त्र-वलका उपयोग किया जा सकता है, सत्याग्रहमें शस्त्र-वलके उपयोगके लिए अच्छे-से-अच्छे अवसर उपस्थित हों तो भी वह सर्वथा त्याज्य है। 'पैसिव रेजिस्टेस' अक्सर शस्त्र-वलके उपयोगकी तैयारी समझा जाता है। सत्याग्रहका उपयोग इस रूपमे किया ही नही जा सकता। 'पैसिव रेजिस्टेस' हथियारकी ताकतके साथ-साथ चल सकता है। सत्याग्रह तो शस्त्र-वलका नितान्त विरोधी है। इसलिए दोनोका मेल कभी मिल ही नही सकता, यानी दोनोका साथ निभ ही नही सकता। सत्याग्रहका उपयोग अपने प्रिय जनोके साथ भी हो सकता है और होता है, 'पैसिव रेजिस्टेस' का उपयोग वस्तुत. प्रियजनोके साथ हो ही नही सकता, अर्थात् प्यारोंको बैरी मानिये तभी उसके साथ 'पैसिव रेजिस्टेस' किया जा सकता है। 'पैसिव रेजिस्टेस'-मे विपक्षको दु ख देने, हैरान करनेकी कल्पना सदा विद्यमान रहती है और उसे दु ख देते हुए खुद कष्ट सहना पडे तो उसे सह लेनेको तैयार रहना होता है। पर सत्याग्रहमे विरोधीको दु ख देनेका खयाल तक नही होना चाहिए। उसमे तो स्वय दु खको मोल लेकर-सहकर विरोधीको जीत लेनेकी ही बात सोची जानी चाहिए।

इस प्रकार इन दो शक्तियोके बीचके मुख्य भेद मैंने गिना दिये। मेरे कहनेका यह मतलब नही कि 'पैसिव रेजिस्टेस' के जो गुण—या दोष कहिए—मैंने गिनाये है वे हर प्रकारके 'पैसिव रेजिस्टेस' मे पाये जाते है। पर यह दिखाया जा सकता है कि

'पैसिव रेजिस्टेंस' के बहुतेरे उदाहरणोंमे ये दोष देखनेमें आये है। मुझे यह भी पाठकोंको बता देना चाहिए कि ईसा मसीहको बहुतसे ईसाई 'पैसिव रेजिस्टेंस' के आदि-नेताके रूपमें मानते है; पर वहां तो 'पैसिव रेजिस्टेस' का अर्थ शुद्ध सत्याग्रह ही मानना चाहिए। इस अर्थमे 'पैसिव रेजिस्टेस' के अधिक उदाहरण इतिहासमे नही मिलते। टॉलस्टॉयने रूसके दुखोबोर लोगोंकी मिसाल दी है। वह ऐसे ही 'पैसिव रेजिस्टेंस' यानी सत्याग्रहकी है। हजरत ईसाके बाद हजारों ईसाइयोने जो जुल्म बर्दाश्त किये है उस वक्त 'पैसिव रेजिस्टेस' शब्दका उपयोग होता ही नही था। अत. उनके समान निर्मल उदाहरण जो मिलते है उन्हे मैं तो सत्याग्रह ही कहूंगा और अगर आप उन्हें 'पैसिव रेजिस्टेस'की मिसाल माने तो 'पैसिव रेजिस्टेस' और सत्याग्रहमे कोई भेद नही रहता। इस प्रकरणका उद्देश्य तो यह दिखाना है कि अंग्रेजीमे 'पैसिव रेजिस्टेस' शब्दका व्यवहार आमतौरसे जिस अर्थमें होता है, सत्याग्रहकी कल्पना उससे बिलकुल जुदी है।

जैसे 'पैसिव रेजिस्टेंस' के लक्षण गिनाते हुए, इस शक्तिका उपयोग करनेवालेके साथ किसी भी रीतिसे अन्याय न हो इस खयालसे मुझे ऊपर लिखी चेतावनी देनी पडी है, वैसे ही सत्याग्रहके गुण गिनाते हुए मुझे यह बता देना भी जरूरी है कि जो लोग अपने आपको सत्याग्रही कहते है उनकी ओरसे मैं उन सारे गुणोंका दावा नही करता। मैं इस बातसे अनभिज्ञ नही हूं कि सत्याग्रहके जो गुण मैंने ऊपर बताये है उनसे कितने ही सत्याग्रही निरे अनजान है। बहुतेरे यह मानते हैं कि सत्याग्रह निर्बलोका हथियार है। कितनोके मुहसे मैंने यह भी सुना है कि सत्याग्रह शस्त्र-बलसे काम लेनेकी तैयारी है। पर मुझे फिरसे कह देना चाहिए कि सत्याग्रही किन गुणोसे युक्त देखनेमें आते है यह मैंने नही बताया है, बल्कि यह दिखानेका यत्न

किया है कि सत्याग्रहकी कल्पनामे कौन-कौनसी वाते है और उसके अनुसार सत्याग्रहीको कैसा होना चाहिए। जिस शक्तिसे काम लेना ट्रासवालमे भारतीयोने आरंभ किया, पाठक उस शक्तिको स्पष्ट रूपसे समझ ले और वह शक्ति 'पैसिव रेजिस्टेस' के नामसे परिचित शक्तिके साथ मिला न दी जाय, इस विचारसे इस शक्तिके अर्थका सूचक शब्द ढूढना पडा और उस वक्त उसमे किन-किन वस्तुओका समावेश माना गया था, यही बता देना, थोडेमे, इस प्रकरणके लिखनेका उद्देश्य है।

: १४ :

विलायतको शिष्ट-मण्डल

ट्रासवालमें खूनी कानूनके खिलाफ अर्जिया आदि भेजनेके जो-जो काम करने थे सव कर दिये गए। धारा सभाने स्त्रियोंसे सवध रखनेवाली दफा निकाल दी। वाकीका विल लगभग उसी रूपमें पास हुआ जिस रूपमे प्रकाशित हुआ था। कौममे इस वक्त भरपूर हिम्मत थी और उतना ही एका और एकमतता भी। अतः कोई निराश नही हुआ। फिर भी कोई वैध उपाय उठा न रखनेका निश्चय भी कायम रहा। ट्रासवाल इस वक्त 'क्राउन कॉलोनी था। 'क्राउन कॉलोनी' का शब्दार्थ है वादशाही उपनिवेश, अर्थात् ऐसा उपनिवेश जिसके कानून, शासन-प्रवध आदिके लिए बड़ी सरकार जवावदेह समझी जाती है। अत जो कानून शाही उपनिवेशकी धारा सभा पास करे उनपर वादशाहकी मजूरी महज रस्म और सौजन्यकी रक्षाके लिए नही लेनी होती, वल्कि जो कानून ब्रिटिश विधानके सिद्धातके विरुद्ध हो उस कानूनको वादशाह अपने मंत्रिमंडलकी सलाहसे स्वीकृति

देनेसे इन्कार कर सकता है, और ऐसा करनेके मौके भी काफी आते है। इसके विपरीत उत्तरदायी शासन-व्यवस्था (रस्पांसिवल गवर्नमेंट) वाले उपनिवेशकी धारा सभा जो कानून बनाये उसके लिए बादशाहकी मंजूरी मुख्यतः सौजन्य-की खातिर ही ली जाती है।

शिष्ट-मण्डल इगलैंड जाय तो कौमको अपनी जिम्मेदारी और अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए। इसे बतानेका भार मेरे ही सिर रहा। इसलिए मैंने अपने मंडलके सामने तीन सुझाव रखे। एक तो यह कि यद्यपि यहूदी नाटकशाला (इम्पा-यर थियेटर) वाली सभामे हम प्रतिज्ञाएं कर चुके है फिर भी प्रमुख भारतीयोसे फिरसे व्यक्तिगत प्रतिज्ञा करा लेनी चाहिए जिससे लोगोंके मनमे कोई शंका या कमजोरी आ गई हो तो मालूम हो जाय। यह सुझाव पेश करनेमें मेरी एक दलील यह थी कि शिष्ट-मण्डल सत्याग्रहके बलसे जाय तो निर्भय होकर जाय और कौमका निश्चय विलायतमे उप-निवेश सचिव और भारत सचिवके सामने निर्भयताके साथ रख सके। दूसरा यह कि शिष्ट-मण्डलके खर्चका पूरा बंदोबस्त पहलेसे ही हो जाना चाहिए। तीसरा यह कि शिष्ट-मडलमे कम-से-कम आदमी जायं। अक्सर लोगोका यह खयाल देखनेमे आता है कि ज्यादा आदमी जाय तो ज्यादा काम हो सकता है। इसीसे यह सूचना की गई। शिष्ट-मण्डलमे जानेवाले अपने सम्मानके लिए नही, बल्कि शुद्ध सेवाके उद्देश्य-से जायं इस विचारको सामने लाने और खर्च बचानेकी व्याव-हारिक दृष्टि इस सुझावमे थी। तीनों सुझाव मंजूर हुए। प्रतिज्ञा-पत्रपर लोगोंसे हस्ताक्षर कराये गये। बहुतोने हस्ताक्षर किये। पर मैंने देखा कि जो लोग सभामे प्रतिज्ञा कर चुके थे उनमें भी कुछ ऐसे थे जो दस्तखत करते हिचकते थे। एक बार कोई प्रतिज्ञा कर चुकनेके बाद उसे फिर पचास बार

दुहराना पड़े तो इसमें हिचक होनी ही नही चाहिए। फिर भी किसे यह अनुभव नहीं हुआ है कि लोगोने जो प्रतिज्ञा सोच-समझकर की हो उसमें भी पीछे ढीले पड़ जाते है या मुहसे की हुई प्रतिज्ञाको लिखते हुए घबराते हैं? पैसा भी हमारे अंदाजके अनुसार इकट्ठा हो गया। सबसे अधिक कठिनाई प्रतिनिधियोके चुनावमें पड़ी। मेरा नाम तो था ही। पर मेरे साथ कौन जाय? इस विचारमे कमेटीने बहुत वक्त गुजारा, कितनी ही रातें बीत गईं और सभा-समितियोमे जो बुरी आदतें देखनेमे आती हैं उनका अनुभव पूरे तौरपर हुआ। कोई कहता कि अकेले गाधी ही जाय, इससे सबका संतोप हो जायगा। पर मैंने ऐसा करनेसे साफ इन्कार कर दिया। मोटे हिसाबसे यह कह सकते हैं कि दक्षिण अफ्रीकामे हिंदू मुसलमानका सवाल नही था, पर यह दावा नही किया जा सकता कि दोनो कौमोके बीच जरा भी अतर नही था। और इस भेदने कभी जहरीली शक्ल नही अख्तियार की तो इसका कारण वहाकी विचित्र परिस्थिति किसी हदतक भले ही हो, पर इसका असल और पक्का कारण तो यही है कि नेताओंने एकनिष्ठा और सच्चे दिलसे अपना काम किया और कौमको सही रास्ता दिखाया। मेरी सलाह यह थी कि मेरे साथ एक मुसलमान सज्जनको तो होना ही चाहिए और दोसे अधिक आदमियोंकी जरूरत नही; पर हिंदुओकी ओरसे तुरत कहा गया कि आप तो सारी कौमके प्रतिनिधि माने जाते है, इसलिए हिंदुओका भी एक प्रतिनिधि होना ही चाहिए। कुछ यह भी कहते कि एक प्रतिनिधि कोकणी मुसलमानोका, एक मेमनोका और हिंदुओमे एक किसानोका और एक अनाविल लोगोका होना चाहिए। इस प्रकार अनेक जातियोके दावे पेश हुए। अतमे सब समझ गये और हाजी वजीर अली और मै यही दो आदमी एकमतसे चुने गये।

हाजी वजीर अली आधे मलायी कहे जा सकते है। उनके बाप हिंदी मुसलमान और मां मलायी थी। इनकी मादरी जबान डच कही जा सकती है; पर अंग्रेजी भी इतनी पढ़ ली थी कि डच और अंग्रेजी दोनो अच्छी तरह बोल सकते थे। अंग्रेजीमे भाषण करनेमे उन्हे कही अटकना नही पडता। अखबारोंमे पत्र लिखनेका अभ्यास भी कर लिया था। ट्रांसवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशनके सदस्य थे और लंबे अरसेसे सार्वजनिक कामोंमे हिस्सा लेते आ रहे थे। हिंदुस्तानी भी अच्छी तरह बोल लेते थे। उनका ब्याह एक मलायी स्त्रीसे हुआ था और इस स्त्रीसे उनके बहुतसे बाल-बच्चे थे। विलायत पहुंचते ही हम दोनो काममे जुट गये। उपनिवेश सचिव और भारत सचिवके सामने जो आवेदनपत्र पेश करना था उसका मसविदा तो जहाजपर ही बना लिया था। उसको छपा डाला। लार्ड एलिगन उपनिवेश मंत्री थे, लार्ड मॉर्ले भारत-मंत्री थे। हम हिंदके दादा (दादाभाई नवरोजी) से मिले। फिर उनके जरिये कांग्रेसकी ब्रिटिश कमेटीसे मिले। हमने अपना पक्ष उसे सुनाया और बताया कि हम तो सब पक्षोंको साथ लेकर काम करना चाहते है। दादाभाईकी तो यह सलाह थी ही। कमेटीको भी यह ठीक जान पडा। इसी तरह हम सर मंचेरजी भावनगरीसे मिले। उन्होने भी खूब मदद की। इनकी और दादाभाईकी भी सलाह थी कि लार्ड एलिगनके पास जो शिष्ट-मण्डल जाय उसका नेता कोई तटस्थ और प्रसिद्ध एंग्लो इंडियन बनाया जा सके तो अच्छा है। सर मंचेरजीने कुछ नाम भी सुझाए। उनमे सर लेपल ग्रिफिनका भी नाम था। पाठकोको जान लेना चाहिए कि सर विलियम विल्सन हंटर इस वक्त जीवित नही थे। वह होते तो दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोकी स्थितिसे उनका गहरा परिचय होनेके कारण वही शिष्ट-मण्डलके नेता हुए होते या उन्होने

उमराव (लार्ड) वर्गके किसी बड़े नेताको इस कामके लिए ढूंढ़ दिया होता।

हम सर लेपल ग्रिफिनसे मिले। उनकी राजनीति तो हिंदुस्तानमें चलते हुए सार्वजनिक आन्दोलनोंकी विरोधी ही थी; पर इस मसलेसे उनको गहरी दिलचस्पी हो गई और सौजन्यकेलिए नहीं, बल्कि न्यायकी दृष्टिसे उन्होंने हमारा अगुआ बनना मंजूर कर लिया। उन्होंने सारे कागज-पत्र पढ डाले और हमारे मसलेसे पूरी जानकारी कर ली। हम दूसरे एंग्लो इंडियन सज्जनोंसे भी मिले। आम सभाके बहुतसे सदस्यो-से और जिनका कुछ भी प्रभाव था ऐसे जितने आदमियों तक हमारी पहुंच हो सकती थी उन सबसे मिले। लार्ड एल्गिनके पास शिष्ट-मण्डल गया। उन्होंने सारी बातें ध्यानपूर्वक सुनली। अपनी हमदर्दी जाहिर की और साथ-ही-साथ अपनी कठिनाइयां भी बताईं। फिर भी जितना हो सके उतना करनेका वचन दिया। यही शिष्ट-मडल लार्ड मॉर्लेसे भी मिला। उन्होंने भी सहानुभूति प्रकट की। उनके उत्तरका सार पीछे दे चुका हू। सर विलियम वेडरबर्नकी कोशिशसे आम सभाके हिंदुस्तानके राज-काजसे लगाव रखनेवाले सदस्योंकी सभा उसी भवनके एक दीवानखानेमें हुई और हमने उसके सामने भी अपना पक्ष जितना हमसे हो सका रखा। इस वक्त आइरिश पक्षके नेता मि० रेडमंड थे। इसलिए हम उनसे भी खास तौरसे मिलने गये। खुलासा यह कि आम सभाके सब पक्षोंके जिन-जिन सदस्योंसे हम मिल सकते थे उन सबसे मिले। इंगलैंडमे हमें कांग्रेसकी ब्रिटिश कमेटीकी भरपूर मदद तो थी ही। पर यहांके रीति-रिवाजके मुताबिक उसमें तो पक्ष-विशेष और मतविशेषके आदमी ही आ सकते थे। ऐसे बहुतेरे थे जो उक्त कमेटीमें तो नही आते थे; पर हमारे काममें पूरी मदद देते थे। हमने सोचा कि इन सबको

इकट्ठा करके हम इस काममे लगा सके तो अधिक अच्छा काम हो सकता है और इस विचारसे एक स्थायी कमेटी बनानेका निश्चय किया। सब पक्षोके लोगोको यह विचार पसंद आया।

हरएक संस्थाका आधार मुख्यत. उसका मंत्री होता है। मंत्री ऐसा होना चाहिए जिसे संस्थाके उद्देश्यपर पूरा-पूरा विश्वास हो, साथ-ही-साथ उसमे इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिए अपना अधिकाश समय देनेकी शक्ति और काम करनेकी योग्यता भी हो। मि० एल० डब्ल्यू० रिचमें ये सभी गुण थे। वह दक्षिण अफ्रीकाके ही थे। वहा मेरे दफ्तरमे गुमाश्तेका काम करते थे और इन दिनों लंदनमे बैरिस्टरी पढ रहे थे। वह इंगलैडमे मौजूद थे और यह काम करनेके इच्छुक भी थे। इससे कमेटी (साउथ अफ्रीका ब्रिटिश इंडियन कमेटी) बनानेकी हिम्मत हम कर सके।

विलायतमे, बल्कि सारे पश्चिममे, मेरी दृष्टिसे एक असभ्य रिवाज यह है कि अच्छे-से-अच्छे कामका मुहूर्त्त भोजनके समय रखा जाता है। ब्रिटिश प्रधान मंत्री हर साल ९ नववरको लदनके लार्ड मेयरके सरकारी वासस्थान मैशन हॉउसमे जो भाषण दिया करते है उसमे वह अगले वरसके अपने कार्यक्रमका संकेत करते है और भविष्यके विषयमे अपना निजका अनुमान बताते है और इस कारण यह भाषण सारी दुनियाका ध्यान अपनी ओर खीचता है। लदनके लार्ड मेयरकी ओरसे मंत्रिमंडलके सदस्यो आदिको उसमे भोजनका निमंत्रण दिया जाता है और वहा भी भोजनके बाद शराबकी बोतले खुलती है और मेजबान तथा मेहमानकी स्वास्थ्य-कामनाके लिए सुरापान किया जाता है। जब इस शुभ या अशुभ (सब अपनी-अपनी दृष्टिके अनुसार विशेषण चुनले) कार्यका दौर चल रहा हो उस वक्त भाषण भी दिये जाते हैं। इसमे बादशाहके मंत्रिमडलका 'टोस्ट' (स्वास्थ्य-कामना) भी शामिल

होता है। इसी (टोस्ट) के जवाबमें प्रधान मत्रीका उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण भाषण होता है। और जैसे सार्वजनिक रूपमे वैसे ही निजी तौरपर किसीके साथ खास मशविरा या बातचीत करनी हो तो उसे भोजनका न्यौता देनेका रिवाज है। कभी खाते-खाते तो कभी खाना खतम होनेपर वह विषय छिडता है। हमें भी एक नही, अनेक बार इस रिवाजके सामने नत मस्तक होना पडा था। पर कोई पाठक इसका अर्थ यह न करे कि हममेसे किसीने कभी अभक्ष्यका भक्षण या अपेयका पान किया। इस प्रकार हमने एक दिन दोपहरके भोजनके निमंत्रण भेजे और उसमे अपने सभी मुख्य सहायकोको आमंत्रित किया। लगभग सौ निमंत्रण भेजे गये थे। इस भोजका प्रयोजन सहायकोंके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना और उनसे विदा लेना और साथ ही स्थायी समितिकी स्थापना भी था। उसमे भी प्रथाके अनुसार भोजनके उपरात भाषण हुए और कमेटीकी स्थापना भी हुई। इस आयोजनसे हमारे आन्दोलनकी और अधिक प्रसिद्धि हुई।

इस प्रकार कोई ६ हफ्ते बिताकर हम दक्षिण अफ्रीकाको वापस हुए। मदीरा पहुचनेपर हमे मि० रिचका तार मिला कि लार्ड एल्गिनने घोषणा की है कि मत्रिमंडलने बादशाहसे ट्रांसवालके एशियाटिक ऐक्टको नामजूर करनेकी सिफारिश की है। अब हमारे हर्षका क्या पूछना! मदीरासे केप टाउन पहुचनेमे १४-१५ दिन लगते है। यह वक्त तो हमने बडे चैनसे गुजारा और दूसरे कष्टोके निवारण के लिए शेखचिल्ली-केसे हवाई महल बनाते रहे। पर दैवगति विचित्र है! हमारे ये महल कैसे धराशायी हो गये, इसे हम अगले प्रकरणमे देखेंगे।

पर इस प्रकरणको पूरा करनेके पहले एक-दो पवित्र संस्मरणोको दिये बिना नही रहा जा सकता। मुझे यह तो कह ही देना होगा कि विलायतमें हमने एक क्षण भी

बेकार नही जाने दिया। बहुतसे सरक्यूलर (गश्ती चिट्ठिया) आदि भेजनेका सारा काम एक आदमीके किये नहीं हो सकता था। उसमे मददकी बड़ी जरूरत थी। पैसा खर्च करनेसे बहुत-कुछ मदद मिल सकती है, पर अपने ४० सालके अनुभवसे कह सकता हूं कि यह मदद शुद्ध स्वयंसेवककी सहायता जैसी फलदायिनी नही होती। सौभाग्यवश ऐसी मदद हमे मिल गई। बहुतसे भारतीय युवक जो वहां पढ़ते थे हमारे आसपास बने रहते और उनमेसे अनेक सुवह-शाम, इनाम या नामकी आशा रखे विना हमारी मदद करते। पते लिखना, नकले करना, टिकट चिपकाना, डाकघर जाकर चिट्ठिया आदि छोड़ना—किसी भी कामको उनमेसे किसीने अपनी शानके खिलाफ कहकर करनेसे इन्कार किया हो, यह मुझे याद नही आता। पर इन सवको एक ओर रखदे ऐसी मदद देनेवाला दक्षिण अफ्रीकामे मिला हुआ एक अंग्रेज मित्र था। वह हिंदुस्तानमे रह चुका था। उसका नाम था सिमंड्स। अग्रेजीमे कहावत है कि देवता जिसे प्यार करते है उसे जल्दी अपने पास ले जाते है। इस 'परदु:खभजन' अग्रेजको भी यमदूत भरी जवानीमे उठा ले गये। 'परदु:खभजन' विशेषणके व्यवहारका विशेष कारण है। यह भला भाई जब बवईमे था तब यानी १८९७ मे प्लेग-पीडित भारतीयोंके बीच निर्भय होकर विचरता और उनकी मदद करता था। छूतके रोगियोकी सेवा करते हुए मौतसे तनिक भी नही डरना तो उसके खूनमे भर गया था। जाति या रंगका द्वेष उसे छू तक नही गया था। उसका स्वभाव अतिशय स्वतत्र था। उसका एक सिद्धांत यह था कि सत्य सदा अल्पसंख्यक पक्ष यानी 'माइनारिटी'के साथ ही रहता है। इसी सिद्धांतसे प्रेरित होकर वह जोहान्सवर्गमे मेरी ओर आकृष्ट हुआ और अनेक बार विनोदमे मुझे सुना देता था कि आपका

पक्ष बड़ा हो जाय तो आप पक्का जानिये कि मै हरगिज आपका साथ नही दूगा, क्योकि मै मानता हू कि 'मेजारिटी (बड़े पक्ष) के हाथमे सत्य भी असत्यका रूप ले लेता है'। उसका अध्ययन विस्तृत था। जोहान्सबर्गके एक करोड़पति सर जार्ज फेररका वह विश्वास-भाजन प्राइवेट सेक्रेटरी था। शार्ट हैंड (लघु-लेखन) लिखनेमे तो निष्णात था। जब हम विलायत पहुंचे तो वह अनायास हमसे आ मिला। मुझे उसका पता-ठिकाना भी मालूम नही था। पर हम तो सार्वजनिक लोग थे, इसलिए अखबारकी चर्चाके विषय ठहरे। इससे इस भले अग्रेजने हमे ढूढ निकाला और कहा—"मुझसे जो कुछ सहायता हो सके वह करनेको तैयार हू। मुझे चपरासीका काम सौपिये तो वह भी करूगा और शार्ट हैंडकी आवश्यकता हो तो आप जानते ही है कि मुझसा कुशल स्टेनोग्राफर आपको दूसरा नही मिलनेका।" हमे तो दोनो सहायताए दरकार थी और यह कहनेमे मैं तनिक भी अतिशयोक्ति नही कर रहा हू कि यह अंग्रेज रात-दिन, बिना पैसा लिए, हमारी बेगार करता था। रातके बारह-बारह और एक-एक बजेतक वह सदा टाइपराइटरपर ही बैठा होता। संदेशे ले जाना, डाकखाने जाना, ये काम भी सिमंड्स करता और हसते चेहरेसे। मुझे मालूम था कि उसकी माहवार आमदनी लगभग ४५ पौडके थी; पर यह सारी आय वह मित्रों आदिकी मदद करनेमे खर्च कर डालता। उसकी उम्र उस वक्त कोई तीस बरसकी रही होगी। पर वह अविवाहित था और योही जिंदगी बिता देनेका विचार था। मैंने उससे कुछ स्वीकार करनेके लिए बहुत आग्रह किया, पर उसने ऐसा करनेसे साफ इन्कार कर दिया। उसका उत्तर था—"मैं इस सेवाके बदलेमे कुछ लू तो मै धर्म-भ्रष्ट हो जाऊगा।" मुझे याद है कि आखिरी रातको सामान वगैरह बाधते हमे तीन बज गये। तबतक वह भी जागता रहा।

अगले दिन हमें जहाजपर सवार कराके ही वह हमसे जुदा हुआ। यह वियोग हमारे लिए अति दुखद था। मुझे अनेक अवसरोंपर इसका अनुभव हो चुका है कि परोपकार कुछ गेहुंए रंगवालोंकी बपौती नही है।

सार्वजनिक काम करनेवाले युवकोकी जानकारीके लिए मैं यह भी बता दूं कि शिष्ट-मण्डलके खर्चका हिसाब रखनेका काम हमने इतनी सावधानीसे किया कि जहाजपर सोडावाटर पीना हो तो उसकी जो रसीद मिलती वह भी उतने पैसेके खर्चके सबूतके तौरपर रखली जाती। तारोकी रसीदें भी इसी तरह रखी जाती। ब्यौरेवार हिसाबमें फुटकर खर्चके नामसे एक भी रकम लिखी जानेकी बात मुझे याद नही है। यह मद तो हमारे हिसाबमे थी ही नही। 'याद नहीं' शब्द बढ़ानेका कारण यही है कि कभी शामको हिसाब लिखते वक्त दो-चार पेनी या दो चार शिलिंगका खर्च याद न रहा हो और फुटकरके नामसे लिख दिया गया हो तो नही कह सकता। इसीलिए अपवाद रूपमें 'याद नहीं' शब्दका व्यवहार किया है।

इस जीवनमे एक बात मुझे साफ तौरपर दिखाई दी है। वह यह कि जबसे हम होश सम्हालते है तभीसे ट्रस्टी या जवाबदेह बन जाते हैं। जबतक मा-बापके साथ होते हैं तबतक जो कोई काम या जो पैसा वे सौपते हैं उसका हिसाब हमें उनको देना ही चाहिए। हमारा विश्वास करके वे हमसे हिसाब न मांगें तो इससे हम अपनी जवाबदेहीसे मुक्त नही होते। जब हम स्वतन्त्र होते है तब स्त्री-पुत्र आदिके प्रति जवाबदेह हो जाते हैं। अपनी कमाईके मालिक अकेले हम ही नही है। वे भी उसमें हिस्सेदार है। उनकी खातिर हमें पाई-पाईका हिसाब रखना चाहिए। फिर जब हम सार्वजनिक जीवनमें आते हैं तब तो कहना ही क्या! मैंने देखा है कि स्वयंसेवकोंमे यह माननेकी आदत पड़ जाती है कि मानों अपने

हाथमें रहनेवाले काम या पैसेका हिसाब देना उनका फर्ज नहीं है, क्योंकि वे अविश्वासके पात्र तो हो ही नही सकते। यह घोर अज्ञान ही माना जा सकता है। हिसाब रखनेका विश्वास या अविश्वासके साथ कुछ भी संबंध नही। हिसाब रखना ही स्वतन्त्र धर्म है। उसके बिना हमें अपने कामको खुद ही मैला मानना होगा। और जिस सस्थामे हम स्वयसेवक हो उसका नेता अगर झूठी भलमनसीके डरसे हमसे हिसाब न मांगे तो वह भी दोषभागी है। काम और पैसेका हिसाब रखना जितना तनख्वाह देनेवालेका फर्ज है, स्वयंसेवकका उससे दूना फर्ज है। इसलिए कि उसने अपने कामको ही अपना वेतन मान लिया है। यह बात अति महत्त्वकी है और मैं जानता हूं कि आमतौरसे बहुतेरी संस्थाओमें इसपर जितना चाहिए उतना ध्यान नही दिया जाता। इसीसे उसके लिए मैंने इस प्रकरणमें इतना स्थान देनेका साहस किया है।

: १५ :

वक्र राजनीति अथवा क्षणिक हर्ष

केप टाउनमे उतरते ही और खास तौरसे जोहान्सबर्ग पहुंचनेपर मैंने देखा कि मदीरामें मिले हुए तारकी जो कीमत हमने आंकी थी वह कीमत उसकी नही थी। इसमें भेजनेवाले मि० रिचका दोष नही था। उन्होंने कानूनके नामंजूर होनेके बारेमें जैसा सुना वैसा तार कर दिया। हम ऊपर देख चुके है कि इस वक्त यानी १९०६ मे ट्रांसवाल शाही उपनिवेश था। ऐसे उपनिवेशोंके राजदूत अपने उपनिवेशसे सम्बद्ध विषयोमें उपनिवेश सचिवको आवश्यक सलाह देनेकेलिए इंगलैंड (लंदन) में रहा करते हैं। ट्रांसवालके दूत दक्षिण अफ्रीका-

के प्रसिद्ध वकील सर रिचर्ड सॉलोमन थे। खूनी कानून-को नामंजूर करनेका निश्चय लार्ड एल्गिनने सर रिचर्डके साथ मशविरा करके किया था। १९०७ की पहली जनवरीसे ट्रांसवालको उत्तरदायी शासनका अधिकार मिलने वाला था। अत. लार्ड एल्गिनने सर रिचर्डको यह आश्वासन दिया—"यही कानून ट्रासवालको उत्तरदायी शासन मिलनेके बाद वहाकी धारा सभा पास करे तो बड़ी सरकार उसे नामजूर नही करेगी। पर जबतक ट्रांसवाल शाही उप-निवेश माना जाता है तबतक ऐसे भेदभाववाले कानूनके लिए बडी सरकार सीधी जिम्मेदार समझी जायगी और चूकि साम्राज्य सरकारके विधानमे भेदभाववाली राजनीति-को स्थान नही दिया जाता, इसलिए इस सिद्धांतका सम्मान करनेके लिए फिलहाल तो मुझे बादशाहको यह कानून नामंजूर करनेकी सलाह देनी ही होगी।"

इस प्रकार महज नामके लिए कानून रद हो जाय और साथ ही ट्रासवालके गोरोका काम भी बन जाय तो सर रिचर्डको इसमे कोई एतराज न था। होता क्यों? इस राजनीतिको मैंने 'वक्र' विशेषण लगाया है; पर मैं मानता हू कि इससे अधिक तीखे विशेषणका व्यवहार किया जाय तो भी इस नीतिका संचालन करनेवालोके साथ वस्तुतः कोई अन्याय नही होगा। शाही उपनिवेशके कानूनोके लिए बड़ी सरकार प्रत्यक्षतः जिम्मेदार होती है। उसके विधानमे रंगभेद और जातिभेदके लिए स्थान नही। ये दोनों बाते बहुत सुदर है। यह बात भी समझमे आ सकती है कि बड़ी सरकार उत्तरदायी शासन प्राप्त उपनिवेशोके बनाये हुए कानूनोको एकबारगी रद नही कर सकती; पर उपनिवेशके राज-दूतोके साथ गुप्त मंत्रणा करना, उन्हें पहलेसे साम्राज्यके विधानके विरुद्ध कानूनको नामंजूर न करनेका वचन दे देना,

इसमें क्या उन लोगोंके साथ दगा और अन्याय नहीं है जिनके हक छीने जा रहे हों ? सच पूछिये तो लार्ड एलिगनने पहलेसे वचन देकर ट्रांसवालके गोरोंको भारतीयोंके विरुद्ध अपना आन्दोलन जारी रखनेका बढ़ावा दिया। उन्हें ऐसा करना था तो भारतीय प्रतिनिधियोंको इसे साफ बता देना था। सच तो यह है कि उत्तरदायी शासन भोगनेवाले उपनिवेशोंके कानूनोंके लिए भी बड़ी सरकार जिम्मेदार होती ही है। ब्रिटिश विधानके मूल सिद्धांत स्वराज्य-भोगी उपनिवेशोंको भी मानने ही होते हैं। जैसे, कोई भी उत्तरदायित्व प्राप्त उपनिवेश कानूनन् जायज गुलामीकी प्रथाका पुनरुद्धार नहीं कर सकता। लार्ड एलिगनने अगर खूनी कानूनको अनुचित मानकर नामंजूर किया हो—और ऐसा मानकर ही वह नामंजूर किया जा सकता था—तो उनका स्पष्ट कर्तव्य था कि सर रिचर्ड सॉलोमनको अकेलेमें बुलाकर कह देते कि उत्तरदायी शासन मिलनेके बाद ट्रांसवालकी सरकार ऐसा अन्यायकारी कानून न बनाये और उसका इरादा उसे बनानेका ही हो तो उसे जिम्मेदारी सौंपी जाय या नहीं, इसपर बड़ी सरकारको फिरसे विचार करना होगा। या हिंदुस्तानियोंके हकोंकी पूरी रक्षाकी शर्तपर ही ट्रांसवालको जवाबदेह हुकूमत सौंपनी चाहिए थी। यह करनेके बदले लार्ड एलिगनने ऊपरसे तो हिंदुस्तानियोंकी हिमायत करनेका ढोंग किया, पर भीतरसे उसी वक्त ट्रांसवालकी सरकारकी सच्ची हिमायत की और जिस कानूनको खुद रद किया उसीको फिरसे पास करनेका बढ़ावा दिया। ऐसी वक्र राजनीतिका यह एक ही या पहला उदाहरण नहीं था। ब्रिटिश साम्राज्यके इतिहासका साधारण विद्यार्थी भी ऐसी दूसरी मिसालें याद कर सकता है।

इसलिए जोहान्सबर्गमें हमने एक ही बात सुनी कि लार्ड

एलिन और बड़ी सरकारने हमे धोखा दिया। हमे तो मदीरा-मे जितनी खुशी हुई थी, दक्षिण अफ्रीकामे उतनी ही मायूसी हुई। फिर भी इस कुटिलताका तात्कालिक परिणाम तो यही हुआ कि कौममे और जोश फैला और सब कहने लगे—"अब हमें चिता क्या है? हमे क्या बड़ी सरकारकी सहायताके भरोसे लडना है? हमे तो अपने बलपर और जिसका नाम लेकर हमने प्रतिज्ञा की है उस भगवान्के भरोसे लड़ना है। और हम सच्चे रहे तो टेढ़ी राजनीति भी सीधी हो हीं जायगी।"

ट्रासवालमे उत्तरदायी शासनकी स्थापना हुई। नई उत्तरदायी धारा सभाने जो पहला कानून पास किया वह था बजट और दूसरा कानून यही खूनी कानून (एशियाटिक रेजिस्ट्रेशन ऐक्ट) था। यह कानून ज्यों-का-त्यों उसी रूपमे पास हुआ जिस रूपमे पहले बना और पास हुआ था। उसकी एक दफामे तारीख दी हुई थी। उसे बदलना तो अधिक दिन बीत जानेसे जरूरी ही हो गया था। अतः यह तारीख उसमे बदली गई। २१ मार्च १९०७ की एक ही बैठकमें इस कानूनकी सारी विधिया पूरी करके वह पास कर दिया गया। इस शाब्दिक परिवर्तनका कानूनकी सख्तीके साथ कोई संबंध नही था। वह तो जैसी थी वैसी ही बनी रही। अतः यह कानून रद हुआ था, इस बातको लोग सपनेकी तरह भूल गये। भारतीय जनताने अपनी रीतिके अनुसार आवेदन-पत्र आदि तो भेजे ही, पर इस तूतीकी आवाज उस नक्कारखानेमें कौन सुनता? इस कानूनके १ जुलाई १९०७ से जारी होनेकी घोषणा की गई थी और भारतीयोको ३१ जुलाईके पहले परवानेके लिए दर्खास्त देनेको हुक्म दिया गया था। इतनी मुद्दत रखनेका कारण हिंदुस्तानियोपर कोई मेहरबानी करना नही था। पद्धतिके अनुसार इस कानूनको बड़ी

सरकारकी मंजूरी मिलनी चाहिए थी। इसमे कुछ वक्त लगना ही था। फिर उसके परिशिष्टके अनुसार परचे, परवाने वगैरह तैयार कराने और भिन्न-भिन्न स्थानोंमे परवाने-के दफ्तर (परमिट आफिस) खोलनेमे भी कुछ वक्त लगता। इससे यह पाच-छ महीनेकी मुहलत ट्रासवाल सरकारने अपने ही सुभीतेके लिए दी थी।

: १६ :

अहमद मुहम्मद काछलिया

शिष्ट-मण्डल जब विलायत जा रहा था तब एक अंग्रेज मुसा-फिरने जो दक्षिण अफ्रीकामे रह चुका था, ट्रासवालके कानून और हमारे विलायत जानेका कारण भी हमारे मुहसे सुना। वह तुरंत बोल उठा—"आप कुत्तेका पट्टा (डॉग्स कॉलर) पहननेसे इन्कार करना चाहते है।" इस अंग्रेजने ट्रासवालके परवानेको यह नाम दिया। उसने यह बात पट्टेपर अपना हर्ष और भारतीयोके प्रति तिरस्कार प्रकट करने या अपनी हमदर्दी दिखानेके लिए कही, इसे मै उस वक्त नही समझ सका था और आज इस घटनाका उल्लेख करते समय भी इस बारेमे कोई निश्चय नही कर सकता। किसी भी मनुष्यके कथनका ऐसा अर्थ हमे नही करना चाहिए जिससे उसके साथ अन्याय हो। इस सुनीतिका अनुसरण करते हुए मै यह माने लेता हू कि इस अंग्रेजने अपनी हमदर्दी दिखानेके लिए ऊपरके जैसे, भावना-की तसवीर खीच देनेवाले शब्द कहे। एक ओर ट्रास-वाल सरकार हमे यह पट्टा पहनानेकी तैयारी कर रही थी, दूसरी ओर भारतीय जनता इसकी तैयारी कर रही थी कि यह पट्टा न पहननेके अपने निश्चयपर वह किस तरह

कायम रहे और ट्रांसवालकी सरकारकी कुनीतिके विरोधमे किस तरह युद्ध किया जाय । विलायत और हिंदुस्तानके अपने सहायकोंको पत्र लिखने और चालू परिस्थितिसे उनको परिचित कराते रहनेका काम तो चल ही रहा था। पर सत्याग्रहकी लडाई बाह्योपचारपर बहुत कम अवलंबित होती है। भीतरी उपचार ही सत्याग्रहमे अकसीर उपचार होता है। अत. कौमके सभी अंग ताजे और चुस्त रहे, इसके यत्नमे ही नेताओंका समय जा रहा था।

कौमके सामने एक महत्त्वका प्रश्न उपस्थित हुआ . सत्याग्रहका काम किस मडलकी मारफत लिया जाय ? ट्रांसवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशनमे तो बहुतसे सभासद थे। उसकी स्थापनाके समय सत्याग्रहका जन्म भी नहीं हुआ था। उस संस्थाको अनेक कानूनोका विरोध करना पडा था और आज भी करना था। कानूनोका विरोध करनेके अतिरिक्त उसे दूसरे राजनैतिक, सामाजिक आदि काम भी करने होते थे। फिर इस संस्थाके सभी सदस्योने प्रतिज्ञा की थी, यह भी नही कहा जा सकता था। इसके साथ-साथ सत्याग्रहमे सम्मिलित होनेसे उस संस्थाको जो बाहरकी जोखिमें उठानी पडती उनका विचार करना भी जरूरी था। सत्याग्रहकी लडाईको ट्रांसवालकी सरकार राजद्रोह मान ले और ऐसा मानकर यह युद्ध चलानेवाली संस्थाओंको गैर-कानूनी घोषित कर दे तो ? इस सस्थाके जो सदस्य सत्याग्रही नही होगे उनकी स्थिति क्या होगी ? सत्याग्रहके पूर्व जिसने पैसा दिया हो उनके पैसेका क्या होगा ? ये बाते भी सोचनेकी थी। अंतमे सत्याग्रहियोंका यह दृढ़ निश्चय था कि जो लोग अश्रद्धा, अशक्ति या दूसरे किसी भी कारणसे सत्याग्रहमें शामिल न हों उनके प्रति द्वेष न रखा जाय, इतना ही नही, उनके साथ बर्ताव करनेमे आजके स्नेह-भावमें कोई अंतर

न आने दिया जाय और सत्याग्रहको छोड़कर और आन्दोलनोंमें उनके साथ-साथ काम किया जाय।

इन विचारोसे अंतमे सारी कौमने यही निश्चय किया कि सत्याग्रहकी लड़ाई किसी वर्तमान सस्थाके जरिये न चलाई जाय। दूसरी संस्थाएं जितनी सहायता दे सकती हो दें और सत्याग्रहको छोडकर और जो उपाय खूनी कानूनके विरोधमे कर सकती हों करे। अतः 'पैसिव रेजिस्टेंस एसोसियेशन' अथवा 'सत्याग्रह-मंडल' नामकी नई संस्था सत्याग्रहियोंने स्थापित की। अंग्रेजी नामसे पाठक यह समझ लेंगे कि जिस वक्त इस नये मंडलकी स्थापना हुई उस वक्ततक सत्याग्रह नामकी खोज नहीं हो सकी थी। ज्यो-ज्यो समय वीतता गया त्यों-त्यों हमें यह मालूम होता गया कि अलग सस्था स्थापित करनेसे जनताका हर तरह लाभ ही हुआ और अगर वैसा न हुआ होता तो सत्याग्रहके आन्दोलनको शायद हानि ही हुई होती। वहुतसे लोग इस नई संस्थाके सदस्य हुए और जनताने पैसा भी खुले हाथो दिया।

मेरे अनुभवने मुझे यह बताया है कि कोई भी आन्दोलन पैसेकी कमीसे टूटता, अटकता या निस्तेज नही होता। इसके मानी यह नही है कि कोई भी लौकिक आन्दोलन विना पैसेके चल सकता है। पर इसका यह अर्थ अवश्य है कि जहा सच्चे संचालक है वहा पैसा अपने आप चला आता है। इसके विपरीत मुझे यह भी अनुभव हुआ है कि जिस आन्दोलनको पैसेका अतिरेक हो जाता है उसकी उसी समयसे अवनति आरम्भ हो जाती है। इससे कोई सार्वजनिक सस्था पूजी इकट्ठी करके उसके व्याजसे अपना कारवार चलाये इसे पाप कहनेकी हिम्मत तो नही होती, इससे इतना ही कहता हू कि यह अयोग्य है। सार्वजनिक संस्थाकी पूजी तो जन-समुदाय ही है। जवतक वह चाहता है तभी तक उसे जीवित

रहना चाहिए। पूंजी इकट्ठी करके व्याजसे काम चलानेवाली संस्था सार्वजनिक नहीं रहती, बल्कि स्वतंत्र और स्वच्छंद हो जाती है। सार्वजनिक टीकाके अंकुशके वश नहीं रहती। व्याजपर चलनेवाली अनेक धार्मिक और लौकिक संस्थाओंमें कितनी बुराइयां घुस गई है, इसे बतानेका यह स्थान नहीं। यह लगभग स्वयंसिद्ध बात है।

अब हम फिर अपने मूल विषयपर आएं। बालकी खाल निकालना और नुक्ताचीनी करना कुछ वकीलों और अंग्रेजी पढ़े हुए लोगोंका ही ठेका नहीं है। मैंने देखा कि दक्षिण अफ्रीकाके अपढ़ हिंदुस्तानी भी बहुत ही बारीक दलीलें कर सकते हैं। कितनोंने यह दलील निकाली कि पहला खूनी कानून रद्द हो गया है, इसलिए नाटकशालामें की हुई प्रतिज्ञा पूरी हो गई। जो लोग ढीले पड़ रहे थे उन्होंने इस दलीलकी छायामें आश्रय लिया। इस दलीलमें कुछ दम न था, यह तो नहीं कहा जा सकता। फिर भी जिन लोगोंने उस कानूनका विरोध कानूनकी हैसियतसे नहीं, बल्कि उसके भीतर निहित तत्वके कारण किया था उनपर तो इस नुक्ताचीनीका कोई असर नहीं हो सकता था। पर यह होते हुए भी सलामतीकी खातिर, जन-जागरण बढ़ानेके लिए और लोगोंके भीतर जो कमजोरी आ गई है उसकी गहराई कितनी है यह देख लेनेके लिए लोगोंसे फिरसे प्रतिज्ञा कराना जरूरी समझा गया। इसलिए जगह-जगह सभाएं करके लोगोंको परिस्थिति समझाई गई और उनसे फिरसे प्रतिज्ञाएं भी कराई गईं। लोगोंका जोश कुछ ठंडा हो गया हो, यह नहीं दिखाई दिया।

इस बीच जुलाईके महीनेका अंत निकट आता जा रहा था। उसकी आखिरी तारीखको हमने ट्रांसवालकी राजधानी प्रिटोरियामें विराट् सभा करनेका निश्चय किया था। दूसरे शहरोंसे भी प्रतिनिधि बुलाये गये थे। सभा

प्रिटोरियाकी मस्जिदके मैदानमे हुई। सत्याग्रह आरभ होनेके वादसे लोग सभाओमें इतनी वडी तादादमे आने लगे थे कि किसी मकानमे सभा करना नामुमकिन हो गया था। सारे ट्रासवालमें हिंदुस्तानियोकी आवादी १३ हजारसे अधिक नही मानी जाती थी, जिसमेसे १० हजारसे कुछ ऊपर जोहान्सवर्ग और प्रिटोरियामें ही वसते थे। इस तादादमेसे पाच-छः हजार लोग सभामें उपस्थित हो, यह संख्या दुनियाके किसी भी भागमे वहुत वड़ी और अति सतोषजनक मानी जा सकती है। सार्वजनिक सत्याग्रहकी लडाई और किसी शर्तपर लडी भी नही जा सकती। जहा युद्धका आधार केवल अपना वल हो वहा उस विषयकी सार्वजनिक शिक्षा नहीं दी गई हो तो लडाई चल ही नही सकती। इससे यह उपस्थिति हम कार्यकर्ताओके लिए कोई अचंभेकी चीज नही थी। हमने शुरूसे ही निश्चय कर लिया था कि अपने आम जलसे खुले मैदानमे ही करेंगे। इससे हमारा खर्च कुछ नही होता था और जगहकी तगीके कारण एक भी आदमीको वापस नही जाना पडता था। यही यह वात भी लिख देना चाहिए कि ये सारी सभाएं अधिकाशमें वहुत शात होती। आनेवाले सारी वातोंको वड़े ध्यानसे सुनते। कोई वहुत दूरपर खड़ा होनेके कारण सुन न सकता तो वक्तासे ऊंची आवाजमे वोलनेका अनुरोध करता। पाठकोंको यह वतानेकी जरूरत नहीं होनी चाहिए कि इन सभाओमे कुर्सियो वगैरहका इंतजाम विलकुल ही न होता। मच इतना ही वडा वनाया जाता कि केवल सभापति, वक्ता और सभापतिके अगल-वगल दो-चार आदमी और वैठ ले। उसके ऊपर एक छोटीसी मेज और दो-चार कुर्सिया-तिपाइया रख दी जाती।

प्रिटोरियाकी इस सभाके सभापति व्रिटिश इडियन एसोसियेशनके कार्यकारी अध्यक्ष यूसुफ इस्माइल मिया थे। खूनी कानूनके अनुसार परवाने निकालनेका वक्त

नजदीक आता जा रहा था। इससे जैसे हिंदुस्तानियोमें गहरा जोश होते हुए भी वे चितातुर थे वैसे ही जनरल बोथा और जनरल स्मट्स भी, उनकी सरकारके पास अमोघ बल होते हुए भी, चितातुर थे। एक सारी कौमको ताकतसे काम लेकर झुकाना किसीको रुच तो सकता ही नही। अतः जनरल बोथाने मि० हॉस्किनको इस सभामे हमें समझानेके लिए भेजा। मि० हॉस्किनका परिचय मैं ७ वें प्रकरणमे करा चुका हूं। सभाने उनका स्वागत किया। अपने भाषणमे उन्होंने कहा—"आप जानते हैं कि मैं आप लोगोका मित्र हूं। मेरी सहानुभूति आपके साथ है, यह कहनेकी जरूरत नहीं होनी चाहिए। मेरे बसकी बात हो तो मैं आपकी मांग जरूर मंजूर करा दूं; पर यहांके सामान्य गोरोके विरोधके विषयमे मुझे आपको कुछ बताना तो है ही नही। आज मै आपके पास जनरल बोथाका भेजा हुआ आया हूं। उन्होंने इस सभामे आकर आपको उनका सदेसा सुना देनेको कहा है। भारतीय जनताके लिए उनके दिलमें इज्जत है। उसकी भावनाओंको वह समझते हैं। पर वह कहते हैं—'मै लाचार हूं। ट्रांसवालके सारे यूरोपियन ऐसा कानून मांगते है। मै खुद भी इस कानूनकी जरूरत देखता हूं। ट्रांसवाल सरकारकी शक्तिको भारतीय जनता जानती है। इस कानूनको बड़ी सरकारकी सम्मति प्राप्त है। भारतीय जनताको जितना करना चाहिए था उतना उसने किया और अपने सम्मानकी रक्षा कर ली। पर जब उसका विरोध सफल नही हुआ और कानून पास हो गया तब उसको चाहिए कि इस कानूनको शिरोधार्य कर अपनी वफादारी और शान्ति-प्रियताका सबूत दे। इस कानूनके अनुसार जो नियम बने है उनमे कोई छोटा-मोटा हेर-फेर कराना हो तो इस विषयमें आपका कहना जनरल स्मट्स ध्यानपूर्वक

सुनेंगे।'" यह सदेसा सुनाकर मि० हॉस्किनने कहा—"मैं खुद भी आपको यह सलाह देता हू कि जनरल बोथाके सदेसेको आप मान ले। मैं जानता हू कि ट्रासवालकी सरकार इस कानूनके बारेमे दृढ है। उसका विरोध करना दीवारसे सिर टकराना जैसा है। मैं चाहता हूं कि आपकी कौम विरोध करके बरबाद न हो या बेकार कष्ट न भोगे।" मैने इस भाषणके शब्द-शब्दका उलथा जनताको सुना दिया। खुद अपनी ओरसे भी चेतावनी दी। मि० हॉस्किन तालियोकी आवाजके बीच विदा हुए।

अब भारतीयोंके भाषण शुरू हुए। इस प्रकरणके और सच पूछिये तो इस इतिहासके, नायकका परिचय मुझे अभी कराना बाकी है। जो लोग बोलनेको खड़े हुए उनमें स्वर्गीय अहमद मुहम्मद काछलिया भी थे। मैं तो उन्हें एक मवक्किल और दुभाषियेके रूपमे ही जानता था। वह अबतक सार्वजनिक कामोमे आगे बढ़कर हिस्सा नही लेते थे। उनका अंग्रेजीका ज्ञान कामचलाऊ था। पर अनुभवसे उसको इतना बढ़ा लिया था कि अपने दोस्तोको अग्रेज वकीलोके पास ले जाते तो खुद ही दुभाषियेका काम करते। दुभाषियेका काम कुछ उनका पेशा नहीं था। यह काम तो वह मित्ररूपमें ही करते थे। धधा पहले कपडेकी फेरीका करते थे, फिर अपने भाईके साझेमे छोटे पैमानेपर व्यापार करने लगे। वह सूरती मेमन थे। उनका जन्म सूरत जिलेमे हुआ था और सूरती मुसलमानोमे उनकी अच्छी इज्जत थी। उनका गुजरातीका ज्ञान भी साधारण ही था और अनुभवसे उसे भी काफी बढा लिया था। पर उनकी बुद्धि इतनी तीक्ष्ण थी कि चाहे जो विषय हो उसे बहुत आसानीसे समझ लेते थे। मुकदमोकी गुत्थियां इस तरह सुलझा लेते थे कि अकसर मैं देखकर दंग रह जाता। वकीलोके साथ कानूनकी

बहस करते भी नही हिचकते थे और अकसर उनकी दलीलें वकीलोंके लिए भी विचारणीय होतीं।

बहादुरी और एकनिष्ठामें उनसे बढ़ जानेवाला आदमी न मुझे दक्षिण अफ्रीकामें दिखाई दिया और न हिंदुस्तानमें। कौमके लिए उन्होंने अपना सर्वस्व होम दिया था। जितनी बार उनसे मेरा सम्पर्क हुआ, मैंने उन्हें एक बातवाला पाया। खुद पक्के मुसलमान थे। सूरतकी मेमन मस्जिदके मुतवल्लियों-मेंसे भी थे। पर इसके साथ-साथ हिंदू-मुसलमान दोनोंको एक निगाहसे देखते थे। मुझे एक भी ऐसा मौका याद नही जब उन्होंने धर्मान्धताके भावसे और अनुचित रीतिसे हिंदूके मुकाबिले मुसलमानकी तरफदारी की हो। वह नितांत निर्भय और पक्षपात-रहित थे। इसलिए जब जरूरी मालूम होता तब हिंदू-मुसलमान दोनोंको उनके दोष बतानेमें तनिक भी संकोच न करते। उनकी सरलता और निरभिमानता अनुकरण करने योग्य थी। उनके साथ बरसोंके गाढ़ परि-चयके बाद बनी हुई मेरी यह पक्की राय है कि स्वर्गीय अहमद मुहम्मद काछलिया जैसा मनुष्य कौमको मिलना मुश्किल है।

प्रिटोरियाकी सभामें बोलनेवालोंमें यह नर-रत्न भी था। उन्होंने बहुत ही छोटा भाषण दिया। वह बोले—"इस खूनी कानूनको हर हिंदुस्तानी जानता है। उसका अर्थ हम सभीको मालूम है। मि० हॉस्किनका भाषण मैंने ध्यान-पूर्वक सुना है। आपने भी सुना है। मुझपर तो उसका एक ही असर हुआ है कि अपनी प्रतिज्ञापर मैं और पक्का हो गया हूं। ट्रांसवालकी सरकारका बल हम जानते है। पर इस खूनी कानूनके डरसे बड़ा डर वह हमें कौन-सा दिखा सकती है? वह हमें जेल भेजेगी, हमारा माल नीलाम कर देगी, हमें देशसे निकाल देगी, फांसीपर चढा देगी। ये सारी बातें सहन हो सकती है, पर यह कानून तो

सहन नही होगा।" मै देख रहा था कि ये वाक्य बोलते हुए अहमद मुहम्मद काछलिया बड़े उत्तेजित होते जा रहे थे। उनका चेहरा सुर्ख हो गया था, गर्दन और माथेकी रगें खूनके जोरसे दौरा करनेके कारण उभर आई थीं। शरीर काप रहा था। अपने दाहिने हाथकी उंगलिया गर्दनपर फेरते हुए वह गरज उठे—"मै खुदाकी कसम खाकर कहता हू कि मैं कत्ल हो जाऊंगा, पर इस कानूनके सामने सिर न झुकाऊंगा। और मै चाहता हूं कि यह सभा भी यही निश्चय करें।" यह कहकर वह बैठ गये। उन्होंने जब गर्दनपर उंगलिया फेरी तो मचपर बैठे हुए कुछ लोगोंके चेहरोपर मुस्कराहट आगई। जहांतक मुझे याद है, मैंने भी उनका साथ दिया। सेठ काछलियाने अपने शब्दोमे जितना बल भरा था उतना वह अपने कामोमें दिखा सकेंगे, इस विषयमे मेरे मनमें थोड़ी शंका थी। जब-जब मै इस शकाकी बात सोचता हू तब-तब और यहा इस बातका उल्लेख करते हुए भी मै लज्जित हो रहा हू। इस महान सग्राममे जिन बहुतोने अपनी प्रतिज्ञाका अक्षरशः पालन किया उनमे सेठ काछलिया सदा आगे रहे। उनका रग बदलता हुआ मैने कभी देखा ही नही।

सभाने तो इस भाषणका तालियोकी गडगडाहटसे स्वागत किया। उस वक्त मै उनको जितना जानता था उसकी बनिस्बत और सभासद कही ज्यादा जानते थे, क्योकि उनमेसे अधिकाशको तो इस गुदडीके लालका निजी परिचय था। वे जानते थे कि काछलियाको जो करना होता है वही कहते हैं और जो कहते है वही करते है। जोशीले भाषण और भी कई हुए। पर काछलिया सेठके भाषणको उल्लेखके लिए इस कारण चुना है कि यह भाषण उनकी भावी कार्यावलीकी भविष्य-वाणी सिद्ध हुआ। जोशीले भाषण करनेवाले सभी नही टिक सके। इस पुरुषसिहकी मृत्यु अपने देश-भाइयोंकी सेवा करते हुए

ही १९१८ मे अर्थात् युद्ध समाप्तिके चार साल बाद हुई।

इनके एक संस्मरणको और कही स्थान मिलना सभव नही। इसलिए उसे भी यही दिये देता हूं। पाठक टाल्स्टाय फार्मकी बात आगे चलकर पढ़ेगे। उसमे सत्याग्रहियोंके कुटुब बसते थे। सेठ काछलियाने अपने बेटेको भी शिक्षा प्राप्तिके लिए इस फार्ममे भेजा था, केवल इस दृष्टिसे कि दूसरोके लिए उदाहरण उपस्थित करें और अपने बेटेको भी सरल जीवनका अभ्यासी और जनताका सेवक बनाएं। और कह सकते है कि इसको देखकर ही दूसरे मुसलमान लडकोको भी उनके मा-बापने इस फार्ममे भेजा। बालक काछलियाका नाम अली था। उसकी उम्र उस वक्त १०-१२ सालकी होगी। वह नम्र, चचल, सरल और सत्यवादी बालक था। काछलिया सेठके पहले, पर लडाईके बाद, फरिश्ते उसे भी खुदाके दरबारमे उठा लाये। मै मानता हू कि वह जिदा रहता तो पिताकी कीर्तिको अवश्य चार चांद लगाता।

: १७ :

पहली फूट

१९०७की पहली जुलाई आई। परवाना जारी करनेके दफ्तर (परमिट आफिस) खुले। कौमका हुक्म था कि हरएक दफ्तरकी खुलेतौरपर पिकेटिंग की जाय, यानी दफ्तरोंको जानेवाले रास्तोपर स्वयसेवक रखे जाएं और वे दफ्तरमे जानेवालोको सावधान करें। हरएक स्वयंसेवकको एक खास बिल्ला दिया गया था और हरएकको खासतौरसे यह समझा दिया गया था कि परवाना लेनेवाले किसी भी

हिंदुस्तानीके साथ विनय-विरुद्ध व्यवहार न करे। उनका नाम पूछे, पर वह न वताएं तो बलात्कार या अविनय न करे। कानूनको मान लेनेसे होनेवाली हानियोंकी जो सूची छपा रखी गई थी उसे एशियाई दफ्तरमें जानेवाले हर हिंदुस्तानी-को दे दे और उसमें क्या लिखा है यह समझा दें। पुलिसके साथ भी विनयका व्यवहार करे। वह गाली दे, मारे तो शान्तिसे सह लें। मार वर्दाश्त न हो तो वहासे हट जाय। पुलिस पकड़े तो खुशीसे गिरफ्तार हो जायं। जोहान्सवर्गमे ऐसी कोई बात हो तो मुझको ही खबर दे। और कही हो तो उन स्थानोमे नियुक्त मन्त्रियोको खबर दे और उनकी सलाहके अनुसार काम करे। स्वयसेवकोकी हरएक टुकड़ीका एक मुखिया या नायक था। उसकी आज्ञाका पालन करना दूसरे स्वयसेवकों (पहरेदारो) का फर्ज था।

भारतीय जनताके लिए इस प्रकारका यह पहला ही अनुभव था। १२ वरससे ऊपरकी उम्रवाले सव लोग 'पिकेट' या पहरेदारका काम करनेके लिए चुन लिये गये थे। इससे १२ से १८ वरस तकके नवयुवक भी वडी सख्यामे स्वयंसेवक वना लिए गये थे; पर स्थानीय कार्यकर्ता जिसे न जानते हों ऐसा कोई भी व्यक्ति स्वीकार नही किया जाता था। इतनी सावधानीके अतिरिक्त हर सभामे दूसरे तौरपर लोगोको जता दिया गया था कि नुकसानके डरसे या और किसी कारणसे जो कोई नया परवाना निकलवाना चाहे, नेता उसके साथ एक स्वयंसेवक कर देगा जो साथ जाकर उसे एशियाटिक दफ्तरमे पहुचा देगा और काम हो जानेपर उसे फिर स्वयसेवकोके घरके वाहर पहुचा आयेगा। वहुतोने इस सुरक्षाके प्रवंधका लाभ भी उठाया। स्वयंसेवकोने हर जगह वड़े उत्साहसे काम किया। वे सदा अपने काममें मुस्तैद और चौकन्ने रहते। मोटे हिसावसे यह कह सकते

है कि पुलिसने उन्हे बहुत तंग नही किया। कभी-कभी करती तो स्वयंसेवक उसे सह लेते।

स्वयसेवकोंने इस काममे हास्य रसका भी मिश्रण किया था जिसमे कभी-कभी पुलिस भी शामिल होती। अपना वक्त आनंदमे बितानेके लिए वे अनेक चुटकुले ढूढ निकालते। एक बार रास्ता रोकनेके इंतजामपर वे राहदारीके कानूनके अदर गिरफ्तार कर लिये गये। यहा सत्याग्रहमे असहयोग न था। इसलिए अदालतमे बचाव न करनेका नियम नहीं था, यद्यपि यह सामान्य नियम था कि जनताका पैसा खर्च करके वकील रखकर बचाव नही कराया जायगा। इन स्वयसेवकोको अदालतने निरपराध कहकर छोड़ दिया। इससे उनका उत्साह और बढ़ा।

इस प्रकार जो हिंदुस्तानी परवाना लेना चाहते थे यद्यपि उनपर प्रकटमे स्वयंसेवकोकी ओरसे कोई असभ्य व्यवहार या जोर-जबर्दस्ती नही होती थी, फिर भी मुझे यह तो स्वीकार करना ही होगा कि लड़ाईके सिलसिलेमे एक ऐसा भी दल खड़ा हो गया था जिसका काम बिना स्वयंसेवक बने छिपे तौरपर परवाना लेनेवालोको मारपीटकी धमकी देना या दूसरे तौरपर नुकसान पहुंचाना था। यह दुःखद बात थी। ज्योही इसकी खबर मिली, इसे रोकनेके लिए खूब कड़े उपाय किये गये। इसके फलस्वरूप धमकियां देना बंद-सा हो गया, पर उसका जड़-मूलसे नाश नहीं हुआ। धमकियोका असर रह ही गया और मै यह भी देख सका कि उतने अंशमे लड़ाईको नुकसान पहुंचा। जिन्हें डर लग रहा था उन्होंने तुरंत सरकारी सरक्षण ढूढ़ा और वह उन्हे मिला। यों कौममें विषका प्रवेश हुआ और जो कमजोर थे वे और भी कमजोर हो गये। इससे विषको पोषण मिला, क्योकि दुर्बलताका स्वभाव बदला लेनेका होता ही है।

इन धमकियोका असर बहुत ही थोडा हुआ, पर लोकमत और स्वयसेवकोकी उपस्थितिसे परवाना लेनेवालोके नाम जनतापर प्रकट होगे, इन दोनो बातोंका असर बहुत गहरा हुआ। मै एक भी हिंदुस्तानीको नही जानता जो यह मानता हो कि खूनी कानूनके सामने सिर झुका देना अच्छा है। जो परवाने लेने गये वे महज इसलिए गये कि कष्ट सहने या हानि उठानेका दम उनमे नही था। इसीसे वे जाते हुए शरमाये भी।

एक ओर लोकलाज और दूसरी ओर अपने व्यापारको नुकसान पहुंचनेका डर इस दुहरी कठिनाईसे निकलनेका रास्ता कुछ मुखिया हिंदुस्तानियोने ढूढ निकाला। एशियाटिक दफ्तरके साथ बातचीत कर उन्होने यह प्रबंध किया कि दफ्तरका कोई अहलकार किसी निजी मकानमे और वह भी रातमे नौ-दस बजेके बाद जाकर उन्हे परवाने दे दे। उन्होने सोचा कि इस प्रबधसे कुछ वक्ततक तो उनके खूनी कानूनके सामने घुटने टेक देनेकी किसीको खबर ही नही होगी, और चूकि वे नेता थे, इसलिए उनको देखकर दूसरे भी उस कानूनको मान लेगे। इससे और कुछ न हो तो लज्जाका वोझ तो कुछ हलका हो ही जायगा। पीछे बात लोगोपर प्रकट हो गई तो उसकी चिता नही।

पर स्वयसेवकोकी चौकसी इतनी कड़ी थी कि कौमको पल-पलकी खबर मिला करती थी। एशियाटिक दफ्तरमे भी ऐसा कोई होगा ही जो सत्याग्रहियोको इस तरहकी सूचनाएं देता रहा हो। फिर कुछ ऐसे लोग भी थे जो खुद तो कमजोर थे, पर नेताओका खूनी कानूनके सामने सिर झुका देना बर्दाश्त नही कर सकते थे और जो इस सद्भावसे सत्याग्रहियोको खबर दे दिया करते थे कि वे दृढ रहे तो हम भी रह सकेगे। यो एकवार इस चौकन्नेपनकी बदौलत कौमको

खबर मिली कि अमुक रातको अमुक दुकानमे फलां-फला आदमी परवाना लेनेवाले हैं। इससे कौमने पहले तो यह इरादा रखनेवालोंको समझानेका यत्न किया, फिर उस दुकानपर पहरा भी बैठवा दिया। पर मनुष्य अपनी कमजोरी-को कबतक दबा सकता है? रातके दस-ग्यारह बजे कुछ मुखियोने इस तरह परवाने लिये और एक सुरमें बजनेवाली बासरीमे विसंवादी स्वर बज उठा। दूसरे ही दिन इनके नाम भी कौमने प्रकाशित कर दिये। पर शर्मकी भी एक हद होती है! स्वार्थ जब सामने आकर खड़ा होता है तब लाज-संकोच काम नही देता और मनुष्य सत्पथसे भ्रष्ट हो ही जाता है। इस पहली फूटके फलस्वरूप धीरे-धीरे कोई पाच सौ आदमियोने परवाने ले लिये। कुछ दिनोंतक परवाने देनेका काम निजी मकानोमे ही होता रहा, पर ज्यो-ज्यो लाजका बल घटता गया त्यों-त्यो इन पाच सौ आदमियोंमे कितने ही खुले आम भी अपने नाम दर्ज करानेके लिए एशिया-टिक दफ्तरमे जाने लगे।

: १८ :

पहला सत्याग्रही कैदी

अथक प्रयत्न करनेपर भी जब एशियाटिक दफ्तरको ५०० से अधिक आदमी नाम दर्ज करानेवाले नही मिल सके तब उस महकमेके अफसरोने निश्चय किया कि अब हमे किसी-न-किसीको गिरफ्तार करना चाहिए। पाठक जर्मिस्टन नगरका नाम जानते है। वहा बहुतसे हिंदुस्तानी बसते थे। उनमे पडित रामसुदर नामका एक आदमी था। वह देखनेमें बहादुर आदमी-सा लगता था और वाचाल था।

थोडे-बहुत श्लोक भी याद थे। उत्तर भारतका रहनेवाला था, इसलिए रामायणके कुछ दोहे-चौपाइया तो उसे याद होने ही चाहिए। वह पडित कहलाता था, इससे लोगोमें उसकी प्रतिष्ठा भी थी। उसने जगह-जगह भाषण दिये। अपने भाषणोमें वह खूब जोश उडेल सकता था। अत वहाके कुछ विघ्नसतोषी भारतीयोने एशियाटिक दफ्तरको सुझाया कि रामसुदर पडितको गिरफ्तार करलें तो जर्मिस्टनके बहुतसे हिदुस्तानी परवाने ले लेंगे। उस विभागके अधिकारी रामसुदर पडितको पकडनेके लिए इस लोभके वश हुए बिना नही रह सके। रामसुदर पडित गिरफ्तार कर लिया गया। इस तरहका यह पहला ही मुकदमा था। इसलिए सरकार और भारतीय जनतामे भी इससे गहरी हलचल मची। जिस रामसुदर पंडितको अबतक केवल जर्मिस्टन ही जानता था, उसको क्षणभरमे सारा दक्षिण अफ्रीका जानने लगा। जैसे किसी महान् पुरुषपर मुकदमा चल रहा हो और वह सबकी निगाह अपनी ओर खीच ले वैसे ही सबकी आखे राम-सुदर पडितपर लग गईं। शाति-रक्षाके लिए किसी प्रकारके प्रबधकी आवश्यकता सरकारको नही थी, फिर भी उसने वैसा बदोवस्त भी कर लिया। अदालतमे भी यह मानकर राम-सुदरकी इज्जत की गई कि वह सामान्य अपराधी नही, बल्कि हिदुस्तानी कौमका एक प्रतिनिधि है। अदालतका कमरा उत्सुक भारतीय दर्शकोसे भर गया था। राम-सुदरको एक महीनेकी सादी कैदकी सजा मिली। वह जोहान्सबर्गकी जेलमें रखा गया। उसके लिए यूरोपियन वार्डमे अलग कोठरी दी गई। उससे मिलने-जुलनेमे तनिक भी कठिनाई नही होती थी। बाहरसे खाना भेजनेकी इजाजत थी और भारतीय जनता नित्य उसके लिए सुदर पकवान बनाकर भेजा करती। वह जिस चीजकी इच्छा करता वह

हाजिर कर दी जाती। जनताने उसका जेल-दिवस बड़ी धूम-धामसे मनाया। कोई हताश नही हुआ, बल्कि लोगोंका उत्साह और बढा। जेल जानेको सैकड़ों तैयार थे। एशियाटिक विभागवालोकी आशा फलीभूत नही हुई। जर्मिस्टनके भारतीय भी परवाना लेने नही गये। हिंदुस्तानी कौम ही नफेमे रही। महीना पूरा हुआ। रामसुदर छूटा और बाजे-गाजेके साथ जुलूस बनाकर उसको सभाके लिए नियत स्थानपर ले गये। वहां उत्साह बढ़ानेवाले भाषण हुए। लोगोने फूल-मालाओसे रामसुन्दरको ढक दिया। स्वयंसेवकोंने उसके सम्मानमे दावत दी और सैकड़ो भारतीय यह सोचकर राम-सुदर पडितसे मीठी ईर्ष्या करने लगे कि हम भी जेल गये होते तो कैसा अच्छा होता!

पर रामसुदर खोटा सिक्का निकला। उसका बल झूठी सतीका-सा था। एक महीनेके पहले तो जेलसे निकला ही नही जा सकता था, क्योकि उसकी गिरफ्तारी अचानक हुई थी। जेलमे तो उसने वह अमीरी की जो बाहर कभी मुयस्सर नही हुई थी। फिर भी स्वच्छद विचरनेवाला और व्यसनी मनुष्य जेलके एकात-वास और अनेक प्रकारके भोजन मिलते रहनेपर भी वहां रखे जानेवाले संयमको सहन नही कर सकता। यही बात रामसुदर पंडितकी हुई। भारतीय जनता और जेलके अमले उसकी इतनी खुशामद बजा रहे थे, फिर भी जेल उसको कड़वी लगी और उसने ट्रांसवाल और युद्ध दोनोसे आखिरी सलामकर अपना रास्ता लिया। हर कौममे कुछ चतुर दाव-पेंच जाननेवाले लोग तो होते ही है। यही बात हरएक संग्रामके विषयमे भी कही जा सकती है। लोग रामसुदरके रग-रेशेसे वाकिफ थे। पर उससे भी कौमका कोई अर्थ सध सकता है, यह सोचकर उन्होंने उसका गुप्त इतिहास, उसकी पोल खुलनेसे पहले, मुझपर

प्रकट नही होने दिया। पीछे मुझे मालूम हुआ कि रामसुदर गिरमिटिया था जो अपना गिरमिट पूरा किये बिना भाग आया था। उसके गिरमिटिया होनेकी बात मैं यहां घृणासे नही लिख रहा हूं। गिरमिटिया होना कोई ऐब नही। पाठक अंतमे देखेगे कि जिनसे इस युद्धको अतिशय शोभा मिली वे गिरमिटिए ही थे। लडाई जीतनेमे भी उनका हिस्सा बड़े-से-बड़ा था। हा, गिरमिटसे भाग निकलना अवश्य दोष था।

पर रामसुदरका सारा इतिहास मैंने उसके दोष दिखानेके लिए नही लिखा है, बल्कि उसमे जो तत्त्व छिपा है उसे प्रकट करनेके लिए ही उसका समावेश किया है। हरएक शुद्ध संग्रामके नेताओंका फर्ज होता है कि केवल शुद्ध जनोंको ही लड़ाईमे ले; पर कितनी ही सावधानी क्यो न रखी जाय, अशुद्ध मनुष्योका प्रवेश रोका नही जा सकता। फिर भी नेता निडर और सच्चे हों तो अशुद्ध जनोके अनजानमे घुस आनेसे अंतमे लडाईको नुकसान नही पहुचता। रामसुदर पंडितका सच्चा रूप प्रकट हो गया तो उसकी कोई कीमत नही रही। वह बेचारा पडित न रहकर केवल रामसुदर रह गया। कौम उसको भूल गई, पर युद्धको तो उससे बल ही मिला। युद्धके निमित्त भोगी हुई कैद बट्टेखाते नहीं गई। उसके जेल जानेसे जो शक्ति जगी वह कायम रही और उसके उदाहरणसे दूसरे कमजोर दिलवाले अपने आप लडाईके मैदानसे खिसक गये। ऐसी कमजोरीकी कुछ और मिसाले भी सामने आईं, पर उनका इतिहास मैं नाम-धाम-सहित नही देना चाहता। उसे देनेसे कोई अर्थ नही सध सकता। पर हा, कौमकी सबलता-निर्बलता पाठकोंकी निगाहसे बाहर न रहे, इस दृष्टिसे इतना कह देना जरूरी है कि रामसुंदर अकेला ही रामसुदर नही था; पर मैंने देखा कि सभी रामसुदरोंने संग्रामकी सेवा ही की।

पाठक रामसुंदरके दोष न देखें। इस जगत्में मनुष्य-मात्र अपूर्ण है। किसीकी अपूर्णता अधिक देखनेमें आती है तो हम उसकी ओर उंगली उठाते हैं। वस्तुतः यह भूल है। रामसुंदर कुछ जान-बूझकर निर्बल नहीं बना। मनुष्य अपने स्वभावकी दशा बदल सकता है, उसपर अंकुश रख सकता है; पर उसे जड़मूलसे कौन मेट सकता है? जगत्-कर्ताने इतनी स्वतंत्रता उसको दी ही नहीं। बाघ अपनी खालकी विचित्रताको बदल सकता है तो मनुष्य भी अपने स्वभावकी विचित्रता बदल सकता है। भाग जानेपर भी रामसुंदरको अपनी कमजोरीपर कितना पश्चाताप हुआ होगा, यह हम कैसे जान सकते हैं? अथवा उसका भाग जाना ही क्या उसके पश्चातापका एक सबल प्रमाण नहीं माना जा सकता? वह बेशर्म होता तो उसे भागनेकी क्या जरूरत थी? परवाना निकलवाकर खूनी कानूनके अनुसार वह सदा जेल-मुक्त रह सकता था। यही नहीं, वह चाहता तो एशियाटिक दफ्तरका दलाल बनकर दूसरोंको बहका सकता था और सरकारका प्रिय भी बन सकता था। हम यह उदार अर्थ क्यों न करें कि यह करनेके बदले अपनी कमजोरी कौमको दिखानेमें उसको शर्म लगी और उसने मुंह छिपा लिया, और यह करके भी उसने कौमकी सेवा ही की?

: १६ :

'इंडियन ओपीनियन'

सत्याग्रहकी लड़ाईमें बाहरके और भीतरके जितने भी साधन अपने पास थे उन सबको मुझे पाठकोंके सामने रखना है। इसलिए 'इंडियन ओपीनियन' नामका जो साप्ताहिक पत्र

दक्षिण अफ्रीकामे आज भी निकल रहा है उसका परिचय भी उन्हे करा देना जरूरी है। दक्षिण अफ्रीकामे पहला हिंदुस्तानी छापाखाना खोलनेका यश मदनजीत व्यावहारिक नामक गुजराती सज्जनको है। यह छापाखाना कुछ वरसोतक कठिनाइयोके बीच चलाते रहनेके बाद उन्होने अखबार निकालनेका भी इरादा किया। इसमे उन्होंने स्व० मनसुखलाल नाजरकी और मेरी सलाह ली। अखबार डर्बनसे निकला, मनसुखलाल नाजर उसके अवैतनिक सपादक हुए। अखबारमें शुरूसे ही घाटा रहने लगा। अतमे यह निश्चय हुआ कि उसमे काम करनेवालोको हिस्सेदार या हिस्सेदार सरीखा बना ले, एक खेत खरीदकर उसमे उन लोगोको आबाद करे और वहीसे अखबार निकाले। यह खेत डर्बनसे १३ मीलके फासलेपर एक सुदर पहाड़ीपर अवस्थित है। उसके पासका रेलवे स्टेशन खेतसे ३ मील दूर है। उसका नाम फिनिक्स है। अखबारका नाम शुरूसे ही 'इडियन ओपीनियन' है। एक समय वह अग्रेजी, गुजराती, तामिल और हिंदी इन चार भाषाओमें निकलता था। तामिल और हिंदीका बोझ हर तरह भारी लगता था। ऐसे तामिल और हिंदी लेखक नही मिलते थे जो खेतपर रहनेको तैयार हों और उनके लेखोपर नियत्रण भी नही रखा जा सकता था। इससे ये विभाग बद कर दिये गये और अग्रेजी तथा गुजराती विभाग चालू रखे गये। सत्याग्रहकी लड़ाई जब शुरू हुई उस वक्त वह इसी रूपमें निकल रहा था। इस सस्थामे बसनेवालोमे गुजराती, हिंदुस्तानी, तामिल, अग्रेज सभी थे। मनसुखलाल नाजरकी अकाल मृत्युके बाद एक अग्रेज मित्र हर्बर्ट किचन सपादक हुए। अनन्तर हेनरी एस० एल० पोलक सपादक हुए और अनेक वर्षोतक यह भार उठाये रहे। मेरे और उनके कारावास-कालमे भले पादरी स्वर्गीय जोसफ डोकने भी कुछ दिनोतक

संपादकका काम सम्हाला। इस अखवारके जरिये हर हफ्ते कौमको हफ्तेकी सारी खवरे देनेका काम भलीभांति हो सकता था। अंग्रेजी विभागके द्वारा गुजराती न जाननेवाले हिन्दुस्तानियोको लड़ाईकी थोड़ी-बहुत जानकारी होती रहती और हिंदुस्तान, इंगलैंड और दक्षिण अफ्रीकाके अंग्रेजोके लिए तो 'इंडियन ओपीनियन' साप्ताहिक समाचारपत्रका काम देता। मै मानता हूं कि जिस युद्धका मुख्य आधार आंतरिक वल हो वह अखवारके विना लड़ा जा सकता है। पर इसके साथ-साथ मेरा यह भी अनुभव है कि 'इंडियन-ओपीनियन' के कारण हमे जो सुभीते मिले थे, जो शिक्षा कौमको सहज ही मिल सकती थी, जो खवरे दुनियामे जहां-जहा हिंदुस्तानी वसते थे वहां-वहा फैलाई जा सकती थीं, वह शायद दूसरी तरहसे नही हो सकता था। इसलिए इतना तो पक्के तौरपर कहा जा सकता है कि लडाई लडनेके साधनोंमें 'इंडियन ओपीनियन' भी एक बड़ा उपयोगी और प्रवल साधन था।

युद्धकी प्रगतिके साथ-साथ और अनुभव प्राप्त करते-करते जैसे-जैसे कौममे अनेक परिवर्तन हुए, वैसे ही 'इंडियन ओपीनियन' मे भी हुए। इस अखवारमे पहले विज्ञापन और वाहरकी फुटकर छपाईके काम भी लिये जाते थे। मैने देखा कि इन दोनों कामोमे अपने अच्छे-से-अच्छे आदमियोंको लगना पडता था। विज्ञापन लेने ही हों तो कौन-से लिये जायं और कौन-से न लिये जाय इसको तै करनेमे सदा धर्म-संकट उपस्थित होता था। फिर कोई विशेप विज्ञापन न लेनेका विचार हो फिर भी उसे भेजनेवाला जातिका कोई मुखिया हो तो उसका दिल दुखनेके डरसे भी न लेने योग्य विज्ञापन लेनेके लोभमें फसना पड़ता। विज्ञापन प्राप्त करने और उसके पैसे वसूल करनेमे हमारे अच्छे-से-अच्छे आदमियोंका वक्त जाता, खुशामद

करनी होती वह अलग। इसके साथ-साथ यह बात भी सोची गई कि अगर यह अखबार पैसा कमानेकी गरजसे नही, बल्कि कौमकी सेवाके उद्देश्यसे ही चलाया जा रहा हो तो यह सेवा जबर्दस्ती नही होनी चाहिए। कौम चाहे तभी होनी चाहिए। और कौमकी इच्छाका पक्का प्रमाण तो यही माना जा सकता था कि वह आवश्यक संख्यामे ग्राहक होकर उसका खर्च उठा ले। फिर हमने यह भी सोचा कि अखबार चलानेके लिए महीनेका खर्च निकालनेमें थोड़ेसे व्यापारियोको सेवाभावके नामपर अपने विज्ञापन देनेको समझानेसे कौमके आम लोगोंको अखबार खरीदनेका कर्त्तव्य समझाना लुभानेवाले और लुब्ध होनेवाले दोनोंकेलिए कैसी सुंदर शिक्षा होगी। यह निश्चय हुआ और तुरत काममें लाया गया। फल यह हुआ कि जो लोग अबतक विज्ञापन आदिके झमेलेमें उलझे हुए थे वे अब अखबारको सुंदर बनानेकी कोशिशमे लगे। कौम तुरत समझ गई कि 'इडियन ओपीनियन'की मालिकी और उसे चलानेकी जिम्मेदारी दोनों उसी की है। हम सब काम करनेवाले निश्चित हो गये। हमें बस इतनी चिता करनी रही कि कौम अखबार मागे तो पूरी-पूरी मेहनत करदें और छुट्टी पाए। और अब हर हिदुस्तानीकी बाह पकडकर उससे 'इंडियन ओपीनियन' लेनेको कहनेमे शर्म नही रही, बल्कि यह कहना हम अपना धर्म समझने लगे। 'इडियन ओपीनियन' का आतरिक बल और स्वरूप भी बदला और वह एक महाशक्ति बन गया। उसकी साधारण ग्राहक-सख्या १२००-१५०० तक थी। वह दिन-दिन बढने लगी। उसका चंदा बढाना पडा था, फिर भी जब युद्धने उग्र रूप ग्रहण किया तब ग्राहक इतने बढ गये कि ३५०० प्रतियांतक छापनी पड़तीं। 'इडियन ओपीनियन' का पाठक-वर्ग अधिक-से-अधिक २० हजार माना जा सकता है। उनमें ३ हजारसे अधिक प्रतियोंका

खपना आश्चर्यजनक विस्तार कहा जा सकता है। कौमने इस वक्ततो इस अखबारको इतना अपना लिया था कि बंधे वक्तपर उसकी प्रतियां जोहान्सबर्ग न पहुंच जाती तो मुझपर शिकायतोकी झड़ी लग जाती। आमतौरसे वह इतवारको सवेरे जोहान्सबर्ग पहुच जाता। मै जानता हूं कि अखवार आनेपर बहुतसे लोगोका पहला काम उसका गुजराती भाग आदिसे अततक बांच जाना होता था। एक आदमी पढ़ता और उसके इर्द-गिर्द बैठे हुए दस-बीस लोग सुनते। हम लोग गरीब ठहरे! इसलिए कितने ही लोग साझेमे भी अखवार मगाते।

छापेखानेमे बाहरका काम न लेनेके वारेमे भी मै लिख आया हू। उसे वद करनेके कारण भी प्राय. वही थे जो विज्ञापन बंद कर देनेके थे। और उसे वद कर देनेसे कंपोज करनेवालोका जो वक्त बचा उसका उपयोग हमने छापेखानेसे पुस्तके प्रकाशित करनेमे किया। कौमको मालूम था कि इस काममे भी हमारा उद्देश्य पैसा कमाना नहीं था और पुस्तके चूकि संग्राममे सहायता देनेके उद्देश्यसे ही छापी जाती थीं, इसलिए उनकी खपत भी अच्छी होने लगी। इस प्रकार अखवार और छापाखाना दोनोने युद्धमें अपना भाग अर्पण किया और सत्याग्रहकी जड़ ज्यो-ज्यों कौममे गहरी होती गई त्यो-त्यो अखवार और छापेखानेकी सत्याग्रहकी दृष्टिसे नैतिक प्रगति भी होती गई, यह वात साफ तौरसे दिखाई दे सकती थी।

: २० :

पकड़-धकड़

हम यह देख चुके कि रामसुदरकी गिरफ्तारी सरकारके

लिए मददगार नही सावित हुई। दूसरी ओर अधिकारियोने यह भी देखा कि कौम वडे जोशके साथ एकदिल होकर आगे वढ रही है। 'इंडियन ओपीनियन' के लेख तो एशियाटिक महकमेके अधिकारी ध्यानपूर्वक पढते ही थे। लडाईसे संवध रखनेवाली कोई भी वात छिपाई तो जाती ही नही थी। कौमकी निर्वलता-सवलता सभी शत्रु-मित्र-उदासीन जो कोई भी देखना चाहे इस अखवारमे देख सकता था। काम करने-वाले शुरूसे ही यह सीख गये थे कि जिस लडाईमे वुरा करनेको कुछ है ही नही, जिसमे फरेव और चालाकीके लिए जगह ही नही और जिसमें वल हो तभी विजय हो सकती है, उसमे छिपा रखनेको कुछ हो ही नही सकेगा। कौमके स्वार्थका ही यह आदेश था कि निर्वलता रूपी रोगको निर्मूल करना हो तो निर्वलताकी परीक्षा करके उसे समुचित रूपमे प्रकट करना चाहिए। अधिकारियोने जव देखा कि 'इंडियन ओपीनियन' इसी नीतिसे चल रहा है तव उनके लिए वह हिंदुस्तानी कौमके वर्त्तमान इतिहासका दर्पण रूप हो गया और इससे उन्होने सोचा कि जवतक हम कुछ खास नेताओको न पकडे, लडाईका वल टूटनेका नही। अत. १९०७ के दिसवर, वडे दिनके हफ्तेमे, कुछ नेताओको अदालतमे हाजिर होनेका नोटिस मिला। मुझे यह स्वीकार करना होगा कि यह नोटिस तामील करानेमे अधिकारियोने सभ्यताका व्यवहार किया। वे चाहते तो नेताओको वारटसे गिरफ्तार कर सकते थे। इसके वदले उन्होने हाजिर होनेका नोटिस देकर सभ्यताके साथ-साथ अपना यह विश्वास भी प्रकट किया कि नेता अपने आपको गिरफ्तार करानेको तैयार है। जिन लोगोको नोटिस मिला था वे नियत तिथि अर्थात् शनिवार २२ दिसवरको अदालतमे हाजिर हुए। नोटिसमे लिखा था कि कानूनके अनुसार तुम्हे परवाना लेना चाहिए था, वह तुमने नही लिया।

अत: कारण बताओ कि तुम्हे एक विशेप अवधिके अदर ट्रासवाल छोड देनेका हुक्म क्यो न दिया जाय ?

इन लोगोमे क्विन नामका चीनी भी था जो जोहान्स-बर्गमे बसनेवाले चीनियोका मुखिया था। जोहान्सबर्गमे उनकी आबादी ३-४ सौ व्यक्तियोकी होगी। वे सभी व्यापार या छोटी-मोटी खेतीका धधा करते थे। हिंदुस्तान खेतीके लिए मशहूर मुल्क है। पर मै मानता हू कि चीनके लोग इस धंधेमे जितना आगे बढ गये है वहातक हम नही पहुंच पाये है। अमरीका आदि देशोंमे खेतीकी जो आधुनिक प्रगति हुई है उसका वर्णन नही हो सकता। पर पश्चिमकी खेतीको मैं अभी प्रयोग रूप ही मानता हू। परंतु चीन तो हमारे देश जैसा ही प्राचीन देश है और वहा पुराने जमानेसे ही इस कलाका विकास किया गया है। इससे चीन और हिंदुस्तानकी तुलना करके हम कुछ सीख सकते है। जोहान्सबर्गके चीनियोंकी खेती देखकर और उनकी बाते सुनकर मुझे तो यही जान पडा कि चीनियोका ज्ञान और उद्यम हमसे बहुत बढा-चढा है। जिस जमीनको हम पडती मानकर उसका कोई उपयोग नही करते, चीनी उसमे भिन्न-भिन्न प्रकारकी जमीन-के अपने सूक्ष्म ज्ञानकी बदौलत अच्छी फसल उपजा सकते है।

यह उद्योगी और चतुर जाति भी खूनी कानूनकी श्रेणीमें आती थी। इससे उसने सत्याग्रहकी लड़ाईमे भारतीयोका साथ देना मुनासिब समझा। पर यह होते हुए भी दोनोके सारे काम-काज आदिसे अततक बिलकुल अलग रहे। दोनों अपनी-अपनी सस्थाओके जरिये लड़ रहे थे। इसका शुभ फल यह होता है कि जबतक दोनो कौमे अपने निश्चयपर अटल रहती है तबतक दोनोंका लाभ होता है; पर अगर एक गिर भी जाय तो दूसरेका कोई नुकसान पहुंचनेका

कारण नही रहता । गिरनेका तो रहता ही नही । अतमें बहुत-से चीनी फिसल गये, क्योकि उनके नेताने उन्हे दगा दिया । उसने खूनी कानूनके सामने घुटने तो नही टेके, पर एक दिन किसीने मुझे खबर दी कि वह बिना हिसाव-किताव दिये भाग गया । सरदारके चल देनेपर अनुयायियोका टिका रहना सदा ही कठिन होता है । फिर उसमे कोई मलिनता देखनेमें आये तव तो दूना नैराश्य उत्पन्न होता है । पर जब पकड़-धकड़ शुरू हुई उस वक्त तो चीनियोंका जोश खूब बढा हुआ था । उनमेसे शायद ही किसीने परवाना लिया हो । इससे जैसे भारतीय नेता गिरफ्तार किये गये वैसे ही चीनियोके कर्ता-धर्ता श्री क्विन भी पकड़े गये । कुछ दिनोतक तो कह सकते है कि उन्होने बहुत अच्छा काम किया ।

गिरफ्तार किये गये लोगोमें जिस दूसरे नेताका परिचय यहा देना चाहता हू वह है थम्बी नायडू । थंबी नायडू तामिल थे । उनका जन्म मोरीशसमें हुआ था । पर माँ-बाप मद्रास इलाकेसे आजीविकाके लिए वहा गये थे । थबी नायड सामान्य व्यापारी थे, स्कूलकी पढाई एक तरहसे कुछ भी न थी, पर अनुभव-ज्ञान ऊचे प्रकारका था । अग्रेजी बहुत अच्छी बोल-लिख सकते थे, यद्यपि भाषाशास्त्रकी दृष्टिसे उसमे दोष दिखाई देते थे । तामिलका ज्ञान भी अनुभवसे ही प्राप्त किया था । हिंदुस्तानी भी अच्छी तरह समझ और बोल लेते थे । तेलगू भी काफी जानते थे, पर हिंदी या तेलगू लिपि बिलकुल नही जानते थे । मोरीशसकी भाषाका भी, जिसे क्रीओल कहते है और जो फ्रेंचका अपभ्रश कही जा सकती है, थबी नायडूको बहुत अच्छा ज्ञान था । दक्षिणके भारतीयोमे इतनी भाषाओका कामचलाऊ ज्ञान होना अपवादरूप नही था । दक्षिण अफ्रीकामे सैकड़ो हिंदुस्तानी मिलेगे जिन्हे इन सभी भाषाओका सामान्य ज्ञान

है। इन सबके साथ हबशी भाषाका ज्ञान तो उन्हे होता ही है। इन सारी भाषाओंका ज्ञान उन्हे अनायास हो जाता है और हो सकता है। इसका कारण मुझे तो यही दिखाई दिया कि पर-भाषाके द्वारा शिक्षा प्राप्त करके उनका दिमाग थक नही गया था। उनकी स्मरण-शक्ति तीव्र होती है और उन भाषाओके बोलनेवालोके साथ बात-चीत और अवलोकन करके ही वे विविध भाषाओका ज्ञान प्राप्त कर लेते है। इसमे उनके दिमागको बहुत श्रम नही करना पड़ता, पर दिमागकी इस हलकी कसरतसे उनकी बुद्धि स्वाभाविक रीतिसे खिल उठती है। यही बात थबी नायडूकी भी थी। उनकी बुद्धि बहुत तीक्ष्ण थी। नये-नये मसलोको झट समझ लेते थे। उनकी हाजिर-जवाबी देखकर तो लोग दंग रह जाते थे। हिंदुस्तानके उन्होंने दर्शन नही किये थे, फिर भी उसपर उनका अगाध प्रेम था। स्वदेशाभिमान उनकी नस-नसमे भर रहा था। उनकी दृढता उनके चेहरेपर चित्रित थी। उनके शरीरकी गठन बड़ी मजबूत और कसी हुई थी। मेहनत करते थकना जानते ही नही थे। कुरसीपर बैठकर नेतृत्व करना हो तो इस पदको भी सुशोभित कर सकते थे और इतनी ही स्वाभाविक रीतिसे मोटियेका काम भी कर सकते थे। सरेआम बोझ उठाकर चलते वह तनिक भी नही शरमाते थे। मेहनत करनी हो तो रात-दिनका भेद नही जानते थे और कौमके लिये सर्वस्व होमनेमे हरएकके साथ प्रतिस्पर्द्धा कर सकते थे। अगर थबी नायडू हदसे ज्यादा साहसी न होते और उनमे क्रोध न होता तो आज यह वीर पुरुष काछलियाकी अनुपस्थितिमें ट्रांसवालमे कौमके नेताकी जगह सहज ही ले सकता था। जबतक ट्रांसवालकी लड़ाई चलती रही, उनके क्रोधका विपरीत परिणाम नही हो सका और उनमे जो अमूल्य गुण थे वे रत्नकी भांति चमक रहे थे। पर पीछे मुझे मालूम हुआ कि

उनका क्रोध और साहसिकता (rashness) उनके प्रबल शत्रु सिद्ध हुए और उन्होने उनके गुणोको ढक दिया। कुछ भी हो, दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रह-सग्राममे थबी नायडूका नाम सदा प्रथम वर्गमे रहेगा।

हम सबको अदालतमे साथ ही हाजिर होना था; पर सबके मुकदमे अलग-अलग चलाये गये। मजिस्ट्रेटने कुछ अभियुक्तोको ७ या १४ दिनके अदर और बाकी सबको ४८ घटेके अदर ट्रांसवाल छोड़ देनेका हुक्म दिया। आज्ञा-की अवधि १९०८की १० वी जनवरीको पूरी होती थी। उसी दिन सजा सुनानेकेलिए हमें अदालतमे हाजिर होनेका हुक्म मिला। हममेसे किसीको कोई बचाव तो करना नही था। सबको यह स्वीकार करना था कि हमने कानूनके अनुसार परवाने नही लिये है और इस कारण मजिस्ट्रेटने जो हमे निर्दिष्ट अवधिके भीतर ट्रासवाल छोड देनेका हुक्म दिया है उसका सविनय अनादर करनेका अपराध हमने किया है।

मैने अदालतसे छोटा-सा बयान देनेकी इजाजत माँगी और वह मिल गई। मैने इस आशयका बयान दिया—"मेरे और मेरे बाद सुने जाने वाले मुकदमोमे भेद किया जाना चाहिए। मुझे अभी-अभी प्रिटोरियासे खबर मिली है कि वहाँ मेरे देश-बंधुओको तीन महीनेकी कड़ी कैदकी सजा मिली है और भारी जुर्माना भी किया गया है, जो अदा न किया गया तो तीन महीनेकी कडी कैद और भुगतनी होगी। इन लोगोने अगर अपराध किया है तो मैने और बड़ा अपराध किया है। अतः मजिस्ट्रेटसे मेरी प्रार्थना है कि वह मुझे बडी-से-बडी सजा दें।" पर मजिस्ट्रेटने मेरी प्रार्थना स्वीकार नही की और मुझे दो महीनेकी सादी कैदकी सजा दी। जिस अदालतमें मैं सकडो बार वकीलकी हैसियतसे खडा हुआ, वकील-मडलीके साथ बैठता था उसमे आज मुलजिमके कटघरेमे खड़ा हू, यह

विचार कुछ विचित्र अवश्य लगा, पर इतना तो मुझे अच्छी तरह याद है कि वकील-मंडलकी बैठकमें बैठनेमें जो कुछ सम्मान मैंने माना होगा, अभियुक्तके पीजड़ेमें खड़े होनेमें उससे कहीं अधिक सम्मान समझा। उसमें प्रवेश करनेमें लेशमात्र भी क्षोभ मेरे मनमें हुआ, यह मुझे याद नहीं आता। अदालतमें तो सैकड़ों हिंदुस्तानी भाइयों, वकीलों, मित्रों आदिके सामने मैं खड़ा था। ज्योंही सजा सुनाई गई, सिपाही मुझे, कैदियोंको बाहर ले जानेके दरवाजेसे उस जगह ले गया, जहां कैदी पहले रखे जाते हैं।

उस वक्त मुझे अपने आस-पास सब कुछ शून्य, निस्तब्ध दिखाई दिया। कैदियोंके बैठनेके लिए एक बेंच पड़ी थी। उसपर बैठनेको कहकर और दरवाजा बंद करके पुलिस कर्मचारी चलता बना। यहां मुझे क्षोभ अवश्य हुआ। मैं गहरे विचारमें डूब गया। कहां है घर-बार! कहां है वकालत! कहां है सभाएं! यह सब क्या स्वप्नवत् था और आज मैं कैदी हूं! दो महीनेमें क्या होगा? दो महीने पूरे काटनेही होंगे? लोग अपने वचनके अनुसार जेल चले आए तो दो महीने क्यों बिताने पड़ेंगे? पर वे न आएं तो दो महीने कैसे पहाड़से हो जाएंगे? इन विचारोंको लिखनेमें जितना समय लग रहा है उसका सौवां हिस्सा भी दिमागमें इन और ऐसे अन्य विचारोंके आनेमें नहीं लगा। ये विचार ज्योंही मनमें आये, मैं लज्जित हुआ। यह कितना बड़ा मिथ्याभिमान है! मैं तो जेलको महल मनवानेवाला हूं! खूनी कानूनका सामना करते हुए जो कुछ सहन करना पड़े उसे दुःख नहीं। बल्कि सुख मानना चाहिए। उसका सामना करते हुए जान-माल सब अर्पण कर देना पड़े तो इसे तो सत्याग्रहमें बड़ा आनंद मानना चाहिए। यह सारा ज्ञान आज कहां चला गया? ये विचार मनमें आते ही मैं फिर होशमें आया

और अपनी मूर्खतापर हसने लगा। दूसरे भाइयोको कैसी कैद मिलेगी ? क्या उन्हे भी मेरे साथ ही रखेगे ? इन व्यावहारिक विचारोंमे अब मै उलझ गया। मै इस उधेड़-बुनमे पडा था कि इतनेमे दरवाजा खुला और एक पुलिस कर्मचारीने मुझे अपने पीछे आनेका हुक्म दिया। मै चला तो उसने मुझे आगे कर दिया और खुद पीछे हो लिया। वह मुझे जेलकी जगलेदार गाडीके सामने ले गया और उसमे बैठ जानेको कहा। मुझे जोहान्सबर्गके जेलखानेकी ओर ले गये।

जेलमे ले जानेके बाद मेरे कपडे उतरवाये गये। मुझे मालूम था कि जेलमे कैदियोको नगा कर दिया जाता है। हम सबने निश्चय कर लिया था कि जेलके कायदे जहातक व्यक्तिगत अपमान करनेवाले या धर्म विरुद्ध न हो वहांतक उनका इच्छा-पूर्वक पालन करेगे। इसे हमने सत्याग्रहीका धर्म माना था। जो कपडे मुझे पहननेको मिले वे बहुत मैले थे। उन्हे पहनना तनिक भी नही रुचा। उन्हे पहनते और मनको इसके लिए झुकाते दुःख हुआ। पर यह सोचकर मनको दबाया कि थोडा मैल बर्दाश्त करना ही होगा। नाम-धाम लिखकर मुझे एक बडे कमरेमे ले गये। वहा कुछ ही देर रहा हूगा कि मेरे साथी भी हसते-बोलते आ पहुचे और उनका मुकदमा कैसे चला और क्या हुआ यह सब कह सुनाया। मै इतना जान सका कि मेरा मुकदमा हो जानेके बाद लोगोने काले झडे हाथमे लेकर जुलूस निकाला। कुछ लोग उत्तेजित भी हो गये। पुलिसने दखल दिया और कुछ लोगोपर मार भी पडी। हम सब एक ही जेलमे और एक ही बडी कोठरीमें रखे गये, इससे हम बहुत प्रसन्न हुए।

कोई छ बजे हमारा दरवाजा बद कर दिया गया। वहांकी जेलोंकी कोठरियोके दरवाजोमे छडे वगैरह नही होती। बहुत ऊंचाईपर दीवारमे एक छोटा झरोखा हवाके लिए रखा जाता है।

अत. हमे जान पड़ा, जैसे हम सदूकमे बंद कर दिये गये हों। पाठक देखेगे कि जो आदर-सत्कार जेल-अधिकारियोंने रामसुदरका किया था वैसा कुछ हमारा नही किया। इसमे कोई अचरजकी बात नही । रामसुंदर पहला सत्याग्रही कैदी था। इसलिए उसके साथ किस तरह वर्ताव किया जाय, अधिकारी इसे पूरी तरह समझ भी नही पाये थे। हमारी तादाद तो शुरूसे ही खासी थी और दूसरोको भी गिरफ्तार करनेका इरादा तो था ही। इसलिए हम हवशी वार्डमें रखे गये। दक्षिण अफ्रीकामे कैदियोंके दो ही विभाग होते हैं— गोरे और काले। और हम हिंदुस्तानी कैदियोकी गिनती भी हवशी विभागमे ही होती है। मेरे साथियोको भी मेरी जितनी ही और सादी कैदकी सजा हुई थी।

सवेरा होनेपर हमे मालूम हुआ कि सादी कैदवालोको अपने निजके कपड़े पहननेका अधिकार होता है और वे उसे न पहनना चाहे तो सादी कैद वालोंके लिए जो खास पोशाक होती है वह दी जाती है। हमने तै कर लिया था कि घरके कपडे पहनना अयोग्य है और जेलके ही कपड़े पहनना हमे मुनासिब होगा। हमने अधिकारियोको यह बता दिया। इससे हमे सादी कैदवाले हवशी कैदियोका पहनावा दिया गया। पर सादी कैदवाले सैकड़ो हवशी कैदी दक्षिण अफ्रीकाकी जेलमे होते ही नही। अत. जब दूसरे सादी कैदवाले हिंदुस्तानी पहुचने लगे तो सादी कैदवाले कपडे जेलमे चुक गये। हमें इस बारेमे तो कोई तकरार करनी थी ही नही, इसलिए हमने मशक्कतवाले कैदियोके कपड़े पहननेमे आनाकानी नही की। कुछ लोग जो पीछे आये उन्होंने ये कपड़े पहननेके बदले अपने ही कपड़े पहने रहना पसंद किया। यह मुझे ठीक तो नहीं लगा, पर इस विषयमें आग्रह करना मुनासिब नही मालूम हुआ।

दूसरे या तीसरे दिनसे ही सत्याग्रही कैदी जेलमे भरने लगे। वे जानबूझकर गिरफ्तार होते थे। उनमे अधिकाश फेरी करनेवाले ही थे। दक्षिण अफ्रीकामे हरएक फेरी करनेवालेको, वह गोरा हो या काला, फेरी करनेका परवाना लेना पडता है। उसे हर वक्त अपने पास रखना होता है और पुलिस जब मागे तब दिखाना होता है। बहुत करके रोज ही कोई-न-कोई पुलिस कर्मचारी परवाना मागा ही करता है और जो न दिखाये उसे गिरफ्तार कर लेता है। हमारी गिरफ्तारीके बाद कौमने जेलको भर देनेका निश्चय किया था। फेरीवाले इसमे आगे बढे। उनके लिए गिरफ्तार होना आसान भी था। फेरीका परवाना नही दिखाया और गिरफ्तार हुए। यो गिरफ्तार होकर एक हफ्तेके अदर १०० से ऊपर सत्याग्रही कैदी हो गये। और थोडे बहुत तो आते ही रहते, इसलिए हमे तो एक तरहसे बिना अखबारके ही अखबार मिल जाता। रोजकी खबरे ये भाई लाया करते। जब सत्याग्रही बडी तादादमे गिरफ्तार होने लगे तब मजिस्ट्रेट या तो थक गया था, जैसा कि हम मानते थे, सरकारसे उसे आदेश मिला कि सत्याग्रहियोको आगेसे सादी कैद दी ही न जाय, मशक्कतवाली कैदकी ही सजा दी जाय। कारण कुछ भी हो, पर अब सत्याग्रहियोको कडी कैदकी ही सजा मिलने लगी। मुझे तो आज भी जान पडता है कि कौमका अनुमान सही था, क्योकि शुरूके मुकदमोमे जो सादी कैदकी सजाए दी गई उसके बाद इसी वक्तकी लडाईमे और पीछे समय-समयपर जो और लडाइया लडी गई उनमे कभी पुरुष क्या, स्त्रियोको भी सादी कैदकी सजा ट्रासवाल या नेटालकी एक भी अदालतमे नही सुनाई गई। जबतक सबको एक ही तरहकी हिदायत या हुक्म न मिला हो तबतक हरएक मजिस्ट्रेटका हर बार हर पुरुष और स्त्रीको मशक्कतवाली ही सजा देना

अगर आकस्मिक सयोग मात्र हो तो यह चमत्कार-सा माना जायगा।

इस जेलमे सादी कैदवाले कैदियोको भोजनमे सवेरे मकई-की लपसी मिलती थी। उसमे नमक नही होता था, पर हर कैदीको अलगसे थोडा नमक दिया जाता था। दोपहरको बारह बजे पाव भर भात, थोड़ा नमक और आधी छटांक घी और पाव भर डबल रोटी दी जाती थी। शामको फिर मकईके आटेकी लपसी और उसके साथ थोडी तरकारी, मुख्यत आलू दिया जाता था। आलू छोटे हो तो दो और बड़े हो तो एक दिया जाता था। इस खुराकसे किसीका पेट नही भरता। चावल गीला पकाया जाता था। वहाके डाक्टरसे हमने कुछ मसाला मागा। उन्हे बताया कि हिंदुस्तानकी जेलोमे भी मसाला मिलता है। "यह हिंदुस्तान नही है और कैदीके लिए स्वाद होता ही नही। इसलिए मसाला भी नही हो सकता।" यह दोटूक जवाब मिला। हमने दालकी मांग की, क्योकि उपर्युक्त आहारमे मासपेशी या पट्ठे बनानेका गुण नही था। डाक्टरने जवाब दिया—"कैदियोको डाक्टरी दलील नही देनी चाहिए। पट्ठे बनानेवाली खुराक आप लोगोको दी जाती है, क्योकि हफ्तेमे दो बार मक्कके बदलेमे उबली हुई मटर दी जाती है।" मनुष्यका जठर यों हफ्तेमे या पखवाडेमे भिन्न-भिन्न गुणोवाला आहार भिन्न-भिन्न समयपर लेकर उसके सत्वको खीच ले सके तो डाक्टरकी दलील सही थी। बात यह थी कि डाक्टरका इरादा किसी तरह हमारे अनुकूल होनेका था ही नही। सुपरिटेडेटने हमारी यह माग मजूर कर ली कि अपना खाना हम खुद पका लिया करे। थंबी नायडूको हमने अपना पाक-शास्त्री चुना। रसोईमे उसको बहुत झगडा करना पड़ता। शाक-भाजी तौलमे कम मिले तो वह पूरी मांगता। यही बात दूसरी चीजोके बारेमे भी थी। केवल दोपहरका खाना

पकाना ही हमारे जिम्मे किया गया था। वह हमारे हाथमें आनेके बाद हम अपना भोजन कुछ संतोषपूर्वक करने लगे।

पर ये सुभीते मिले, या न मिले, हर हालमे प्रसन्नतापूर्वक जेलकी सजा भोगनी है, इस निश्चयसे इस मडलीमेसे कोई भी नही डिगा। सत्याग्रही कैदियोंकी सख्या वढते-वढते १५० से ऊपर हो गई थी। हम सब सादी कैदवाले थे, इसलिए अपनी कोठरी वगैरह साफ करनेके सिवा हमारे लिये और कोई काम नही था। हमने काम मागा। सुपरिटेंडेटने जवाव दिया—"मै आप लोगोको काम दू तो माना जायगा कि मैने अपराध किया। इससे मै लाचार हू। सफाई आदि करनेमे आप जितना पसद करे उतना वक्त लगा सकते है।" हमने ड्रिल (कवायद) आदि किसी तरहकी कसरतकी मांग की, क्योंकि मशक्कतवाले हबशी कैदियोंसे भी ड्रिल कराई जाती थी। जवाव मिला—"आपके रखवाले (वार्डर) के पास वक्त हो और वह आपको कसरत कराये तो मै एतराज नहीं करूंगा। पर उसे कराना मै उसका फर्ज नही बना सकता।" रखवाला बडा भलामानस था। उसे तो इतनी इजाजत भरकी दरकार थी। उसने बड़ी दिलचस्पीके साथ हमे रोज सवेरेकी ड्रिल कराना शुरू किया। यह हम अपनी कोठरीके छोटे-से आगनमे ही कर सकते थे। इसलिए हमे तो चक्कर-सा काटना होता था। यह भला रखवाला जिस तरह सिखा जाता उसी तरह नवावखा नामके एक पठान भाई उसे जारी रखते और कवायदके अंग्रेजी शब्दोका उर्दू उच्चारण करके हमे हसा देते। 'स्टेड ऐट ईज' का वह 'सडलीज' कहते। कुछ दिनोतक तो हम समझ ही न सके कि यह कौनसा हिंदुस्तानी शब्द है। बादमे सूझा कि यह तो नवाबखानी अंग्रेजी है।

: २१ :

पहला समझौता

इस तरह जेलमें एक पखवाड़ा बीता होगा कि नये आनेवाले यह खबर लाने लगे कि सरकारके साथ समझौतेकी कुछ बातचीत चल रही है। दो-तीन दिन बाद जोहान्सबर्गके 'ट्रांसवाल लीडर' नामक अंग्रेजी दैनिकके संपादक अलबर्ट कार्टराइट मुझसे मिलने आये। जोहान्सबर्गसे उन दिनों जितने दैनिक निकलते थे, सबका स्वामित्व सोनेकी खानवाले किसी-न-किसी गोरेके हाथमें था; पर जो उनके विशेष स्वार्थके विषय न हो उन सभी प्रश्नोंपर संपादक अपने स्वतंत्र-विचार प्रकट कर सकता था। इन अखबारोंके संपादक विद्वान् और विख्यात पुरुष ही चुने जाते थे। जैसे 'स्टार' नामके दैनिकके संपादक किसी वक्त लार्ड मिल्नरके प्राइवेट सेक्रेटरी थे और 'स्टार'से 'टाइम्स'के संपादक मि० बकलकी जगह लेने विलायत गये। मि० अलबर्ट कार्टराइट बुद्धिमान होनेके साथ-साथ अतिशय उदार हृदयके थे। आमतौरसे वह सदा अपने अग्र लेखोंमें भी भारतीयोंके पक्षका समर्थन करते थे। उनके और मेरे बीच गहरा स्नेह हो गया था। मेरे जेल जानेके बाद वह जनरल स्मट्ससे मिल आये थे। जनरल स्मट्सने उन्हें संधिकर्ता मंजूर कर लिया था। भारतीय नेताओंसे भी वह मिले। नेताओंने उन्हें एक ही जवाब दिया—"कानूनी नुक्तोंको हम नहीं समझ पाते। गांधी जेलमें हैं और हम समझौतेकी बातचीत करें, यह नहीं हो सकता। हम समझौता चाहते हैं; पर सरकार चाहती हो कि हमारे आदमी जेलमें बंद रहें और समझौता हो जाय तो आपको गांधीसे मिलना चाहिए। वह जो करेंगे वह हमें मंजूर होगा।"

इसपर अलबर्ट कार्टराइट मुझसे मिलने आये और अपने साथ जनरल स्मट्सका बनाया हुआ या पसद किया हुआ समझौतेका मसविदा भी ले आये। उसकी भाषा गोल-मटोल थी। वह मुझे नही रुची। फिर भी एक परिवर्तनके साथ उस मसविदेपर दस्तखत करनेको मै खुद तैयार था। पर मैने उन्हे बताया कि वाहरवालोकी इजाजत होनेपर भी जेलके अपने साथियोकी राय लिये विना मै हस्ताक्षर नही कर सकता। इस मसविदेका मतलव यह था कि हिंदुस्तानी अपने परवाने स्वेच्छासे वदलवा ले। उनपर किसी कानूनका प्रयोग-नही हो सके, नये परवानेका रूप सरकार भारतीयोके साथ मशविरा करके तै करे और भारतीय जनताका वडा भाग स्वेच्छासे परवाना ले ले तो सरकार खूनी कानूनको रद कर देगी और अपनी खुशीसे लिए हुए परवानेको वाकायदा मान लेनेके लिए एक नया कानून पास करेगी। खूनी कानून रद करनेकी वात इस मसविदेमे स्पष्ट नही थी। मेरी दृष्टिसे उसे स्पष्ट करनेके लिए जो सुधार आवश्यक था वह मैने सुझाया। पर अलबर्ट कार्टराइटको इतना परिवर्तन भी पसद नही आया। उन्होने कहा—"जनरल स्मट्स इस मसविदेको अतिम मानते है। मैने खुद भी इसे पसद किया है और इस वातका तो मै आपको इतमीनान दिलाता हूं कि अगर आप सवने परवाने ले लिये तो खूनी कानूनको रद हुआ ही समझिये।" मैने जवाव दिया—"समझौता हो या न हो, पर आपकी सहानुभूति और सहायताके लिए हम सदा आपके अहसानमद रहेगे। मै एक भी गैरजरूरी फेरफार नही कराना चाहता। जिस भाषासे सरकारकी प्रतिष्ठाकी रक्षा होती हो मै उसका विरोध नही करूगा। पर जहा मुझे खुद ही अर्थके विषयमे शका हो वहा तो मुझे हेर-फेर सुझाना ही होगा और अंतको अगर समझौता होना ही है तो दोनो पक्षोको मसविदेमे

अदल-बदल करनेका अधिकार होना ही चाहिए। यह अतिम है, कहकर जनरल स्मट्सको पिस्तौल हमारे सामने नहीं कर देना चाहिए। खूनी कानून रूपी पिस्तौल तो हमारे सामने घरा ही है, अब इस दूसरे पिस्तौलका असर हमारे ऊपर क्या हो सकता है ?" मि० कार्टराइट इस दलीलके खिलाफ कुछ कह नही सके और सुझाया हुआ परिवर्तन जनरल स्मट्सके सामने रखना स्वीकार किया। मैने साथियोंसे मशविरा किया। उन्हें भी भाषा नही भाई, पर जनरल स्मट्स इस सुझाये सुधारके साथ मसविदेको मजूर कर ले तो समझौता कर लेना चाहिए, यह उन्हे भी पसद आया। जो लोग वाहरसे आये थे उन्होंने मुझे नेताओंका यह सदेसा दिया था कि मुनासिब समझौता होता हो तो उनकी मजूरीकी राह न देखकर मैं उसे कर लू। इस मसविदे पर मैंने मि० क्विन और थबी नायडूकी सही ली और तीनोंके हस्ताक्षरके साथ मसविदा कार्टराइटके हवाले किया।

दूसरे या तीसरे दिन १९०८ की ३० वी जनवरीको जोहान्सबर्गके पुलिस सुपरिटेंडेंट मुझे जनरल स्मट्सके पास प्रिटोरिया ले गये। हममे वहुतसी बाते हुई। मि० कार्टराइटके साथ उनकी जो बातचीत हुई थी वह उन्होंने मुझे बताई। हिंदुस्तानी कौम मेरे जेल जानेके बाद भी दृढ रही, इसके लिये भी उन्होंने मुझे मुबारकबाद दी और कहा—"मुझे आपके देशवासियोंसे नफरत हो ही नही सकती। आप जानते ही हैं कि मैं भी बैरिस्टर हू। मेरे वक्तमे कुछ हिंदुस्तानी विद्यार्थी भी मेरे साथ पढ रहे थे। मुझे तो अपने कर्तव्यका पालन भर कर देना है। गोरे यह कानून मागते हैं और आप स्वीकार करेंगे कि वे मुख्यत बोअर नही, बल्कि अंग्रेज हैं। आपका सुधार मैं स्वीकार करता हू। जनरल बोथाके साथ भी मैंने बातचीत कर ली है और मैं आपको विश्वास दिलाता हू कि आप लोगोंमेसे अधिकाश परवाना ले लेंगे तो मैं एशिया-

टिक ऐक्टको रद कर दूगा। अपनी मर्जीसे लिये जानेवाले परवानेको जायज बनानेवाले कानूनका मसविदा जब बनाने लगूगा तब उसकी एक नकल आपकी आलोचनाके लिए भेज दूगा। मै यह नही चाहता कि यह लड़ाई पीछे फिर शुरु हो और आपके देशवासियोकी भावनाओका आदर करना चाहता हूं।" यह कहकर जनरल स्मट्स उठकर खडे हो गये। मैने पूछा—"अब मुझे कहा जाना है? और मेरे साथके दूसरे कैदिओका क्या होगा?" उन्होने हसकर जवाब दिया—"आप तो अभीसे आजाद है। आपके साथियोको कल सवेरे छोड देनेके लिए टेलीफोन करता हूं। पर मेरी यह सलाह है कि आपके लोग बहुत जलसा-तमाशा न करे। करेगे तो सरकारकी स्थिति कुछ कठिन हो जा सकती है।" मैने जवाब दिया—"आप इतमीनान रखे, जलसेकी खातिर मै एक भी जलसा नही होने दूगा। पर समझौता कैसे हुआ, उसका स्वरुप क्या है और अब हिंदुस्तानियोकी जिम्मेदारी कितनी बढ़ गई है, यह समझानेके लिए तो मुझे सभाएं करनी ही होगी।" जनरल स्मट्सने कहा—"ऐसी सभाएं आप जितनी भी करनी चाहे करे। मै क्या चाहता हू यह आपने समझ लिया, इतना ही काफी है।"

इस वक्त शामके कोई सात बजे होगे। मेरे पास तो एक धेला भी नही था। जनरल स्मट्सके सेक्रेटरीने मुझे जोहान्सबर्ग जानेका भाड़ा दिया। यह बातचीत प्रिटोरियामे हुई थी। प्रिटोरियाके भारतीयोके पास रुकना और वहा समझौता प्रकट करना जरूरी नही था। मुख्य लोग जोहान्सबर्गमे ही थे। हमारा केंद्र भी वही था। वहां जानेवाली आखिरी ट्रेन बाकी थी। वह मुझे मिल भी गई।

: २२ :

समझौतेका विरोध : मुझपर हमला

रातके कोई नौ बजे जोहान्सबर्ग पहुंचा। तुरत अध्यक्ष सेठ ईसप मियाके यहां गया। मुझे प्रिटोरिया ले जानेकी खबर उन्हे मिल गई थी। इससे कुछ मेरी राह भी देखते रहे होगे। फिर भी मुझे अकेला पहुचा हुआ देखकर सबको अचंभा हुआ और हर्ष भी। मैंने कहा कि जितने आदमी इकट्ठे किये जा सके उतने ही को इकट्ठाकर हमें इसी वक्त सभा करनी होगी। ईसप मियां आदि मित्रोंको भी यह सलाह पसद आई। अधिकांश भारतीय एक ही मुहल्लेमे रहते थे, इसलिए सूचना देना कठिन नही था। अध्यक्षका मकान मस्जिदके पास ही था, और सभाए तो मस्जिदके मैदानमे ही हुआ करती थी। इससे कोई भारी प्रवध करना था ही नही। मचपर एक बत्ती लगवा लेना; बस यही प्रबध करना था। रातके ११ या १२ बजेके लगभग सभा हुई। सूचनाके लिए समय बहुत कम मिला था, फिर भी कोई एक हजार आदमी इकट्ठे हो गये थे।

सभा होनेके पहले जो खास-खास लोग मौजूद थे उन्हे मैंने समझौतेकी शर्तें समझा दी थी। कुछ उसका विरोध करते थे। फिर भी उस मंडलीके सभी लोग मेरी दलीले सुन लेनेके बाद समझौतेका औचित्य समझ गये। पर एक शंका तो सबके मनमे थी—"जनरल स्मट्सने विश्वासघात किया तो? खूनी कानून भले ही अमलमे न लाया जाय, पर हमारे सिरपर मूसलकी तरह खडा तो रहेगा ही। इस बीच हमने अपनी मर्जीसे परवाने लेकर अपना हाथ कटा दिया तो इस कानूनसे लड़नेके लिए हमारे पास जो एक बड़ा हथियार है उसे हाथसे

छोड देंगे। यह तो जानबूझकर अपने आपको दुश्मनके पजेमें फसा देना-सा होगा। सच्चा समझौता तो यह कहा जायगा कि पहले खूनी कानून रद करदे और फिर हम स्वेच्छासे परवाने निकलवा ले।"

मुझे यह दलील पसंद आई। दलील करनेवालोकी तीक्ष्ण बुद्धि और हिम्मतपर मुझे गर्व हुआ और मैंने देखा कि सत्याग्रही ऐसे ही होने चाहिए। इस दलीलके जवाबमें मैंने कहा—"आपकी दलील बहुत अच्छी है और विचारने योग्य है। खूनी कानून रद हो जानेके बाद ही हम अपनी इच्छासे परवाने ले, इससे अच्छी तो दूसरी कोई बात हो ही नही सकती, पर इसको मै समझौतेका लक्षण नही मानता। समझौतेका अर्थ ही यह होता है कि जहा सिद्धान्तका भेद न हो वहा दोनो पक्ष खुद बहुत-कुछ करे और झगडा निबटाले। हमारा सिद्धान्त यह है कि हम खूनी कानूनके डरसे तो, उसके अनुसार जो कुछ करनेमें कोई बाधा न हो वह काम भी न करे। इस सिद्धान्तपर हमें अटल रहना है। सरकारका सिद्धान्त यह है कि हिंदुस्तानी नाजायज तौरपर ट्रासवालमे दाखिल न हो। इसके लिए बहुतसे भारतीय ऐसे परवाने निकलवा ले जिनपर वह पहचानके निशान हो और जिनकी अदल-बदल न हो सके, और यों गोरोका शक दूर कर उन्हे निर्भय कर दें। सरकार इस सिद्धान्तको नहीं छोडने की। आजतक अपने व्यवहारसे हमने इस सिद्धान्तको स्वीकार भी कर रखा है। अत उसका विरोध करनेकी बात सोचे तो भी जबतक नये कारण उत्पन्न न हो तबतक उसके विरुद्ध नही लडा जा सकता। हमारी लडाई इस सिद्धान्तको काटनेके लिए नही, बल्कि कानूनका काला दाग दूर करनेके लिए है। अत कौममे जो नया और प्रचड बल प्रकट हुआ है उसका उपयोग करनेके लिए अब हम एक नई बातको सामने रखें तो सत्याग्रहीके सत्यको लाछन

लगेगा। अत. सच पूछिये तो इस समझौतेका विरोध किया ही नही जा सकता।

"अब इस दलीलपर विचार करे कि खूनी कानून रद किये जानेके पहले हम अपना हाथ कैसे कटा दे ? क्यों अपने शस्त्र छोड दे ? इसका जवाब तो वहुत आसान है। सत्याग्रही भयको तो कोसो दूर रखता है। इसलिए विश्वास करते वह कभी डरता ही नही। बीस वार विश्वासका घात हो तो भी इक्कीसवी बार विश्वास करनेको तैयार रहता है। कारण यह है कि सत्याग्रही अपनी नाव विश्वासके सहारे ही चलाता है और विश्वास रखनेमे हम अपने हाथ कटा देते है यह कहना यह प्रकट करना है कि हम सत्याग्रहको नही समझते।

"मान लीजिये, हमने अपनी इच्छासे नये परवाने ले लिये। पीछे सरकार विश्वासघात करती है और कानूनको रद नही करती। तो क्या उस वक्त हम सत्याग्रह नही कर सकते ? यह परवाना ले लेनेपर भी हम मुनासिव वक्तपर उसे दिखानेसे इन्कार कर दे तो उसकी क्या कीमत होगी ? तव जो हजारो हिंदुस्तानी छिपे तौरपर ट्रासवालमे दाखिल हो जाए। सरकार उनमे और हममे किस तरह अंतर कर सकेगी ? अत कानून हो या न हो, किसी भी दशामे सरकार हमारी सहायताके विना हमपर प्रतिवध नही लगा सकती। कानूनका अर्थ इतना ही है कि जो रोक सरकार लगाना चाहती है उसे हम स्वीकार न करे तो हम दडके पात्र होते है। और आमतौरसे ऐसा होता है कि मनुष्य सजाके डरसे अकुशके अधीन होते है; पर सत्याग्रही इस सामान्य नियमका उल्लघन करता है। वह अकुशके अधीन होता है तो सजाके डरसे नही; वल्कि उसके माननेमे लोक-कल्याण है, यह मानकर अपनी इच्छासे वैसा करता है। ठीक यही स्थिति हमारी इस वक्त इन परवानोके वारेमे है। इस स्थितिको सरकार कैसा ही विश्वास-

घात करके भी वदल नही सकती। इस स्थितिको उत्पन्न करनेवाले हम है और उसे वदल भी हमही सकते है। जवतक सत्याग्रहका हथियार हमारे हाथमे है तवतक हम स्वतत्र और निर्भय है।

"और अगर कोई मुझसे यह कहे कि कौममे जो वल आज आ गया है वह फिर आनेवाला नही तो मै यह जवाव दूगा कि यह कहनेवाला सत्याग्रही नही, वह सत्याग्रहको समझता ही नही। यह कहनेका अर्थ तो यह होता है कि आज जो वल प्रकट हुआ है वह सच्चा नही है, वल्कि नशेके जैसा झूठा और क्षणिक है। यह वात सही हो तो हम विजयके अधिकारी नही। और जीत जाए तो जीती हुई वाजी भी हार जायगे। मान लीजिये, सरकारने खूनी कानूनको रद कर दिया। पीछे हमने ऐच्छिक परवाने ले लिये। इसके वाद सरकारने यही खूनी कानून फिर पास कर दिया और हमे परवाने लेनेको मजवूर करने लगे, तो उस वक्त उसे कौन इससे रोक सकता है? और अगर इस वक्त अपने वलके विपयमे हमे शंका हो तो उस वक्त भी हमारी ऐसी ही दुर्दशा होगी। अत चाहे जिस दृष्टिसे हम इस समझौतेको देखे, हम यह कह सकते है कि उसे करनेमे कौम कुछ खोयेगी नही, वल्कि कुछ नफेमे ही रहेगी। और मै तो यह भी मानता हू कि हमारे विरोधी भी हमारी नम्रता और न्याय-वुद्धिको पहचान लेनेपर विरोध त्याग देगे या उसे नरम कर देगे।"

इस प्रकार जिन एक-दो आदमियोने उस छोटी-सी मडलीमे विरोध प्रकट किया था उनके मनका मै पूरा समाधान कर सका। पर आधी रातवाली वडी सभामे जो ववडर उठनेवाला था उसका तो मुझे स्वप्नमे भी ख्याल नही था। मैने सभाको पूरा समझौता समझाया और कहा—"इस समझौतेसे कौमकी जिम्मेदारी वहुत वढ गई है। हमे यह दिखानेके लिए अपनी खुशीसे

परवाना ले लेना है कि हम धोखा देकर या नाजायज तरीकेसे एक भी हिंदुस्तानीको ट्रांसवालमें घुसाना नही चाहते। कोई परवाना न ले तो इस वक्त तो उसे कोई सजा भी नही दी जायगी; पर न लेनेका अर्थ यही होगा कि कौम समझौतेको मंजूर नही करती। अत यह जरूरी है कि आप लोग हाथ ऊंचा करके समझौतेका स्वागत करे। यह मै चाहता भी हू। पर इसका अर्थ यही होगा और मै यही करूंगा कि आप हाथ उठानेवाले लोग, ज्योही नये परवाने निकालनेका प्रबंध हो जाय, परवाने लेनेमे लग जाएंगे और आजतक जैसे परवाना न लेनेको समझानेके लिये आपमेसे बहुतेरे स्वयंसेवक बने थे वैसे अब लोगोको परवाने लेनेको समझानेके लिए स्वयसेवक बनेगे। जो काम हमे करना है वह कर देगे तभी इस जीतका सच्चा फल हम पा सकेगे।"

ज्योही मेरा भाषण पूरा हुआ, एक पठान भाई खड़े हुए और मुझपर सवालोकी झड़ी लगादी :

"इस समझौतेके अंदर हमे दसो उगलियोंकी छाप देनी होगी न ?"

"हां और नही भी। मेरी अपनी सलाह तो यही होगी कि सब लोग दसो उगलियोकी छाप देदे; पर जिन्हे धर्मकी बाधा हो या जो निशानी देनेमे अपने आत्मसम्मानकी हानि मानते हों वे न दे तो भी चल सकता है।"

"आप खुद क्या करेंगे ?"

"मैने तो दसों उगलियोकी छाप देनेका निश्चय कर रखा है। मै खुद न दू और दूसरोको देनेकी सलाह दू, यह मुझसे तो हो ही नही सकता।"

"दसो उंगलियोकी निशानीके बारेमे आप बहुत लिखा करते थे। यह तो अपराधियोसे ही ली जाती है, इत्यादि सिखानेवाले आप ही थे। यह लडाई दस उगलियोकी छापकी

लडाई है, यह कहनेवाले भी आप ही है। ये सारी बाते आज कहाँ गई ?"

"दसो उगलियोकी निशानीके बारेमें जो कुछ मैने लिखा है उसपर आज भी कायम हू। मै आज भी कहता हू कि उगलियोंकी छाप हिदुस्तानमे जरायम पेशा या अपराधी जातियोसे ली जाती है। मैने कहा है और आज भी कहता हू कि खूनी कानूनके अनुसार दसों उगलियोकी निशानी देना तो क्या, दस्तखत करना भी पाप है। यह बात भी सच है कि उगलियोकी निशानीपर मैने बहुत जोर दिया है और मै मानता हू कि वैसा करनेमें मैने समझदारीसे काम लिया। खूनी कानूनकी बारीक बातोपर, जिन्हे अबतक करते आ रहे थे, जोर देकर कौमको समझानेके बदले दसो उगलियोकी निशानी जैसी बड़ी और नई बातपर जोर देना आसान था और मैने देखा कि कौम इस बातको तुरत समझ गई।

"पर आजकी स्थिति भिन्न है। मै जोर देकर कहना चाहता हू कि जो बात कल अपराध थी वह आजकी नई स्थितिमे भलमनसी और शराफतका निशान है। आप मुझसे जबर्दस्ती सलाम कराना चाहें और मै करू तो मै आपकी, दुनियाकी और खुद अपनी निगाहमें भी गिर जाऊगा। पर मै आपको अपना भाई या इसान समझकर अपनी मर्जीसे सलाम करू तो यह मेरी नम्रता और सज्जनताका सबूत होगा और खुदाके दरबारमे भी यह बात मेरी नेकीके खातेमें लिखी जायगी। इसी दलीलसे मै कौमसे उगलियोकी निशानी देनेकी सलाह देता हू।"

"हमने सुना है कि आपने कौमके साथ दगा की है और १५ हजार पौड लेकर उसे जनरल स्मट्सके हाथ बेच दिया है। हम कभी दसो उंगलियोकी निशानी देनेवाले नही और किसीको देने देगे भी नही। मै खुदाकी कसम खाकर कहता हू

कि जो आदमी एशियाटिक दफ्तरमे जानेमे अगुआई करेगा उसे जानसे मार डालूगा।"

"पठान भाइयोकी भावना मै समझ सकता हू। मुझे विश्वास है कि मैने घूस खाकर कौमको बेच दिया है इसपर कोई भी विश्वास नही करेगा। यह बात मैने पहले ही समझा दी है कि जिन लोगोने उगलियोकी निशानी न देनेकी कसम खाई है उन्हे कोई निशानी देनेके लिए मजबूर नही कर सकता और जो कोई पठान या दूसरे भाई उगलियोके निशान दिये बिना परवाना लेना चाहे उन्हे परवाना दिलानेमे मै पूरी-पूरी मदद करूगा। मै आपको इतमीनान दिलाता हूं कि बिना उगलियोकी निशानी दिये वे ऐच्छिक परवाना ले सकेंगे।

"मुझे यह बात कबूल करनी होगी कि मार डालनेकी धमकी मुझे पसंद नही आती। मै यह भी मानता हूं कि किसी-को मार डालनेकी कसम खुदाके नामपर नही खाई जा सकती। इसलिए मै यही माने लेता हू कि क्रोधके आवेशमे आकर ही इन भाईने मार डालनेकी कसम खाई है, पर इस कसमपर अमल करना हो या न करना हो, समझौता करनेमे मुख्य आदमी होनेकी हैसियतसे और कौमके सेवकके रूपमे मेरा स्पष्ट कर्तव्य है कि उगलियोकी निशानी देनेमे मै ही अगुआ बनूं। और मै तो ईश्वरसे प्रार्थना करूंगा कि वह मुझको ही इसका श्रेय दे। मरना तो एक दिन सभीको है। रोग या इस तरहके दूसरे कारण-से मरनेके बजाय मै अपने किसी भाईके हाथसे मरूं तो इसमें मुझे तनिक भी दुख नही होगा। और अगर उस वक्त भी मै तनिक भी क्रोध या मारनेवालेके प्रति द्वेष न करूं तो मै जानता हू कि मेरा तो भविष्य बनेगा ही और मारनेवाला भी पीछे तो समझ ही जायगा कि मै सर्वथा निर्दोष था।"

ऊपरके सवाल क्यो किये गये, यह बता देना जरूरी है। जिन लोगोने खूनी कानूनके आगे सिर झुका दिया था उनके

प्रति यद्यपि कोई वैर-भाव नही रखा जाता था, फिर भी उस कार्यके विषयमे तो खुले और कडे शब्दोमे बहुत-कुछ कहा और 'इडियन ओपीनियन'मे लिखा गया था। इससे कानूनको मान लेनेवालोका जीवन अप्रिय अवश्य हो गया था। उन्होने कभी सोचा ही न था कि कौमका बडा भाग अपने निश्चयपर अटल रहेगा और इतना जोर दिखायेगा कि समझौता होनेकी नौबत आ जाय। पर जब १५० से ऊपर सत्याग्रही जेलमे पहुच गये और समझौतेकी बातचीत चलने लगी तब कानूनकी शरण जानेवालोको और भी नागवार लगा और कुछ ऐसे भी निकले जो चाहते थे कि समझौता न हो और हो जाय तो उसको तुडवा देना भी चाहते थे।

ट्रासवालमे रहनेवाले पठानोकी सख्या बहुत थोडी थी। मेरा ख्याल है कि कुल मिलाकर ५० से अधिक नही होगे। उनमे बहुतेरे बोअर-युद्धके समय आये हुए सिपाही थे। जैसे युद्ध-कालमे आये हुए बहुतसे गोरे दक्षिण अफ्रीकामे आबाद हो गये, वैसे ही लडाईके सिलसिलेमे आये हुए पठान और दूसरे हिंदुस्तानी भी बस गये थे। उनमेसे कुछ मेरे मवक्किल भी थे और दूसरे तौरपर भी उनके साथ मेरा खासा परिचय हो गया था। वे स्वभावसे बड़े भोले होते है। शूरवीर तो होते ही है। मारना और मरना उनकी निगाहमे बहुत मामूली बाते है। उनको किसी पर गुस्सा आये तो उसको पकडकर पीटते अथवा उनकी भापामे कहना चाहे तो उसकी पीठ गरम करते है और कभी-कभी जानसे भी मार डालते है। इसमे वे नितात निष्पक्ष होते है। सगा भाई हो तो उसके साथ भी यही बर्ताव करेगे। पठानोंकी तादाद यहा इतनी कम है, फिर भी उनमें आपसमे तकरार होनेपर मार-पीटकी नौबत आ ही जाती है। ऐसे झगड़ोमे मुझे अकसर बीच-बचाव करना पडता। इसमे भी जब विश्वासघातकी बात हो तब तो वे

अपना गुस्सा रोक ही नही सकते। न्याय पानेके लिए उनके पास सबसे बढिया कानून मारपीट ही है।

पठानोने इस लड़ाईमे पूरा हिस्सा लिया था। उनमेसे एक आदमीने भी खूनी कानूनके सामने घुटने नही टेके थे। उनको बहकाना आसान है। उंगलियोकी निशानी देनेके बारेमे गलतफहमी होना समझमे आ सकनेवाली बात है और इसको लेकर उनको भडकाना तनिक भी कठिन नही था। घूस न खाई होती तो उंगलियोकी निशानी देनेकी बात मैं क्यों कहता, इतना कहना पठानोको भ्रममे डालनेके लिए काफी था।

इसके सिवा ट्रांसवालमे एक और पक्ष भी था। यह था उन लोगोका जो बिना परवाना लिये छिपे तौरपर ट्रांसवालमें आये थे या जो दूसरे हिंदुस्तानियोको गुप्तरीतिसे बिना परवाना लिये या जाली परवानोके जरिये ट्रांसवालमें प्रविष्ट कराया करते थे। इस पक्षका स्वार्थ समझौता न होनेमे ही था। जबतक लड़ाई चल रही हो तबतक किसीको परवाना दिखाना होता ही नही। इसलिए ये लोग निर्भय होकर अपना रोजगार चलाते रहते। लड़ाई चलती रहनेके दरमियान ये लोग जेल जानेसे आसानीसे बच सकते थे। अत लडाई लबे अरसेतक चले तो यह पक्ष इसे अपने लिए अच्छा ही मानता। इस प्रकार ये लोग भी पठानोको समझौतेके खिलाफ भडका सकते थे। अब पाठक समझ सकते है कि पठान यकायक क्यो उत्तेजित हो गये थे।

पर इस मध्यरात्रिके उद्गारोंका असर सभाके ऊपर कुछ भी नही हुआ। मैंने सभाका मत मांगा था। सभापति और दूसरे नेता दृढ थे। इस सवादके बाद सभापतिने भाषण दिया, जिसमे समझौतेका स्वरूप समझाया और उसको मजूर कर लेनेकी आवश्यकता बताई। अनन्तर उन्होंने सभाका मत लिया। दो-चार पठान जो उस वक्त वहां मौजूद

थे उनके सिवा और सबने समझौतेको स्वीकार किया और मैं रातके दो या तीन बजे घर पहुचा। सोना तो कहासे मिलता, क्योंकि मुझे तडके ही उठकर दूसरोंको छुड़ानेके लिए जेल जाना था। ७ बजे मैं जेलपर पहुंच गया। सुपरिंटेंडेंटको टेलीफोनसे हुक्म मिल गया था और वह मेरी राह देख रहे थे। एक घटेके अदर सभी सत्याग्रही कैदी छोड दिये गये। अध्यक्ष और दूसरे भारतीय उन्हे लेनेके लिए आये थे। जेलसे हमारा जुलूस पैदल सभा-स्थानको गया। वहा सभा हुई। यह दिन और दूसरे दो-चार दिन यों ही दावतो आदिमे तथा लोगोंको समझानेमे लग गये।

ज्यो-ज्यों दिन बीतते गये त्यो-त्यों एक ओर तो लोग समझौतेका अर्थ अधिकाधिक समझने लगे और दूसरी ओर गलतफहमी भी बढने लगी। उत्तेजनाके कारण तो ऊपर हम देख ही चुके हैं। उनके अतिरिक्त जनरल स्मट्सको लिखे हुए पत्रमे भी भ्रमका सबल कारण था। इसलिए जो अनेक प्रकारकी दलीले पेश की जा रही थी उनका जवाब देनेमे मुझे जो तकलीफ हुई वह उन कष्टोसे कही अधिक थी जो लडाई चलती रहनेके दिनोंमे मुझे उठाने पडे थे। लडाईके दिनोमे जिसे हम अपना दुश्मन मानते हो उसके साथ व्यवहार करनेमे कठिनाई पडती है; पर मेरा अनुभव यह है कि इन कठिनाइयोको हम आसानीसे दूर कर सकते है। उस वक्त आपसके झगड़े, अविश्वास आदि होते ही नही या बहुत कम होते हैं। पर युद्ध समाप्त होनेके बाद आपसके विरोध आदि जो सामने आई हुई आपत्तिको देखकर दबे रहते हैं, बाहर आ जाते है और लडाईका अत समझौतेसे हुआ हो तो उसमे दोष निकालनेका काम सदा सहल होता है। इससे बहुतेरे उसे उठा लेते है और जहां व्यवस्था राष्ट्रीय या लोकतंत्रीय हो वहा छोटे-बड़े सबको जवाब देना और उनका समा-

धान करना पड़ता है। यह ठीक ही है। जितना अनुभव आदमी ऐसे समय, यानी दोस्तोंके दरमियान होनेवाले झगड़े या गलतफहमीके समय प्राप्त कर सकता है उतना विरोधीके सामने लड़ते हुए नहीं प्राप्त किया जा सकता। विरोधीके साथ की जानेवाली लड़ाईमें एक तरहका नशा रहता है और इससे उसमे उल्लास होता है। पर जब मित्रोंके बीच गलतफहमी या विरोध उत्पन्न हो जाता है तब वह असाधारण घटना माना जाता है और सदा दुःखद ही होता है। फिर भी आदमीकी परख तो ऐसे ही वक्त होती है। मेरा तो यह अपवाद-रहित अनुभव है और मुझे जान पडता है कि ऐसे ही समयमे मैं अपनी सारी आंतरिक सम्पत्ति प्राप्त कर सका हू ? युद्धका शुद्धस्वरूप जो लोग लडते-लड़ते नही समझ सके थे वे समझौतेकी बातचीतके दरमियान और उसके बाद उसे पूरी तरह समझ गये। सच्चा विरोध तो पठानोसे आगे नही बढा।

यो करते-कराते दो-तीन महीनेमें एशियाटिक दफ्तर अपनी इच्छासे लिया जानेवाला नया परवाना निकालनेको तैयार हो गया। परवानेका रूप बिलकुल बदल गया था। उसे बनानेमे सत्याग्रही मंडलके साथ मशविरा कर लिया गया था।

१९०८ की १० वी फरवरीको सवेरे हम कुछ आदमी परवाने लेनेके लिए जानेको तैयार हुए। लोगोको खूब समझा दिया गया था कि परवाने लेनेका काम कौमको झटपट कर डालना है। यह भी तै कर लिया गया था कि पहले दिन नेतागण ही सबसे पहले परवाने ले। इसमे उद्देश्य यह था कि लोगोकी हिचक दूर हो जाय, एशियाटिक दफ्तरके अफसर-अहलकार अपना काम सौजन्यके साथ करते है या नही, इसको देख ले और कामकी और तरह पर निगरानी भी रखे।

मेरा दफ्तर ही सत्याग्रह-मडलका भी दफ्तर था। वहा पहुचा तो दफ्तरकी दीवारके बाहर मीर आलम और उसके साथियोको खडा पाया। मीर आलम मेरा पुराना मवक्किल था और अपने सभी कामोमे मेरी सलाह लिया करता था। बहुतसे पठान ट्रासवालमे घास या नारियलके रेशेके गद्दे बनानेका काम करते है। इसमे वे अच्छा नफा करते है। ये गद्दे वे मजदूरोके जरिये बनवाते और पीछे अच्छे नफेपर बेचते है। मीर आलम भी यही काम करता था। वह छ' फुटसे अधिक ऊचा होगा। लबे-चौडे कद और दुहरे बदनका था। आज पहली ही बार मैने मीर आलमको दफ्तरके भीतरके बजाय बाहर खडा देखा और हमारी आखें मिलनेपर भी उसने सलामके लिए हाथ नही उठाया तो यह भी पहली ही बार हुआ। पर मैने सलाम किया तो उसने भी जवाब दिया। अपने अभ्यासके अनुसार मैने पूछा, "कैसे हो?" मुझे ऐसा खयाल है कि उसने जवाबमे "अच्छा हू" कहा। पर आज उसका चेहरा रोजकी तरह हसता हुआ नही था। मैने उसकी आखोमे क्रोधकी झलक देख ली और अपने मनमे इसे नोट कर लिया। यह भी सोचा कि आज कुछ होनेवाला है। मै दफ्तरके अदर गया। अध्यक्ष ईसप मिया और दूसरे मित्र भी आ पहुचे और हम एशियाटिक दफ्तरकी ओर रवाना हुए। मीर आलम और उसके साथी भी साथ हो लिये।

एशियाटिक आफिसके लिए लिया हुआ मकान फॉन ब्रांडिस स्क्वायरमे था और मेरे दफ्तरसे एक मीलके अदर ही होगा। वहाँ पहुचनेके लिए आम सडकोसे होकर जाना था। फॉन ब्रांडिस स्ट्रीटसे जाते हुए हम मेसर्स आर्नाट एड गिब्सनकी कोठीसे आगे पहुचे थे, जहासे एशियाटिक दफ्तरका तीन मिनिटसे अधिकका रास्ता न था कि मीर आलम

मेरी बगलमें आ गया और पूछा, "कहां जाते हो ?" मैंने जवाब दिया—"मैं दस उंगलियोंकी निशानी देकर रजिस्ट्रीका सार्टीफिकेट लेना चाहता हूं। अगर तुम भी चलो तो तुम्हे दसों उंगलियोंकी निशानी देनेकी जरूरत नही है। केवल दोनो अंगूठोंकी निशानी दिलाकर मैं पहले तुम्हे सार्टीफिकेट दिला दूंगा, फिर अपनी उंगलियोंकी छाप देकर अपना सार्टीफिकेट निकलवाऊंगा।" मै यह कहही रहा था कि इतनेमें मेरी खोपडीपर लाठी गिरी और मैं 'हे राम' कहते हुए बेहोश होकर मुंहके बल गिरा। इसके बाद जो कुछ हुआ उसकी मुझे खबर नही। पर मीर आलम और उसके साथियोंने और लाठियां मारी और लातें भी जड़ी। उनमेंसे कुछको ईसप मियां और थंबी नायडूने अपने ऊपर ले लिया। इससे वे भी थोडी मार खा गये। इतनेमें शोर मचा। आते-जाते गोरे इकट्ठा हो गये। मीर आलम और उसके साथी भागे; पर गोरोंने उन्हे पकड लिया। इस बीच पुलिस भी आ पहुंची और वे पुलिसके हवाले कर दिये गये।

बगलमें ही एक यूरोपियन मि० गिब्सनका दफ्तर था। लोग मुझे वहां उठा ले गये। थोडी देरमें मुझे होश आया तो मैंने रेवरेंड डोकको अपने ऊपर झुका हुआ पाया। उन्होंने मुझसे पूछा—"कैसे हो ?" मैंने हंसकर जवाब दिया—"मैं तो अच्छा हूं, पर मेरे दांत और पसलियां दुख रही हैं।" मैंने पूछा—"मीर आलम कहां है ?" उन्होंने जवाब दिया—"वह तो पकड लिया गया है और उसके साथ दूसरे लोग भी।" मैंने कहा—"उन्हे छूटना चाहिए।" मि० डोकने जवाब दिया—"यह सब तो होता रहेगा। यहां तो तुम एक पराये दफ्तरमें पड़े हो। तुम्हारा होंट फट गया है। पुलिस तुम्हे अस्पताल ले जानेको तैयार है। पर तुम मेरे यहां चलो तो मिसेज डोक और मैं जितनी तुम्हारी सेवा हमसे

हो सकती है करेंगे।" मैंने कहा—"मुझे तो अपने ही यहा ले चलिये। पुलिस जो सहायता करना चाहती है उसके लिए उसको धन्यवाद दीजिए, पर उन लोगोसे कह दीजिये कि मै आपके यहा जाना पसद करता हूं।"

इतनेमे एशियाटिक आफिसर (रजिस्ट्रार आव एशियाटिक्स) मि० चमनी भी आ पहुचे। एक गाड़ीमे लिटाकर मुझे इस भले पादरीके मकानपर ले गये, जो स्मिट स्ट्रीटमे था। डाक्टर बुलाया गया। इस बीच मैंने मि० चमनीसे कहा—"मेरी आशा तो यह थी कि आपके दफ्तरमे आकर और दसो उगलियोकी निशानी देकर पहला परवाना अपने नाम निकलवाऊंगा। यह ईश्वर को मजूर नही था। पर अब मेरी प्रार्थना है कि आप अभी जाकर कागज ले आए और मेरी रजिस्ट्री कर ले। मै आशा करता हूं कि आप मुझसे पहले और किसीकी रजिस्ट्री नही करेगे। उन्होने जवाब दिया—"ऐसी क्या उतावली है? अभी-अभी डाक्टर आते है। आप आराम करे। पीछे सब होता रहेगा। दूसरोंको परवाने दूगा तो भी आपका नाम पहला रहेगा।" मैंने कहा—"ऐसे नही हो सकता। मेरी भी प्रतिज्ञा है कि मै जीवित रहा और ईश्वरको मजूर हुआ तो सबसे पहले खुद मै ही परवाना लूगा। इसीसे मेरा आग्रह है कि आप कागज ले आए।" इसपर वह कागज लाने गये।

मेरा दूसरा काम था एटर्नी जनरल अर्थात् बड़े सरकारी वकीलको इस आशयका तार भेजना—"मीरआलम और उसके साथियोने मेरे ऊपर जो हमला किया उसके लिए मै उन्हे दोषी नही मानता। जो हो, उनपर फौजदारी मुकदमा चले यह मै नही चाहता। मुझे आशा है कि मेरी खातिर आप उन्हे छोड़ देंगे।" इस तारके जवाबमे मीर आलम और उसके साथी छोड दिये गये।

पर जोहान्सबर्गके गोरोंने एटर्नी जनरलको इस तरहका कड़ा पत्र लिखा—"अपराधियोंको सजा मिलनेके बारेमें गांधीके विचार कुछ भी हों, वह इस देशमें नहीं चल सकते। उनपर जो मार पड़ी है उसके विषयमें वह भले ही कुछ न करें, पर अपराधियोंने उन्हें घरके कोनेमें नहीं मारा, सरेआम बीच रास्तेमें मारा है। यह सार्वजनिक अपराध माना जायगा। कितने ही अंग्रेज भी इस अपराधकी शहादत दे सकते हैं। अपराधियोंको पकड़ना ही होगा।" इस आन्दोलनके कारण सरकारी वकीलने मीर आलम और उसके एक साथीको फिर गिरफ्तार कराया और उन्हें तीन-तीन महीनेकी कड़ी कैदकी सजा मिली। हां, मैं गवाहकी हैसियतसे तलब नहीं किया गया।

अब हम फिर बीमारके कमरेकी ओर निगाह फेरें। मि० चमनी कागजात लेने गये, इतनेमें डाक्टर थ्वेट्स आ पहुंचे। उन्होंने मुझे देखा। मेरा ऊपरका होंट फट गया था। उसके और गालके जख्ममें भी टांका लगाया। पसलियों आदिको देखकर उनमें लगानेके लिए दवा लिखी और जबतक टांका न खुले तबतक बोलनेको मना किया। खानेमें भी पतली चीजोंको छोड़कर और कुछ खानेको मना किया। उन्होंने यह निदान किया कि मुझे कहीं भी बहुत गहरी चोट नहीं आई है। हफ्तेके अंदर अपना मामूली काम-काज करने लायक हो जाऊंगा। हां, एक-दो महीने इसका ध्यान रखना होगा कि शरीरपर अधिक श्रम न पड़े। यह कहकर वह विदा हुए। यों मेरा बोलना बंद हुआ, पर मेरा हाथ तो चल ही सकता था। मैंने कौमके लिए अध्यक्षकी मारफत एक छोटा गुजराती संदेश लिखकर प्रकाशित करनेके लिए दे दिया। वह इस प्रकार है :

"मेरी तबीयत अच्छी है। मिस्टर और मिसेज डोक

मेरे लिए जान दे रहे हैं। मैं थोडे ही दिनोमें अपनी ड्यूटीपर फिर हाजिर हो जाऊगा। जिन्होने मुझे मारा है उनपर मुझे गुस्सा नही है। उन्होने नासमझीवश यह काम किया। उनपर कोई मुकदमा चलानेकी जरूरत नही। दूसरे लोग शात रहेगे तो इस घटनासे भी हमे लाभ ही होगा।

"हिंदू भाई अपने मनमे तनिक भी रोप न रखे। मैं चाहता हूं कि इस घटनासे हिंदू-मुसलमानके बीच कटुता पैदा न होकर मिठास उत्पन्न हो, ईश्वरसे ऐसी प्रार्थना करता हू।

"मुझपर मार पडी और उससे ज्यादा पडे तो भी मैं तो एक ही सलाह दूगा। और वह यह कि आमतौरसे सभी दस उगलियोकी निशानी दे दे। जिनके लिए सच्ची धार्मिक अडचन हो उन्हे सरकार छूट देगी। इसमें ही कौमका और गरीबोका भला है और इसीसे उनकी रक्षा होगी।

"अगर हम सच्चे सत्याग्रही होगे तो मार या भविष्यमे किये जानेवाल विश्वासघातके डरसे तनिक भी नही डरेगे।

"जो लोग दसो उगलियोकी निशानीकी वातको लेकर अडे हुए हैं उन्हे मैं अज्ञानी समझता हू।

"मैं परमात्मासे प्रार्थना करता हू कि कौमका भला करे, उसे सही रास्तेपर लगाये और हिंदू-मुसलमानोको मेरे रक्तके एक करे।"

मि० चमनी आये । बड़ी मुश्किलसे मैंने उगलियोकी निशानी दे दी। मैंने देखा कि इस वक्त उनकी आखे गीली हो रही थी। इनके खिलाफ तो मुझे कड़े लेख भी लिखने पडे थे। पर अवसर आनेपर मनुष्यका हृदय कितना कोमल हो जाता है, इसका चित्र मेरी आखोके सामने खडा हो गया।

पाठक यह अनुमान तो कर ही लेगे कि यह सारी विधि पूरी होनेमे कुछ मिनटसे अधिक न लगे होगे। मि० डोक

और उनकी भली पत्नी इसके लिए चिंतित हो रहे थे कि मैं बिलकुल शांत और स्वस्थ हो जाऊं। घायल होनेके बाद भी मुझे मानसिक श्रम करते देख उन्हें दुःख हो रहा था। उन्हें डर था कि शायद मेरी तबियतपर इसका बुरा असर पड़े। इसलिए इशारा करके और दूसरी युक्तियोंसे मेरी खाटके पाससे सबको हटा ले गये और मुझे लिखने या कोई भी काम करनेसे मना कर दिया। मैंने प्रार्थना की और उसे लिखकर जताया कि मैं बिलकुल शांत होकर सो जाऊं, इसके पहले और इसके लिए उनकी बेटी आलिव, जो उस वक्त निरी बालिका थी, मेरा प्रिय अंग्रेजी भजन "लीड काइंडली लाइट" (प्रेमल ज्योति) मुझे सुना दे। मि० डोकको मेरी यह प्रार्थना बहुत रुची। अपने मधुर हास्यसे उन्होंने मुझे इसकी सूचना दी और आलिवको इशारेसे बुलाकर आज्ञा की कि दरवाजेके बाहर खड़ी रहकर धीमे स्वरसे उक्त भजन गाये। ये पंक्तियां लिखते समय यह सारा दृश्य मेरी आंखोंके सामने फिर रहा है और आलिवका दिव्य स्वर आज भी मेरे कानोंमें गूंज रहा है।

इस प्रकरणमें मैं ऐसी बहुतसी बातें लिख गया हूं जिन्हें मैं इस प्रकरणके लिए अप्रस्तुत मानता हूं और पाठक भी मानेंगे। फिर भी उनमें एक संस्मरण और बढ़ाये बिना मैं इस प्रकरणको पूरा नहीं कर सकता। इस समयके सभी संस्मरण मेरे लिये इतने पवित्र हैं कि उन्हें मैं छोड़ नहीं सकता। डोक कुटुंब-की सेवाका वर्णन मैं किस तरह कर सकता हूं?

जोसफ डोक बैपटिस्ट संप्रदायके पादरी थे। उनकी उम्र उस वक्त ४६ बरसकी थी। दक्षिण अफ्रीका आनेके पहले न्यूजीलैंडमें थे। इस हमलेसे कोई छः महीने पहलेकी बात है। वह मेरे दफ्तरमें आये और अपने नामका कार्ड मेरे पास भेजा। उसमें नामके साथ 'रेवरेंड' विशेषण लगा था। इससे

मैंने यह गलत अनुमान कर लिया कि जैसे कितने पादरी मुझे ईसाई बनानेके इरादेसे या लड़ाई बंद करनेके लिए समझाने आते है, वैसे ही ये भी आये होगे या बुजुर्ग बनकर लडाईमे हमदर्दी दिखाने आये होगे। पर मि० डोक अदर आये और हममे बात-चीत होते दो-चार मिनटसे अधिक न हुए होगे कि मैंने अपनी भूल देख ली और दिल-ही-दिलमे उनसे क्षमा मागी। उस दिनसे हम गहरे दोस्त हो गये। अखबारोमे लडाईके जो समाचार छपते थे उन सबसे उन्होने अपनी जानकारी प्रकट की। उन्होने कहा—"इस लड़ाईमे आप मुझे मित्र ही मानियेगा। मुझसे जो कुछ सेवा बन पडे उसे मै अपना धर्म समझकर करना चाहता हूं। ईसाके जीवनका चितन करके जो कुछ मैंने सीखा है वह यही है कि दुखियोंका दुख बटाना चाहिए। यो हमारा परिचय हुआ और दिन-दिन हमारा स्नेह-संबंध बढ़ता ही गया।

डोकका नाम इस इतिहासमे इसके बाद अनेक प्रसंगोमे मिलेगा, पर डोक-कुटुबने मेरी जो सेवा की उसका वर्णन करते हुए इतना परिचय पाठकोको दे देना जरूरी था। रात और दिन कोई-न-कोई तो मेरे पास मौजूद रहता ही। जितने दिन मै वहा रहा उतने दिन उनका घर धर्मशाला बन गया था। हिंदुस्तानियोमे फेरी करनेवाले भी थे। उनके कपडे मजदूरो जैसे होते, मैले भी होते, जूतोंपर सेर भर धूल होती। फिर उनकी गठरी या टोकरी भी साथ होती। इन लोगोसे लगाकर अध्यक्ष जैसों या सभी श्रेणियोके हिंदुस्तानियोका मि० डोकके घर मेला लग रहा था। सब मेरा हाल पूछने और जब डाक्टरकी अनुमति मिल गई तब मुझसे मिलनेके लिए आते। मि० डोक सबको समान आदर-भावसे अपने दीवानखानेमे बैठाते और जबतक मेरा रहना डोक-परिवारके साथ हुआ तबतक

मेरी सेवा-शुश्रूषा और मुझे देखने आनेवाले सैकड़ों लोगोंके आदर-सत्कारमें उनका सारा वक्त जाता। रातमें भी दो-तीन बार आकर चुपचाप मेरे कमरेमें झांक जाते। उनके घरमें मैं कभी यह सोच ही नहीं सका कि यह मेरा घर नहीं है और मेरा प्रिय-से-प्रिय आत्मीय भी होता तो इससे अधिक मेरी सेवा करता।

पाठक यह भी न सोचें कि हिंदुस्तानी कौमकी लड़ाईकी इतनी खुले तौरपर तरफदारी करने या मुझे अपने घरमें आश्रय देनेके कारण मि० डोकको कुछ नुकसान नहीं उठाना पड़ा। अपने पंथके गोरोंके लिए वह एक गिरजाघर चलाते थे। उनकी आजीविका इन पंथवालोंसे ही चलती थी। इन लोगोंमें सभी उदार हृदयके होते हों, सो बात तो है नहीं। हिंदुस्तानियोंके लिए गोरोंमें जो आम नफरत है वह इनमें भी थी ही। डोकने इस बातकी परवा ही नहीं की। हमारे परिचयके प्रारंभमें ही मैंने इस नाजुक विषयकी उनके साथ चर्चा की। उनका जवाब लिखने लायक है। उन्होंने कहा— "मेरे प्यारे दोस्त, ईसाके धर्मको तुम कैसा मानते हो? जो आदमी अपने धर्मकी खातिर सूलीपर चढ़ा और जिसका प्रेम जगत्के जितना ही विशाल था, उसका मैं अनुयायी हूं। जिन गोरोंके द्वारा मेरे त्यागका तुमको भय है अगर मैं चाहता हूं कि उनके सामने ईसाके अनुयायीकी हैसियतमें खड़े होकर तनिक भी शोभा पाऊं तो इस युद्धमें मुझे खुले तौरपर योग देना ही चाहिए और यह करते हुए मुझे मेरा मंडल छोड़ दे तो मुझे इसमें रत्तीभर भी दु:ख नहीं मानना चाहिए। मेरी रोजी उनसे मिलती है यह सही है; पर तुम्हें यह तो नहीं ही मानना चाहिए कि मैं आजीविकाकी खातिर उनके साथ संबंध रखता हूं, या वे मेरी रोजी देनेवाले हैं। मेरी रोजी तो खुदा देता है। वे तो निमित्त मात्र हैं। उनके साथ संबंध रखनेकी मेरी यह

विना कहे मानी हुई शर्त है कि मेरी धार्मिक स्वतत्रतामें उनमेंसे कोई दखल नही देगा। इसलिए मेरे बारेमें तो तुम बेफिक्र रहो। मैं कुछ हिंदुस्तानियोपर मेहरबानी करनेके लिए इस लडाईमे शामिल नही हुआ हू। मेरा तो यह धर्म है और यह समझकर ही इसमे भाग दे रहा हूं। पर सच यह है कि अपने डीन (चर्चके मुखिया) के साथ मैंने इस बारेमें सफाई कर ली है। उन्हे मैंने विनय-पूर्वक जता दिया है कि अगर हिंदुस्तानी कौमके साथ मेरा सबध आपको न रुचता हो तो आप मुझे खुशीसे विदा दे सकते है और दूसरा पादरी नियुक्त कर सकते है। पर उन्होंने मुझे इस विषयमें बिलकुल निश्चित कर दिया है, मुझे बढावा भी दिया है। फिर तुम यह भी न समझो कि सभी यूरोपियन तुम लोगोको एकसी नफरतकी निगाहसे देखते है। बहुतोकी परोक्ष रीतिसे तुम्हारे साथ कितनी हमदर्दी है, इसका अदाजा तुम्हे नही हो सकता; पर मुझे इसका पता होना चाहिए, यह तो तुम मानोगे ही।"

इतनी स्पष्ट बातचीत हो जानेके बाद मैंने इस विषयको फिर कभी छेडा ही नही और पीछे जब मि० डोक अपना धर्मकार्य करते-करते देवलोक सिधारे, हमारी लडाई उस वक्त चल ही रही थी, तब उनके पथवालो—बप्टिस्ट लोगो—ने गिरजेमें सभा की और उसमें स्व० काछलिया और दूसरे हिंदुस्तानियों तथा मुझको भी बुलाया था। उसमें मुझसे बोलनेका अनुरोध किया गया था।

मेरे अच्छी तरह चलने-फिरने लायक होनेमे कोई दस दिन लगे होगे। ऐसी दशा हो जानेपर मैंने इस स्नेही कुटुबसे विदा ली। हम दोनोके लिए यह वियोग बहुत दुखदाई हो गया था।

: २३ :

गोरे सहायक

इस लड़ाईमे इतने अधिक और प्रतिष्ठित यूरोपियनोने हिंदुस्तानी कौमकी ओरसे आगे बढ़कर हिस्सा लिया कि इस स्थानपर उनका एक साथ परिचय करा देना अनुचित नही समझा जायगा। इससे आगे चलकर जब जगह-जगह उनके नाम आयगे तो उस वक्त पाठकोको वे अपरिचित नही लगेगे और लड़ाईके चलते वर्णनमे उनका परिचय देनेके लिए मुझको रुकना भी नही पड़ेगा। जिस क्रमसे मै उनके नाम दे रहा हू उस क्रमको पाठक उनकी प्रतिष्ठा या सहायताके मूल्यका क्रम न माने। उसको कुछ तो उनसे परिचय होनेके कारण और कुछ लड़ाईके जिस-जिस उपविभागमे उनकी मदद मिली उसके क्रमसे रखा हुआ समझना होगा।

इनमे पहला नाम अल्बर्ट वेस्टका आता है। भारतीय जनताके साथ उनका सबध तो लड़ाईके पहले ही जुड गया। मेरा उनका वास्ता तो और भी पहलेका था। मैने जब जोहान्सबर्गमें दफ्तर खोला तब मेरा कुटुब मेरे साथ नही था। पाठकोको याद होगा कि दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोका तार पाकर १९०३ ई० मे मै यकायक रवाना हो गया था और वह भी एक बरसके अदर लौट आनेके इरादेसे। जोहान्सबर्गमे एक निरामिष भोजन-गृह था। उसमे मै नियमसे दोपहर और शामको खाना खाने जाया करता था। वहा वेस्ट भी आते और वही हमारी जान-पहचान हुई। वह एक और यूरोपियनके साझेमे छापाखाना चलाते थे।

१९०४मे जोहान्सबर्गके हिंदुस्तानियोमे भयानक प्लेग फैला। मै पीड़ितोकी सेवामे लग गया और उक्त भोजन-

गृहमे मेरा जाना अनियमित हो गया। जब जाता भी तब मेरी छूत दूसरोको लगनेका डर न रहे इस ख्यालसे और भोजन करनेवालोके आनेके पहले ही वहां हो आता। जब दो दिन लगातार मुझे नही देखा तब वेस्ट घबराये। उन्होने अखबारोंमे देखा कि मैं प्लेग पीड़ितोकी सेवामे लगा हू। तीसरे दिन सवेरे ६ बजे मैं हाथ-मुह धो रहा था कि वेस्टने मेरे कमरेका दरवाजा खटखटाया। मैंने दरवाजा खोला तो वेस्टका हंसता चेहरा दिखाई दिया।

वह तुरंत ही प्रसन्न होकर बोल उठे—"तुम्हें देखकर इतमीनान हुआ। तुम्हे भोजन-गृहमे न देखा तो मैं घबराया। मुझसे तुम्हारी कोई मदद हो सकती हो तो जरूर कहना।"

मैंने हसकर जवाब दिया—"रोगियोकी सेवा ?"

"क्यो नही ? मैं जरूर तैयार हू।"

इस विनोदके बीच मैंने अपनी बात सोच ली। मैंने कहा—"आपसे मुझे दूसरे उत्तरकी आशा ही नही थी। पर इस काममें तो मेरे बहुतसे मददगार है। आपसे तो मैं इससे अधिक कठिन काम लेना चाहता हू। मदनजीत यहां है। 'इंडियन ओपीनियन' के प्रेसको कोई देखने-सम्हालनेवाला नही। मदनजीतको तो मैंने प्लेगके काममें लगा लिया है। आप डर्बन जायं और उस कामको सम्हालें तो यह सच्ची सहायता होगी। इसमे कोई ललचानेवाली चीज तो है ही नही। मैं तो आपको एक बहुत छोटी रकम ही नजर कर सकता हूं—१० पौंड प्रति मास और जो प्रेसमे नफा हो तो उसमे आधा आपका होगा।"

"यह काम है तो जरा अटपटा। मुझे अपने साझीदारसे इजाजत लेनी होगी। कुछ उगाही भी वसूल करना है। पर कोई चिंता नही। आज शामतककी मुहलत मुझे दे सकते है ?"

"हां, छ. बजे हम पार्कमे मिलें।"

"मैं जरूर पहुचूगा।"

इस निश्चयके अनुसार हम मिले। वेस्टने अपने साझी-दारकी अनुमति भी प्राप्त कर ली। उगाहीकी वसूली मुझे सौंप दी और अगले दिन शामकी ट्रेनसे रवाना हो गये। एक महीनेके अंदर उनकी रिपोर्ट मिली—"इस छापेखानेमे नफा तो है ही नही, घाटा बहुत है। उगाही बहुत पड़ी है; पर हिसाब ठीक-ठिकानेसे नही रखा गया है। ग्राहकोंके पूरे नाम नही लिखे है, ठिकाना नही लिखा है। दूसरी अव्यवस्था भी बहुत है। यह सब मै शिकायतके तौरपर नही लिख रहा हूं। मै यहा नफेके लिए नही आया हूं। इसलिए यह ऊपर लिया हुआ काम छोडनेका नही, इसे पक्का समझिये। पर यह नोटिस मै अभीसे दिये देता हू कि आपको लबे अरसेतक घाटा तो भरते ही जाना होगा।"

मदनजीत जोहान्सबर्ग आये थे ग्राहक बनाने और छापे-खानेके प्रबधके बारेमे मुझसे बातचीत करने। मै हर महीने प्रेसका थोडा-बहुत घाटा पूरा किया ही करता था। इससे यह जान लेना चाहता था कि इस गड्ढेमे और कितना पैसा झोंकना होगा। पाठकोको मैं बता चुका हू कि मदनजीतको शुरूके दिनोमें भी छापेखानेके कामका बिलकुल अनुभव नही था। इसलिए यह तो मै शुरूसे ही सोचा करता था कि छापे-खानेका काम जाननेवाले किसी आदमीको उनके साथ कर सकू तो अच्छा हो। इस बीच प्लेग फैला और मदनजीत ऐसे कामोमे तो बहुत कुशल और निर्भय थे। इसलिए उन्हे रोक लिया। इससे वेस्ट जब हमारी सहायता करनेको तैयार हो गये तो मैने इस अनपेक्षित प्रस्तावको सहर्ष स्वीकार कर लिया और उन्हे यह समझा दिया कि उन्हे केवल प्लेगके दिनोंके लिए नहीं, बल्कि सदाके लिए जाना होगा। इसीसे उनकी उपर्युक्त प्रकारकी रिपोर्ट मिली।

पाठक जानते है कि अखवार और छापाखाना अंतमे फिनिक्स गये। वहा वेस्टको माहवार १० पौंडके वदले ३ ही पौंड दिये जाने लगे। इन सारे परिवर्तनोमे उनकी पूरी सम्मति थी। मैने एक दिन भी उनको इसकी चिता करते नही देखा कि उनकी आजीविका कैसे चलेगी। उन्होने धर्मशास्त्र नही पढ़ा था, फिर भी मै उन्हे अत्यन्त धार्मिक मनुष्यके रूपमे जानता हू। वह अतिशय स्वतत्र स्वभावके मनुष्य थे। जिस चीजको जैसी मानते थे वैसी ही कहते थे। कालेको कृष्णवर्ण न कहकर काला ही कहते। उनकी रहन-सहन अत्यन्त सादी थी। मुझसे परिचय होनेके समय ब्रह्मचारी थे और मै जानता हू कि वह ब्रह्मचर्यका पालन करते थे। कुछ वरस वाद वह मा-वापके दर्शन करने विलायत गये और वहांसे व्याह करके लौटे। मेरी सलाहसे अपनी स्त्री, सास और कुवारी वहनको साथ लाये। ये सभी फिनिक्समे निहायत सादगीसे और हर तरह हिंदुस्तानियोसे घुल-मिलकर रहते।

कुमारी एडा वेस्ट (या 'देवी वहन'—हम उन्हे इसी नामसे पुकारते थे) इस वक्त ३५ वरसकी रही होगी, पर अव भी कुमारी थी और वहुत ही पवित्र जीवन विताती थी। फिनिक्समे रहनेवाले वच्चोको रखना, उन्हे अग्रेजी पढाना, सार्वजनिक रसोईमे खाना पकाना, घर साफ करना, हिसाव-किताव रखना, कपोज करना और छापेखानेके दूसरे काम करना—इन सारे कामोमे उन्होने कभी आना-कानी नही की। इस वक्त वे लोग फिनिक्समे नही है तो इसका कारण इतना ही है कि उनका छोटा-सा खर्च भी मेरे हिंदुस्तान लौट आनेके वाद छापेखानेके उठाये नही उठ सका। वेस्टकी सासकी उम्र ८० के ऊपर होगी। वह सिलाईका काम वहुत अच्छा जानती है। अत. इस काममे यह वृद्धा

भी पूरी सहायता करती। फिनिक्समे उनको सब 'दादी' कहते और मानते। मिसेज वेस्टके वारेमे तो कुछ कहनेकी जरूरत ही नही। जब फिनिक्स आश्रमके वहुतसे लोग जेल चले गये तव वेस्ट-कुटुबने मगनलाल गाधीके साथ मिलकर फिनिक्सका काम-काज सम्हाला। अखबार और छापेखानेके वहुतसे काम वेस्ट करते। मेरी और दूसरोकी अनुपस्थितिमे डर्वनसे गोखलेके पास भेजे जानेवाले तार वही भेजते। अतमे जब वेस्ट भी पकड लिये गये (यद्यपि वह तुरत छोड दिये गये) तब गोखले घवराये और ऐंड्रूज तथा पियर्सनको भेजा।

दूसरे है मि० रिच । इनके वारेमे लिख चुका हूं। ये भी लडाईके पहले ही मेरे दफ्तरमे दाखिल हो गये थे। मेरे पीछे मेरा काम सम्हाल सकनेकी आशासे वह वैरिस्टरी पास करने विलायत गये, वहाकी कमेटी (साउथ अफ्रिकन ब्रिटिश इडियन कमेटी) के कामकी सारी जिम्मेदारी उन्हीपर थी।

तीसरे है मि० पोलक। वेस्टकी तरह उनसे जान-पहचान भी अनायास भोजन-गृहमे हुई। वह भी क्षणभरमे 'ट्रासवाल क्रिटिक'के उपसपादककी जगह छोडकर 'इडियन ओपीनियन' मे आये। उन्होने लड़ाईके सिलसिलेमे इगलैड और पूरे हिंदुस्तानमे भ्रमण किया, यह तो सभी जानते है। रिच विलायत गये तो मैने उन्हे फिनिक्ससे अपने दफ्तरमे वुला लिया। वहा आर्टिकिल्स दिये और फिर खुद भी वकील (एटर्नी) हो गये। पीछे व्याह भी किया। मिसेज पोलकको भी हिंदुस्तान जानता है। इन वहनने लड़ाईके काममे अपने पतिका पूरा-पूरा हाथ वटाया। उसमे विघ्न कभी नही डाला। इस वक्त भी ये दपती असहयोगकी लडाईमे हमारे सहयोगी न होते हुए भी हिंदुस्तानकी यथाशक्ति सेवा कर रहे है।

इनके बाद हर्मन केलेनवेकका नंवर आता है। इनका परिचय

भी लड़ाईके पहले ही हुआ। ये जातिके जर्मन है और अंग्रेज-जर्मनोकी लड़ाई न छिड गई होती तो आज हिंदुस्तानमे होते। इनका हृदय विशाल है। इनके भोलेपनकी हद नही। इनकी भावनाए अति तीव्र है। इनका धधा शिल्पीका है। ऐसा एक भी काम नही जिसे करनेमें इन्होने कभी आनाकानी की हो। जब मैंने जोहान्सवर्गकी अपनी गृहस्थी तोड दी तब हम दोनो साथ ही रहते थे। अत. मेरा खर्च वही उठाते। घर तो इनका अपना ही था। खानेके खर्चमे मै अपना हिस्सा देनेको कहता तो नाराज होते और यह कहकर चुप कर देते कि मुझको फिजूल खर्चीसे बचानेवाले तो तुम्ही हो। उनके इस कथनमे सचाई थी; पर यूरोपियनोंके साथ अपने निजी सबंधोके वर्णनका यह स्थान नही। गोखले जब जोहान्सवर्ग आये तब भारतीय जनताने उन्हे केलनबेकके बगलेमे ही उतारा। यह स्थान गोखलेको बहुत पसद आया। गोखलेको विदा करनेके लिए वह मेरे साथ जंजीबारतक गये। पोलकके साथ वह भी पकड़े गये। जेल गये और अतमे जब दक्षिण अफ्रीकासे विदा होकर और इगलैडमे गोखलेसे मिलकर मै हिंदुस्तान लौट रहा था तब केलनबेक मेरे साथ थे और लड़ाईके कारण ही उन्हे हिंदुस्तान आनेकी इजाजत नही मिली और सब जर्मनोके साथ वह भी इगलैडमे नजरबद रखे गये थे। युद्ध समाप्त होनेपर वह जोहान्सवर्गको वापस गये और अपना धधा फिर शुरू किया। जोहान्सवर्गमे जब सत्याग्रही कैदियोके कुटुबोका एक साथ रखनेका विचार हुआ तब केलनबेकने अपना ११०० बीघेका खेत भारतीय जनताको विना किसी लगानके सौप दिया। उसका विवरण पाठक आगे पढ़ेंगे।

अब एक पवित्र बालिकाका परिचय दू। गोखलेने जो उसे प्रमाणपत्र दिया उसे पाठकोके सामने रखे बिना मुझसे

नही रहा जाता। इस बालिकाका नाम है मिस सोजा श्लेजीन। गोखलेकी आदमियोको पहचाननेकी शक्ति अद्भुत थी। डेलागोआ बेसे जंजीबारतक हमे बाते करनेको सुदर और शांति-भरा अवसर मिल गया था। दक्षिण अफ्रीकाके हिंदुस्तानी और गोरे नेताओका भी उन्हे अच्छा परिचय हो गया था। इन सभी मुख्य पात्रोके चरित्रका उन्होने सूक्ष्म विश्लेषण कर दिया और मुझे अच्छी तरह याद है कि मिस श्लेजीनको उन्होने भारतीय और गोरे सबमे प्रथम स्थान दिया था। "इसके जैसा निर्मल अत करण और काममे एकाग्रता, दृढ़ता मैंने बहुत ही थोड़े लोगोमे पाई है और भारतीयोके सग्राममे, किसी भी लाभकी आशाके विना इतना सर्वार्पण देखकर मै तो दग रह गया। फिर इन सारे गुणोके साथ उसकी होशियारी और चुस्तीने तो तुम्हारी इस लड़ाईमे उसे एक अमूल्य सेविका बना दिया है। मेरे कहनेकी जरूरत तो नही, फिर भी कह देता हू कि उसको तुम अवश्य अपनाना।"

एक स्काच कुमारिका मेरे यहा शार्टहैड और टाइपका काम करती थी। उसकी वफादारी और नीतिमत्ता सीमारहित थी। इस जिदगीमे मुझे कड़वे अनुभव तो बहुतेरे हुए है, पर सुदर चरित्र वाले इतने अधिक यूरोपियनो और भारतीयोसे मेरा सम्पर्क हुआ है कि मै इसको सदा अपना सौभाग्य ही मानता आया हूं। इस स्काच कुमारिका मिस डिकके विवाहका अवसर आया तो मुझसे उसका वियोग हुआ। तब मि० केलनबेक मिस श्लेजीनको लाये और मुझसे कहा—"इस लडकीको इसकी माने मुझे सौपा है। यह चतुर है, ईमानदार है, पर इसमे नटखटपन और स्वतंत्रता बहुत अधिक है। शायद कुछ उद्धत भी कही जाय। तुमसे चल सके तो इसे रखो। मै इसे तनख्वाहकी खातिर तुम्हारे पास नही रखता।" मै तो अच्छे स्टेनो-टाइपिस्टको

२० पौंड माहवार देनेको तैयार था। मिस श्लेजीनकी योग्यताका मुझे पता नहीं था। मि० केलनवेकने कहा—"फिलहाल तो इसे ६ पौंड प्रति मास देना।" मुझे तो यह मंजूर होना ही चाहिए था।

मिस श्लेजीनके नटखटपनका अनुभव तो मुझे तुरंत ही हुआ; पर एक महीनेके अदर ही उसने मुझे अपने वसमें कर लिया। रात और दिन चाहे जिस वक्त आप उसे काम दे सकते थे। उसके लिये न हो सकनेवाला या कठिन तो कुछ था ही नहीं। इस वक्त वह १६ वरसकी थी। मवक्किलो और सत्याग्रहियोका मन भी उसने अपनी सरलता और सेवाकी तत्परतासे हर लिया। दफ्तर और आन्दोलनकी नीतिकी यह कुमारिका चौकीदार और रखवाली करनेवाली हो गई। किसी भी कामके नीतियुक्त होनेके विषयमें उसको तनिक भी शका हो जाय तो पूरी आजादीके साथ मुझसे वहस करती और जवतक मैं उस वस्तुके नीतियुक्त होनेका उसे इतमीनान न करा देता तवतक उसको संतोप नहीं होता था।

जब लगभग सभी नेता पकड़ लिये गये और अकेले सेठ काछलिया ही वाहर रह गये तब इस बालिकाने लाखो रुपयेका हिसाब रखा और भिन्न-भिन्न प्रकृतिके मनुष्योसे काम लिया। सेठ काछलिया भी उसका सहारा, उसकी सलाह लेते। हम सबके जेल चले जानेके बाद 'इडियन ओपीनियन'की कमान मि० डोकने सम्हाली। पर यह धवलकेश अनुभवी बुजुर्ग भी 'इडियन ओपीनियन' के लिए लिखे हुए लेखोको मिस श्लेजीनसे पास कराता। मुझसे उन्होने कहा—"मिस श्लेजीन न होती तो नहीं जानता कि किस तरह अपने कामसे मैं अपने आपको भी संतोष दे पाता। उसकी सहायता और सुझावोका मूल्य मैं आंक ही नहीं सकता। अक्सर उसके सुझाये हुए सुधारोको ठीक मानकर मैंने स्वीकार किया है।"

पठान, पटेल, गिरमिटिया हर वर्ग और हर उम्रके भारतीय उसे घेरे रहते, उसकी सलाह लेते और जैसा वह कहती वैसा करते।

दक्षिण अफ्रीकामे गोरे आमतौरसे रेलमें हिंदुस्तानियोके साथ एक ही डब्बेमे नही बैठते। ट्रासवालमे तो बैठनेको मना भी करते है। सत्याग्रहियोका नियम तो तीसरे दरजेमें ही यात्रा करनका था। यह होते हुए भी मिस श्लेजीन जान-बूझकर हिंदुस्तानियोके ही डब्बेमे बैठती और रोकटोक करने-वाले गार्डोंके साथ लड भी पड़ती। मिस श्लेजीनको खुद भी गिरफ्तार होनेका हौसला था और मुझे डर था कि किसी दिन वह पकड न ली जाय; पर उसकी शक्ति, युद्धके विषयमे उसका पूरा ज्ञान और सत्याग्रहियोके हृदयपर उसने जो साम्राज्य स्थापित कर लिया था, ट्रासवाल सरकारको इन तीनो बातोका पता होते हुए भी मिस श्लेजीनको गिरफ्तार न करनेकी अपनी नीति और अपनी भलमनसीका उसने त्याग नही किया।

मिस श्लेजीनने अपनी ६ पौड मासिककी वृत्तिको बढाने-की न कभी माग की और न कभी चाही। उसकी कितनी ही जरूरतोंका जब मुझे पता लगा तब मैने उसको १० पौड देना शुरू किया। इसे भी उसने बडी हिचकिचाहटसे स्वीकार किया। इससे अधिक लेनेसे तो उसने साफ इन्कार कर दिया— "मेरी जरूरत इससे ज्यादा है ही नही। फिर भी मै अधिक लू तो जिस निष्ठासे आपके पास आई हू वह झूठी ठहरेगी।" इस जवाबसे उसने मुझे चुप कर दिया। पाठक शायद यह जानना चाहते हो कि मिस श्लेजीनकी पढाई क्या थी। केप यूनीवर्सिटीकी इटरमीडियेट परीक्षा उसने पास की थी और शार्टहैड इत्यादि-मे अव्वल दरजेका प्रमाणपत्र प्राप्त किया था। लडाईके कामसे छुट्टी पानेके बाद वह उसी यूनीवर्सिटीकी ग्रेजुएट हुई और इस वक्त ट्रासवालके किसी सरकारी बालिका विद्यालयमे प्रधानाध्यापिका है।

हर्बर्ट किचन एक शुद्ध हृदयके और बिजलीका काम जाननेवाले अग्रेज थे। बोअर-युद्धमे उन्होने हमारे साथ काम किया था। थोडे दिनोतक वह 'इडियन ओपीनियन' के सपादक भी रहे। उन्होने आजीवन ब्रह्मचर्यका पालन किया।

ऊपर जिन लोगोके नाम गिनाये गये है वे तो ऐसे लोग है जिनसे मेरा निजी और निकटका सबध रहा। उनकी गिनती ट्रासवालके अग्रगी यूरोपियनोमे नही की जा सकती। फिर भी कह सकता हू कि उनसे हमे मदद भरपूर मिली। प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे मि० हास्किनका स्थान पहला है। वह दक्षिण अफ्रीकाके एसोसियेशन आव चेवर्स आव कामर्सके भूतपूर्व अध्यक्ष और ट्रासवालकी धारा सभाके सदस्य थे। उनका परिचय पहले करा चुका हू। उनकी अध्यक्षतामे सत्याग्रह-सग्राममे सहायक गोरोका स्थायी मडल भी स्थापित किया गया था। इस मडलने उससे जितनी हो सकी उतनी हमारी मदद की थी। लडाईका सच्चा रग जमनेके बाद स्थानीय सरकारके साथ बातचीतका व्यवहार कैसे रह सकता? वह इसलिए नही कि हमने असहयोगका सिद्धान्त स्वीकार किया था, बल्कि सरकार ही अपने कानून तोडनेवालोके साथ बातचीतकी रस्म रखना पसद नही करती थी। इसलिए इस वक्त गोरोकी यह कमेटी सरकार और सत्याग्रहियोको जोडनेवाली कडी बन रही थी।

अलबर्ट कार्टराइटका परिचय भी पहले करा चुका हू। एक और भले पादरी थे जिनका हमारे साथ डोक जैसा ही सबध रहा और जिन्होने हमारी बहुत मदद की। उनका नाम है रेवरेड चार्ल्स फिलिप। ये ट्रासवालमे अरसेतक 'काग्रिगेशनल मिनिस्टर' थे। उनकी भली पत्नी भी हमारी सहायता करती। एक तीसरे प्रसिद्ध पादरी थे रेवरेड डयूडनी

इथू, जिन्होंने पादरीका काम छोड़कर पत्रका संपादकत्व स्वीकार किया था। वह ब्लोम फोटीनसे प्रकाशित होनेवाले 'फ्रेंड' नामक दैनिक पत्रके सपादक थे। उन्होने गोरोकी अवगणना और विरोध मोल लेकर भी अपने पत्रमे हिंदुस्तानियोंकी हिमायत की थी। दक्षिण अफ्रीकाके प्रसिद्ध वक्ताओमें उनकी गिनती होती थी।

'प्रिटोरिया न्यूज' के संपादक मि० वेर स्टेंट भी इसी तरह स्वतंत्रतापूर्वक सहायता करनेवालोमें से थे। एक बार प्रिटोरियाके टाउनहालमे गोरोने वहाके मेयरके सभापतित्वमें विराट सभाका आयोजन किया था। उसका उद्देश्य एशियावासियोंको कोसना और खूनी कानूनको सराहना था। वेर स्टेटने अकेले ही इस सभामें इसके विरोधमें आवाज उठाई। सभापतिने उन्हे बैठ जानेको कहा, पर उन्होंने ऐसा करनेसे साफ इन्कार कर दिया। गोरोने उनके शरीरको हाथ लगानेकी भी धमकी दी, पर यह पुरुष सिंहके समान गर्जता हुआ उस सभामे अडिग रहा। अतमे प्रस्ताव पास किये विना ही सभा भग कर देनी पड़ी!

मै ऐसे दूसरे गोरोके नाम भी गिना सकता हूं जो किसी भी सस्थामें सम्मिलित नही हुए, मगर हमारी मदद करनेका एक भी अवसर नही चूके। पर अधिक न लिखकर केवल तीन बहनोका परिचय देकर ही इस प्रकरणको पूरा कर देना चाहता हू। उनमेसे एक हैं मिस हॉबहाउस। वह लार्ड हॉबहाउसकी बेटी थी। यह बहन बोअर-युद्धमें लार्ड मिल्नरका विरोध करके भी दक्षिण अफ्रीका पहुची थीं। जब लार्ड किचनरने दुनियाभरमें ख्यात या कहिए कि निंदित अपना 'कॉन्सेंट्रेशन कैम्प'* ट्रांसवाल और फ्री स्टेटमें कायम

---

*लड़नेवाले बोअरोकी स्त्रियोको इकट्ठा करके कैदमें रखनेकी छावनी।

किया उस वक्त यह वीर महिला बोअर स्त्रियोमे अकेली फिरती और उन्हे दृढ रहनेको समझाती और बढावा देती। वह मानती थी कि बोअर-युद्धके विषयमे अंग्रेजोकी राजनीति सोलह आने अन्यायकी है। इसलिए स्व० स्टेडकी तरह वह उनकी हार मनाती और ईश्वरसे इसके लिए प्रार्थना करती। बोअरोकी इतनी बड़ी सेवा करनेके बाद जब उसे मालूम हुआ कि जिस अन्यायके विरुद्ध बोअरोने तलवार उठाई थी वही अन्याय वह अज्ञानवश भारतीयोके साथ करनेको तैयार है तब उससे सहन न हो सका। बोअर जनता उसके प्रति बहुत सम्मान और प्रेम रखती थी। जनरल बोथाके साथ उसका अति निकटका सबंध था। उन्हीके यहां वह ठहरा करती थी। खूनी कानूनको रद करानेके लिए बोअर लोगोसे कहनेमे उसने कुछ उठा नही रखा था।

दूसरी बहन थी ऑलिव श्राइनर। इनके बारेमे मै पांचवें प्रकरणमे लिख चुका हू। ये दक्षिण अफ्रीकाके प्रख्यात श्राइनर परिवारमे जन्मी हुई विदुषी महिला थी। श्राइनर नाम इतना प्रसिद्ध है कि जब उनका ब्याह हुआ तब उनके पतिको यही नाम ग्रहण करना पड़ा जिसमे श्राइनर-परिवारके साथ उनका संबध दक्षिण अफ्रीकाके गोरोमे लुप्त न हो जाय। यह उनका कुछ मिथ्या स्वाभिमान न था। मै मानता हू कि उनके साथ मेरा अच्छा परिचय था। इन बहनकी सादगी और नम्रता भी वैसे ही उनका आभूषण थी जैसे उनकी विद्वत्ता। उनके हवशी नौकरो और खुद उनके बीच कोई अंतर है, यह उन्होंने कभी नही माना। अंग्रेजी भाषा जहां-जहां बोली जाती है वहां-वहां उनकी 'ड्रीम्स' नामक पुस्तक आदरके साथ पढी जाती है। यह है तो गद्य, पर काव्य-की पंक्तिमे रखी जाती है। उन्होने और भी बहुतसी चीजें लिखी है। लेखनीपर इतना अधिकार होते हुए भी वह अपने

हाथ खाना पकाते, घरकी सफाई करते, बरतन मांजते शर्माती नही थी, न उससे परहेज करती थी। वह मानती थी कि यह उपयोगी शरीर-श्रम उनकी लेखन-शक्तिको मंद करनेके बदल उसे उत्तेजित करता है और भाषा तथा विचारोंको एक प्रकारका आभिजात्य और गांभीर्य प्रदान करता है। यह बहन भी दक्षिण अफ्रीकाके गोरोपर जो कुछ असर डाल सकती थी उस सबका उपयोग भारतीय पक्षका समर्थन करनेमे किया था।

तीसरी बहन थी मिस माल्टीनो । यह भी दक्षिण अफ्रीकाके पुराने घरानेकी वयोवृद्ध महिला थी। इन्होंने भी भारतीयोंकी अपनी शक्तिभर सहायता की।

पाठक पूछ सकते है कि इन सारे यूरोपियनोकी सहायता-का फल क्या रहा? इसका जवाब मै यह दूगा कि फल बताने-के लिए यह प्रकरण नही लिखा गया है। उनमेंसे कुछका काम ही, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, उसके फलका साक्षी रूप है? पर इन हितेच्छु गोरोकी सारी सहायता-सहानुभूतिका नतीजा क्या निकला, यह सवाल पैदा हो सकता है। यह लड़ाई ही ऐसी थी कि उसका फल उसमें ही समाया हुआ था। यह लड़ाई थी स्वावलवन, आत्म-बलि और भग-वानपर भरोसा रखनेकी।

गोरे सहायकोंके नाम गिना जानेका एक हेतु तो यह है कि दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके इतिहासमे उनसे मिली हुई सहायताका उल्लेख न हो तो वह इस इतिहासकी कमी मानी जायगी। मैने सभी गोरे सहायकोंके नाम नही दिये है। पर जितने दिये है उतनेसे सहायक मात्रके प्रति हम अपनी कृतज्ञता इस प्रकरणमे प्रकट कर देते है। दूसरा कारण है इस सिद्धान्तमे सत्याग्रही रूपसे अपनी श्रद्धा प्रकट करना कि यद्यपि कर्मविशेषका परिणाम हम स्पष्ट रीतिसे नही देख सकते हों, फिर भी शुद्ध चित्तसे किये हुए कर्मका फल शुभ ही होता

है, फिर वह दृश्य हो या अदृश्य। इसका तीसरा सबल कारण है यह दिखाना कि सदुद्योग ऐसी अनेक प्रकारकी शुद्ध और निस्स्वार्थ सहायताए अपनी ओर अनायास खींच लेते है। इस प्रकरणमे यह बात अबतक समझा नही दी गई हो तो मै यह स्पष्ट कर देना चाहता हू कि सत्याग्रहकी लडाईमे सत्यके पालनको ही अगर हम प्रयास मानें तो इसे छोडकर और कोई भी प्रयास इन यूरोपीय सज्जनोंकी सहायता पानेके लिए नही किया गया। युद्धके अतर्निहित बलसे ही वे आकृष्ट हुए थे।

: २४ :

और भीतरी कठिनाइयां

२१ वें प्रकरणमे हमे कुछ भीतरी कठिनाइयोका अंदाजा हो गया है। मुझपर हमला होनेके समय मेरे बाल-बच्चे फिनिक्समे रहते थे। हमलेकी खबरसे उनका उद्विग्न होना स्वाभाविक था; पर मुझे देखनेके लिए पैसा खर्च करके फिनिक्ससे जोहान्सबर्ग दौड़े आए, यह तो मुमकिन नहीं था। इसलिए अच्छा हो जानेपर मुझीको जाना था। नेटाल और ट्रासवालके बीच मेरा आना-जाना, कामके सिलसिलेमे, हुआ ही करता था। समझौतेके बारेमे नेटालमें भी खूब भ्रम फैल रहा था, इससे मै अनजान नही था। मेरे और दूसरोंके पास जो चिट्ठियां आती थी उनसे मुझे इसका पता था और 'इंडियन ओपीनियन'को जो गहरे कटाक्ष करनेवाले पत्र मिले थे उनका बंडल तो मेरे ही पास था। यद्यपि सत्याग्रह अबतक ट्रांसवालके भारतीयोको ही करना था तो भी नेटालके भारतीयोकी सम्मति और सहानुभूति तो प्राप्त करनी

ही थी। ट्रांसवालके भारतीय ट्रांसवालके निमित्तसे सारे दक्षिण अफ्रीकाकी लड़ाई लड़ रहे थे। इससे नेटालमें पैदा हुई गलतफहमी दूर करनेके लिए भी मेरा डर्बन जाना जरूरी था। अतः मौका मिलते ही मैं वहां गया।

डर्बनके हिंदुस्तानियोंकी आम सभा की गई। कुछ मित्रोंने मुझे चेता दिया था कि इस सभामें तुमपर हमला होनेवाला है। इसलिए या तो तुम सभामें जाओ ही नहीं या अपने बचावका कुछ उपाय कर लो। दो में से एक भी बात मुझसे हो सकनेवाली नहीं थी। नौकरको मालिक बुलाये और वह डरसे न जाये तो उसका सेवक धर्म गया और मालिककी सजासे डरे तो वह सेवा कैसी? जनताकी सेवा सेवाकी खातिर करना खांडेकी धारपर चलना है। लोकसेवक स्तुति लेनेको तैयार हो जाता है तो निंदासे कैसे भाग सकता है? अतः मैं तो नियत समयपर सभामें पहुंच ही गया। समझौता कैसे हुआ, यह समझाया। जो सवाल किये गये उनके जवाब भी दिये।

यह सभा रातके कोई आठ बजे हुई थी। काम लगभग पूरा हो चला था कि इतनेमें एक पठान अपनी लाठी लेकर मंचपर चढ़ आया। इसी वक्त बत्तियां भी बुझ गईं। मैं स्थिति समझ गया। सभापति सेठ दाऊद मुहम्मद अपनी मेजपर चढ़ गये और लोगोंको समझाने लगे। मेरा बचाव करनेवालोंने मुझे घेर लिया। मैंने अपने बचावका कोई उपाय नहीं किया था। पर मैंने पीछे देखा कि जिन्हें हमलेका डर था वे तो सब तरहसे तैयार होकर आये थे। उनमेंसे एक तो अपनी जेबमें तमंचा रखकर आये थे और उसका खाली फैर भी किया। इस बीच पारसी रुस्तमजी, जिन्होंने हमलेकी तैयारी देख ली थी, विद्युत वेगसे दौड़कर थानेपर पहुंचे और पुलिस सुपरिटेंडेंट अलेक्जेंडरको खबर दी। उन्होंने पुलिसका

एक दस्ता भेज दिया और पुलिस गडबडमे रास्ता करके मुझे अपने बीचमे कर पारसी रुस्तमजीके यहा ले गई।

दूसरे दिन सवेरे पारसी रुस्तमजीने डर्बनके पठानोको इकट्ठा करके कहा कि आप लोगोंको गाधीजीसे जो कुछ शिकायते हो उन्हे उनके सामने रखे। मै उनसे मिला। उन्हे शात करनेकी कोशिश की, पर मै नही समझता कि मै उन्हे शान्त कर सका। वहमकी दवा दलील देने या समझाने-से नही हो सकती। उनके मनमे यह बात जम गई थी कि मैने कौमको धोखा दिया है और जबतक यह मैल उनके दिमागसे न निकल जाय, मेरा समझाना बेकार था।

मै उसी दिन फिनिक्स पहुचा। जिन मित्रोंने पिछली रात मेरी रक्षा की थी उन्होने मुझे अकेले भेजनेसे साफ इन्कार कर दिया और मुझे सुना दिया कि हम भी चलकर फिनिक्समे डेरा डालेगे। मैने कहा—"आप लोग मेरी 'ना' को अन-सुनी करके आना चाहेगे तो मै आपको रोक नही सकता, पर वहा तो जंगल है और वहा बसनेवाले हम लोग आपको भोजन भी न दे तो आप क्या करेगे?" उनमेंसे एकने जवाब दिया—"हमे यह डर दिखानेकी जरूरत नही। अपना प्रबंध हम खुद कर लेगे। पर जबतक हम सिपाहीगिरी करते होगे तबतक आपका भडार लूटनेसे हमे कौन रोकने वाला है?"

इस प्रकारका विनोद करते हुए हम फिनिक्स पहुंचे। इस रक्षकदलका नेता जैक मुडली नामका व्यक्ति था, जो हिंदुस्तानियोमें काफी मशहूर था। उसका जन्म नेटालमे तामिल मा-बापके घर हुआ था। उसने घूसेबाजी (बाक्सिंग) की खास तौरसे तालीम हासिल की थी और वह और उसके साथी भी मानते थे कि घूसेबाजीमे दक्षिण अफ्रीकामे गोरा या काला कोई भी जैक मुडलीका मुकाबला नही कर सकता।

दक्षिण अफ्रीकामें जब बारिश न हो रही हो तब मै बिलकुल

बाहर खुलेमें सोना। अनेक वर्षोंसे मेरी यह आदत थी। इसमें कोई फेरफार करनेको मै इस वक्त तैयार नहीं था। इससे स्वनिर्मित रक्षकदलने रातमे मेरी खाटके पास पहरा देनेका निश्चय किया। गोकि फिनिक्समें मैंने इस दलसे मजाक किया था और उसे आनेसे रोकनेकी भी कोशिश की थी, फिर भी मुझे अपनी इतनी कमजोरी कबूल करनी होगी कि जब उन लोगोंने पहरा देना शुरू किया तो मैंने कुछ अधिक निर्भयता अनुभव की और मनमें यह भी सोचा कि अगर ये लोग न आये होते तो क्या मै इतना ही निर्भय होकर सो सकता? मुझे यह भी जान पड़ता है कि किसी आवाजसे मै अवश्य चौंक उठता था।

मैं मानता हूं कि ईश्वरपर मेरी अविचल श्रद्धा है। मेरी बुद्धि बरसोंसे इस बातको भी स्वीकार करती आ रही है कि मृत्यु जीवनमें एक बड़ा परिवर्तन मात्र है और चाहे जब आये, सदा स्वागत करने योग्य है। दिलमेंसे मौतके और दूसरे डरोंको निकाल देनेका मैंने ज्ञानपूर्वक महाप्रयत्न किया है। फिर भी अपने जीवनमे ऐसे अवसर याद कर सकता हूं जब मृत्युसे मिलनेका विचार करते हुए मै वैसा उल्लसित नही हो सका जैसा अरसेसे बिछुड़े हुए मित्रसे मिलनेकी बात सोचने-पर हम हो जाया करते है। इस प्रकार सबल होनेका महाप्रयत्न करते हुए भी मनुष्य अक्सर निर्बल बना रहता है और बुद्धिसे गृहीत ज्ञान अनुभवका अवसर आनेपर बहुत काम नही आता। फिर जब उसको बाहरका सहारा मिलता है और वह उसको स्वीकार कर लेता है तब तो वह अपना अन्तर्बल अधिकांशमें खो देता है। सत्याग्रहीको इस प्रकारके भयोंसे सदा बचते रहना चाहिए।

फिनिक्समे मैंने एक ही काम किया। गलतफहमी दूर करनेके लिए मैंने खूब लिखना शुरू किया। संपादक

और शंकाशील वाचक वर्गके बीच एक कल्पित सवाद लिख डाला। जो-जो शंकाए और आक्षेप मैंने सुन रखे थे उन सबपर जितनी तफसीलके साथ मुझसे हो सका विचार किया। मैं मानता हूं कि इसका फल अच्छा ही हुआ। यह तो प्रकट हो गया कि उन लोगोंके दिलमे गलतफहमी जड़ न जमा सकी, जिनको अगर वह सचमुच हुई होती या बनी रहती तो दु.खद परिणाम होता। समझौतेको मानना न मानना केवल ट्रासवालके हिंदुस्तानियोका काम था। अत. उनके कामोसे उनकी और नेता तथा सेवकके रूपमे मेरी भी परीक्षा होनेवाली थी। बहुत ही थोड़े हिंदुस्तानी रहे होगें जिन्होने अपनी इच्छासे परवाना नही ले लिया हो। इतने अधिक लोग परवाना लेने जाते थे कि परवाना देनेवाले अहलकारोंको दम मारनेकी फुरसत भी नही मिलती थी। भारतीय जनताको समझौतेकी शर्तोमेसे जिनका पालन करना था उनका पालन उसने बड़ी शीघ्रतासे कर दिया। सरकारको भी यह बात कबूल करनी पड़ी। मैंने यह भी देखा कि गलतफहमियोने यद्यपि उग्र रूप ग्रहण कर लिया था, फिर भी उनका क्षेत्र बहुत ही सकुचित था। कुछ पठानोने जब कानून अपने हाथमे ले लिया और बल-प्रयोगका रास्ता पकड़ा तब भारी खलबली मच गई, पर इस खलबलीका विश्लेषण करने बैठिये तो मालूम हो जायगा कि उसकी कोई बुनियाद नही होती और अकसर तो वह केवल क्षणिक होती है। पर यह होते हुए भी उसका जोर आज भी दुनियामे कायम है, क्योकि खून-खराबीसे हम काप उठते है। पर हम धीरजके साथ विचार करने बैठे तो तुरंत मालूम हो जाय कि कापनेका कुछ भी कारण नही। मान लीजिये कि मीर आलम और उसके साथियोके प्रहारसे मेरा शरीर जखमी होनेके बदले नष्ट हो गया होता और साथ ही यह भी मान लीजिये कि कौम

बुद्धिपूर्वक अनुद्विग्न और शांत रही होती, मीर आलम अपनी बुद्धिका अनुसरण करते हुए दूसरा कुछ कर ही नहीं सकता था, यह समझकर उसने उसके प्रति मित्रभाव और क्षमाभाव रखा होता तो इससे कौमकी कोई हानि नही हुई होती, बल्कि अतिशय लाभ ही हुआ होता। कारण यह है कि कौममें तो उस दशामें गलतफहमीका अभाव होता और वह दूने जोशसे अपनी प्रतिज्ञापर अटल रहती और अपने कर्तव्यका पालन करती। मुझे तो विशुद्ध लाभ होता, क्योंकि सत्याग्रही इससे अधिक मंगल-परिणामकी तो कल्पना ही नही कर सकता कि अपने सत्यका आग्रह रखते हुए, सत्याग्रहके प्रसंगमे ही, वह अनायास मृत्यु प्राप्त करे।

ऊपर दी हुई दलीलें सत्याग्रहकी जैसी लडाईपर ही लागू हो सकती है, क्योंकि उसमे वैर-भावके लिए स्थान ही नही। आत्मशक्ति या स्वावलंबन ही एकमात्र साधन होता है। उसमें एकको दूसरेका मुह ताकते बैठे रहना नही होता। उसमे कोई नेता नही होता, इसलिए कोई सेवक भी नही, अथवा सभी नेता और सभी सेवक होते है। इसलिए प्रौढ-से-प्रौढ पुरुषकी मृत्यु भी युद्धको शिथिल नही करती, बल्कि उसका वेग और बढा देती है।

यह सत्याग्रहका शुद्ध और मूल स्वरूप है। अनुभवमे हमे इसके दर्शन नही होते, क्योंकि सभी वैर त्याग दे यह नही होता। सब सत्याग्रहका रहस्य समझते हों यह भी अनुभवमें देखनेमें नहीं आता। थोड़ोंको देखकर बहुसख्यक उनका मूढ अनुकरण करते है। फिर सामुदायिक और सामाजिक सत्याग्रहीका ट्रासवालका प्रयोग तो टाल्सटायके कथनानुसार पहला ही माना जायगा। मै खुद शुद्ध सत्याग्रहका ऐतिहासिक उदाहरण नही जानता था। मेरा इतिहास-ज्ञान नगण्य है। इसलिए इस विषयमे मै कोई पक्की राय कायम नही कर सकता। पर सच पूछिये तो ऐसे ऐतिहासिक उदाहरणोसे

हमारा कोई संबंध नहीं। सत्याग्रहके मूलतत्त्वको आप स्वीकार कर ले तो आप देखेंगे कि जो फल मैंने बताये है वे उसमें पहले हीसे मौजूद है। यह दलील देकर हम इस अमूल्य वस्तुको त्याग नहीं सकते कि इसका आचरण करना कठिन या अशक्य है। शस्त्रबलके दूसरे प्रयत्न तो हजारो वरससे होते ही आ रहे है। उसके कडवे फल तो हम प्रत्यक्ष देख रहे है। भविष्यमें उससे मीठे फल उपजनेकी आशा थोडी ही रखी जा सकती है। अंधकारमेंसे अगर उजाला उत्पन्न किया जा सकता हो तो वैर-भावसे प्रेम-भाव भी प्रकट किया जा सकता है।

दक्षिण अफ्रीकाका सत्याग्रह

द्वितीय खण्ड

प्रस्तावना

पाठक जानते हैं कि दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास उप-वासादि कारणोंसे मैं जारी न रख सका था। उसे अब इस अंकसे फिर शुरू करता हूं। मुझे उम्मीद है कि अब मैं उसे निर्विघ्न पूरा कर सकूंगा।

इस इतिहासकी स्मृतियोंपरसे मैं देखता हूं कि हमारी आजकी स्थितिमें एक भी चीज ऐसी नहीं है जिसका अनुभव, छोटे पैमानेपर, दक्षिण अफ्रीकामें मुझे न हुआ हो। आरंभमें यही उत्साह, यही एका, यही आग्रह, मध्यमें यही नैराश्य, यही अरुचि, आपसमें झगड़ा और द्वेषादि, ऐसा होते हुए भी मुट्ठीभर लोगोंमें अविचल श्रद्धा, दृढ़ता, त्याग, सहिष्णुता, वैसे ही अनेक प्रकारकी सोची-अनसोची कठिनाइयां। हिंदुस्तानकी लड़ाईका अंतिम काल अभी बाकी है। इस आखिरी मंजिलकी मैं तो जो स्थिति दक्षिण अफ्रीकामें अनुभव कर चुका हूं उसकी ही आशा यहां भी रखता हूं। दक्षिण अफ्रीकाकी लड़ाईका अंतिम काल पाठक अभी आगे देखेंगे। उसमें कैसे बिना मांगी मदद हमारे पास चली आई, लोगोंमें कैसे अनायास उत्साह उपजा और अंतमें हिंदुस्तानी कौमकी संपूर्ण विजय किस प्रकार हुई, यह सब पाठक देखेंगे।

'यह इतिहास 'नवजीवन' में धारावाहिक रूपसे प्रकाशित हुआ था।—अनु०

इस प्रकार मेरा दृढ विश्वास है कि जैसा दक्षिण अफ्रीकामे हुआ वैसा ही यहा भी होगा। कारण यह कि तपश्चर्यापर, सत्यपर, अहिंसापर मेरी अविचल श्रद्धा है। मै इस वातको अक्षरश सत्य मानता हू कि सत्यका पालन करनेवालेके सामने सपूर्ण जगत्की समृद्धि रहती है और वह ईश्वरका साक्षात्कार करता है। अहिंसाके सान्निध्यमें वैरभाव टिक नही सकता, इस वचनको भी मै अक्षरश सत्य मानता हू। कष्ट सहन करनेवालोंके लिए कुछ भी अशक्य नही होता, इस सूत्रका मै उपासक हू। इन तीनो वस्तुओका मेल मै कितने ही सेवकोमे पाता हू। उनकी साधना कभी निष्फल नही होती, मेरा यह निरपवाद अनुभव है।

पर कोई कह सकता है कि दक्षिण अफ्रीकामें पूरी जीत होनेका अर्थ तो इतना ही है कि हिंदुस्तानी जैसे थे वैसे ही बने रहे। ऐसा कहनेवाला अज्ञानी कहलायेगा। दक्षिण अफ्रीकामे लडाई न लडी गई होती तो आज दक्षिण अफ्रीकासे ही नही, बल्कि सारे अग्रेजी उपनिवेशोसे हिंदुस्तानियोके कदम उठ गये होते और किसीने उनकी खोज-खबर भी न ली होती। पर यह उत्तर यथेष्ट या सतोषजनक नही माना जायगा। यह दलील भी दी जा सकती है कि सत्याग्रह न किया गया होता और समझाने-बुझानेसे जितना काम हो सकता था उतना काम लेकर हम बैठ गये होते तो आज जो स्थिति है वह नही होती। यह दलील यद्यपि सचाईसे खाली है, फिर भी जहा केवल दलीलो और अटकलोसे ही काम लिया जाता हो वहा किसकी दलीले और किसके अनुमान अच्छे है, यह कौन कह सकता है? अटकले लगानेका हक सभीको है। जिसका जवाब नही दिया जा सकता, जिसका खडन नही किया जा सकता, वैसी बात तो यह है कि जो वस्तु जिस शस्त्रके द्वारा प्राप्त की जाती है, उसकी रक्षा उसी हथियारसे हो सकती है।

'काबे अर्जुन लूंटियो वही धनुष वही बाण'[1]

जिस अर्जुनने शिवजीको हराया, कौरवोका मद उतारा, वही अर्जुन जब कृष्णरूपी सारथिसे रहित हुए तब एक दस्यु दलको अपने गाडीव धनुषसे न हरा सके ! यही स्थिति दक्षिण अफ्रीकाके हिंदुस्तानियोकी है। अभी तो वे लड ही रहे है। पर जिस सत्याग्रहके द्वारा उन्होंने लड़ाई जीती थी उस हथियारको वे खो बैठे हो तो अतमे वे जीती हुई बाजी हार जायगे। सत्याग्रह उनका सारथि था और वही सारथि उनकी सहायता करनेमे समर्थ है।

नवजीवन
५ जुलाई १९२५ —मोहनदास करमचद गांधी

---

[1] अर्जुनके हाथोमें वही धनुष और वही बाण था; पर डाकुओने उन्हें लूट लिया।

दक्षिण अफ्रीकाका सत्याग्रह

द्वितीय खण्ड

: १ :

जनरल स्मट्सका विश्वासघात (?)

पाठकोने भीतरी कठिनाइया तो कुछ-कुछ देख ली। उनके वर्णनमे अधिकांशत. मुझे आत्मकथा ही देनी पड़ी। यह अनिवार्य था, क्योकि सत्याग्रहसे सबंध रखनेवाली मेरी कठिनाइयां सत्याग्रहियोंकी भी कठिनाइयां हो गई। अब हम बाहरी कठिनाइयोकी कथा फिरसे उठाते है।

इस प्रकरणका शीर्षक लिखते हुए मुझे शर्म आती है और यह प्रकरण लिखते हुए भी। इसलिए कि इसमे मनुष्य-स्वभावकी वक्रताका वर्णन किया गया है। जनरल स्मट्स १९०८मे भी दक्षिण अफ्रीकामे तो योग्यतम नेता माने जाते थे, आज दुनियामे नही तो ब्रिटिश साम्राज्यमे तो वह ऊंचे दरजेके कार्यकुशल पुरुष गिने जाते है। उनकी शक्ति बहुत बड़ी है, इस विषयमें मेरे मनमें तनिक भी शंका नही। वह जैसे कुशल वकील है वैसे ही कुशल सेनापति है और राज-काज चलानेमे भी वैसे ही कुशल है। दक्षिण अफ्रीकामें दूसरे कितने ही राजनीतिज्ञ आये और गये, पर १९०७से आजतक वहांके राजकाजकी बागडोर यह पुरुष अपने हाथमें रखे हुए है और आज भी दक्षिण अफ्रीकामे एक भी आदमी ऐसा नही है जो उनके मुकाबलेमे खड़ा रह सके। ये पंक्तियां

लिखते समय मुझे दक्षिण अफ्रीका छोड़े ९ बरस हो चुके हैं। मैं नही जानता कि आज दक्षिण अफ्रीका उन्हें किस विशेषणसे याद करता है! जनरल स्मट्सका घरका (क्रिश्चियन) नाम जॉन है और दक्षिण अफ्रीकाके लोग उन्हे 'स्लिम जेनी' कहकर पुकारते हैं। 'स्लिम'का अर्थ यहा है 'जो सरक जाय' 'जो पकडमे न आये।' हिंदीमे उससे मिलते-जुलते अर्थका धूर्त या मीठा विशेषण व्यवहार करे तो विपरीत अर्थमे चालाक शब्द काममे ला सकते है। अनेक अंग्रेज मित्रोने मुझसे कहा था—जनरल स्मट्ससे होशियार रहना। यह बडा काइया है। बात कहकर पलटते उसे तनिक भी देर नही लगती। अपने शब्दोका अर्थ वही जान सकता है। अक्सर वह इस तरह बोलता है कि दोनो पक्ष उसके शब्दोका वही अर्थ कर सकते है जो उन्हे प्रिय होता है। फिर जब मौका आता है तब वह दोनों पक्षके अर्थको किनारे रखकर अपना तीसरा ही अर्थ दिखाता है, उसको अमलमे लाता है और उसके समर्थनमे ऐसी चतुराईभरी दलीले देता है कि दोनों पक्ष क्षणभर तो यह मानने लगते है कि भूल हम हीसे हुई होनी चाहिए। जनरल स्मट्स जो अर्थ कर रहे है वही सही अर्थ है। ऐसे ही एक विषयका वर्णन मुझे इस प्रकरणमे करना है। वह घटना जिस समय घटित हुई उसी वक्त वह विश्वासघात मानी और कही गई। आज भी भारतीय समाजकी दृष्टिसे उसको मै विश्वासघात मानता हू। फिर भी इस शब्दके सामने मैने जो प्रश्नचिह्न रखा है उसका कारण यह है कि उनका काम वास्तवमें शायद इरादेके साथ किया हुआ विश्वासघात न हो। जहा घातका इरादा न हो वहा विश्वासका भंग कैसे माना जा सकता है? १९१३-१४ में मुझे जनरल स्मट्स-का जो अनुभव हुआ, उसे मैने उस वक्त कडवा नही माना था और आज जब उसपर कुछ अधिक तटस्थ दृष्टिसे

विचार करता हूं तब भी उसे कडवा नही मान सकता। इसलिए यह सर्वथा संभव है कि १९०८ मे भारतीयोंके साथ उन्होने जो व्यवहार किया वह ज्ञानपूर्वक किया हुआ विश्वास-भंग न हो।

इतनी प्रस्तावना मैने इसलिए दी है कि जनरल स्मट्सके साथ न्याय कर सकू और उनके नामके साथ विश्वासघात शब्दका जो मैने व्यवहार किया है उसका, और जो कुछ इस प्रकरणमे मुझे कहना है उसका भी बचाव हो सके। पिछले प्रकरणमे हम देख चुके कि भारतीयोंने ऐच्छिक परवाने इस रीतिसे निकलवा लिये जिससे ट्रांसवालकी सरकारको सतोष हो जाय। अब खूनी कानूनको रद करना उक्त सरकारका फर्ज था। वह यह कर देती तो सत्याग्रहकी लड़ाई बंद हो जाती। इसका अर्थ यह नही है कि ट्रांसवालमे हिंदुस्तानियोके खिलाफ जितने कानून बने थे वे सभी रद हो जायं या हिंदुस्तानियोके सारे दुःख दूर हो जाय। उन्हे दूर करनेके लिए तो जैसे पहले वैध आदोलन किया जाता था वैसे करना ही था। सत्याग्रह तो खूनी कानूनरूपी नये डरावने बादलको हटाने भरके लिए था। उस कानूनको स्वीकार करनेमे कौमकी जिल्लत होती थी और पहले ट्रांसवाल और अंतमें सारे दक्षिण अफ्रीकामे उसकी हस्ती ही मिट जाती थी। पर खूनी कानून रद करनेके बजाय जनरल स्मट्सने नया ही कदम उठाया। उन्होने जो बिल प्रकाशित किया उसके जरिये खूनी कानूनको बहाल रखा और अपनी मर्जीसे लिए हुए परवानेको कानूनके अनुकूल माना। पर बिलके अदर एक दफा ऐसी रख दी जिससे जिसने परवाना ले लिया हो उसपर खूनी कानून लागू न हो। इसके मानी यह होते थे कि एक ही उद्देश्यवाले दो कानून साथ-साथ चलते रहे और नये आनेवाले या बादमे परवाना लेनेवाले हिंदुस्तानी भी खूनी कानून द्वारा शासित हों।

यह बिल पढ़कर मै तो दिग्मूढ़ हो गया। कौमको मैं क्या जवाब दूगा? जिन पठान भाइयोने पिछली मध्यरात्रिकी सभामे मुझपर कठोर आक्षेप किये थे उनको कैसी बढ़िया खूराक मिली? पर मुझे यह बता देना चाहिए कि सत्याग्रहपर मेरा विश्वास इस धक्केसे ढीला न होकर और दृढ़ हो गया। अपनी कमेटीकी बैठक बुलाई और उसे स्थिति समझाई। कुछने मुझे ताना भी मारा—"हम तो आपसे कहते आ रहे हैं कि आप बहुत भोले हैं। जो कुछ भी कोई कह दे उसे सच मान लेते हैं। आप अपने निजी कामोमे ही भोलापन बरतते तब तो अधिक हानि न थी; पर कौमी कामोमे जो आप यह सरलताका व्यवहार करते है उससे कौमको नुकसान उठाना पड़ता है। अब पहलेका-सा जोश फिर जगना हमें तो बहुत कठिन दिखाई देता है। अपनी कौमको क्या आप नही जानते? वह तो सोडावाटरकी बोतल है। क्षणभरके लिए उफान आता है, उसका उपयोग कर लेना होता है। यह उफान ठंडा हुआ और सब गया।" इस शब्द-बाणमे विष न था। ऐसी बातें मै दूसरे मौकोपर भी सुन चुका था। मैंने हँसकर जवाब दिया—"जिसे आप मेरा भोलापन कहते हैं वह तो ऐसी चीज है जो मेरे स्वभावका एक अंग हो गया है। यह भोलापन नही, विश्वास है और विश्वास रखना तो मेरा और आपका सबका धर्म है। फिर भी यदि आप इसे दोष मानते हो, पर अगर मेरी सेवासे कुछ लाभ होता हो तो मेरी खोट-खामीसे होनेवाली हानि भी आपको सह्य होनी चाहिए। आपकी तरह मै यह भी नही मानता कि कौमका जोश सोडा-वाटरके उफान-जैसा है। कौममें मै और आप भी हैं। मेरे जोशको अगर आप यह विशेषण दे तो मै इसको अवश्य अपना अपमान मानूगा। और मुझे विश्वास है कि आप अपनेको तो अपवादरूप ही मानते होगे और वैसा न मानते हों

और अपने पैमानेसे कौमको नापते हों तो आप कौमका अपमान करते हैं। ऐसे महान् संग्रामोमे ज्वार-भाटा तो आया ही करता है। आपने कितनी ही सफाई कर ली हो, पर विपक्षी विश्वासघात करना ही चाहे तो उसे कौन रोक सकता है? इस मंडलमे ऐसे कितने ही लोग है जो मेरे पास प्रामिसरी नोट नालिश करनेके लिए लाते है। दस्तखत करके अपना हाथ कटा देनेसे अधिक सावधानी और क्या हो सकती है? फिर भी ऐसे लोगोंपर भी अदालतमे नालिश दायर करनी पड़ती है। वे अनेक प्रकारके बचाव पेश करते है, डिगरियां होती है। कुर्कियां निकलती है। ऐसी अयोग्य घटनाओंके लिए कौन-सी सावधानी रखी जा सकती है, जिससे उनकी आवृत्ति न हो? अत मेरी सलाह तो यही है कि जो उलझन हमारे सामने आ गई है उसे धीरजके साथ सुलझाए। हमे फिर लड़ना हो पडे तो हम क्या कर सकते हैं, यानी दूसरे क्या करेंगे, इसको सोचे विना हरएक सत्याग्रही खुद क्या करेगा या कर सकता है—इसीका विचार करना है। मुझे तो ऐसा लगता है कि हम इतने लोग सच्चे रहे तो दूसरे भी वैसे ही रहेंगे, या उनमे कोई कमजोरी आ गई हो तो हमारी मिसाल लेकर वे उसको दूर कर सकेंगे।"

मेरा खयाल है कि जिन लोगोने फिर लड़ाई चल सकनेके बारेमे नेक इरादेसे तानेके रूपमे शका प्रकट की थी वे समझ गये। इस अवसरपर सेठ काछलिया दिन-दिन अपना जौहर दिखा रहे थे। सभी विषयोमे कम-से-कम बोलकर अपना निश्चय बता देते और फिर उसपर अटल रहते। मुझे एक भी ऐसा अवसर याद नही आता जब उन्होंने कमजोरी दिखाई हो या अंतिम परिणामके विषयमे शंका ही प्रकट की हो। ऐसा मौका भी आया जब ईसप मिया तूफानी समुद्रमे कौमकी नैयाकी पतवार पकडे रहनेको तैयार न थे।

उस वक्त सबने एकमतसे कर्णधारके रूपमे काछलियाका स्वागत किया और तबसे अतिम घडीतक उन्होने पतवार हाथसे न छोडी। जो कष्ट-कठिनाइया बिरले ही सहन कर सकते है उन्हे उन्होंने निश्चित और निर्भय होकर सहन किया। लडाई आगे बढी तो एक ऐसा अवसर आया जब कितनोके लिए जेलमे जाकर बैठ जाना आसान काम था, आराम था, पर बाहर रहकर सब बातोको बारीकीसे देखना, उनका प्रबध करना, बहुतोको समझाना, यह सब कही अधिक कठिन था।

ऐसा अवसर भी आया कि सेठ काछलियाके पावनेदारोने उन्हे अपने शिकजेमे कस लिया।

बहुतसे भारतीय व्यापारियोका रोजगार गोरे व्यापारियो-की कोठियोंपर अवलबित था। वे लाखो रुपयेका माल बिना किसी जमानतके हिंदुस्तानी व्यापारियोके हाथ उधार बेच देते थे। भारतीय व्यापारियोंका इतना विश्वास सपादन कर लेना भारतीय व्यापारकी सामान्य प्रामाणिकता-का एक सुदर प्रमाण है। सेठ काछलियापर भी बहुत-सी गोरी कोठियोंका पावना था। सरकारकी ओरसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीतिसे उकसाये जाकर इन व्यापारियोने काछ-लियाको लिखा कि हमारा पावना तुरत चुका दो। उन्होंने काछलियाको बुलाकर भी यह कहा कि आप इस लडाईसे अलग हो जायं तो हमे अपने पैसेकी कोई जल्दी नही, पर आप उससे अलग न होंगे तो हमे डर है कि सरकार आपको किसी भी क्षण गिरफ्तार करा सकती है। उस दशामे हमारे पैसेका क्या होगा? इसलिए आप इस लडाईसे अलग हो ही न सकते हो तो हमारा पावना आपको तुरत चुका देना चाहिए।" इस वीर पुरुषने इसका यह जवाब दिया—"लडाई-मे शामिल होना मेरी अपनी बात है, मेरे व्यापारके साथ उसका कोई लगाव नही। इस लडाईमें मेरा धर्म,

कौमका मान और मेरा अपना आत्मसम्मान भी समाया हुआ है। आपने मुझे उधार माल दिया, इसके लिए आपका अहसान मानता हूं, पर इसको या अपने व्यापारको मैं सर्वोपरि नही मान सकता। आपके पैसे मेरे लिए सोनेकी मुहरें हैं। जबतक मैं जीवित हू तबतक अपने आपको बेचकर भी आपका पैसा भर सकता हूं। पर मान लीजिए कि मेरा कुछ हो गया तो भी मेरी उगाही और मेरे मालको अपने हाथमे ही समझिए। आजतक आपने मेरा विश्वास किया है और मैं चाहता हूं कि अब भी आप विश्वास करे।" यद्यपि यह दलील सोलहो आने सही थी और काछलियाकी दृढता गोरे व्यापारियोंके लिए विश्वासका एक अतिरिक्त कारण थी, फिर भी इस वक्त उनपर उसका असर नही हो सकता था। हम सोते हुएको जगा सकते है, पर जो जागते हुए सोनेका ढोग करता हो उसको नही जगा सकते। गोरे व्यापारियोके विषयमे भी यही हुआ। उन्हे तो सेठ काछलियाको दबाना था। उनके पैसेको कोई खतरा न था।

मेरे दफ्तरमे लेनदारोकी बैठक हुई। उनको मैंने स्पष्ट शब्दोमे बता दिया कि काछलियापर जो दबाव आप लोग डाल रहे है उसमे व्यापार-नीति नही, राजनैतिक चाल है, व्यापारियोंको वैसा करना शोभा नही देता। इससे वे उलटे और चिढ गये। सेठ काछलियाके माल और उनकी उगाहीका जो लेखा मेरे पास था वह मैंने उन्हे दिखाया और इससे यह सिद्ध किया कि उनका पावना पाई-पाई वसूल हो सकता है। इसके सिवा वे यह व्यापार दूसरेके हाथ बेच देना पसंद करें तो काछलिया यह सारा माल और पावना खरीदारके हवाले कर देनेको तैयार है। यह न करे तो जो माल दुकानमे मौजूद है उसको असल दामपर ले ले और इसमे उन्हे कुछ घाटा लगे तो उसके एवजमे जो

पावना वे पसद करें वह ले ले। पाठक समझ सकते है कि यह प्रस्ताव स्वीकार करनेमे गोरे व्यापारियोको कुछ खोना न पड़ता और मै अपने अनेक मवक्किलोके लिए संकटकालमें पावनेदारोंके साथ ऐसा वदोवस्त कर सका था, पर व्यापारी इस मौकेपर न्याय करना नही चाहते थे। वे तो काछलिया-को झुकाना चाहते थे। काछलिया नही झुके और दिवालिया कर्जदार करार दे दिये गये, गो कि उनका पावना देनेसे बहुत ज्यादा निकला।

यह दिवालियापन उनके लिए कलकरूप नही, बल्कि उनका भूषण था। कौममे उनकी प्रतिष्ठा बढी और उनकी दृढता और वहादुरीके लिए सबने उनको मुवारकवादी दी। पर इस प्रकारकी वीरता अलौकिक है। सामान्य मनुष्य इसको समझ ही नही सकता। दिवाला किस तरह दिवाला न रहकर, वेइज्जती न रहकर, आदर और मान माना जा सकता है, इसकी वह कल्पना भी नही कर सकता। काछलियाको यही वस्तु स्वाभाविक लगी। वहुतेरे व्यापारियोने दिवालेके डरसे ही खूनी कानूनके सामने सिर झुकाया था। काछलिया चाहते तो दिवालियेपनसे बच सकते थे। लड़ाईसे अलग होकर बचनेका उपाय तो था ही, पर इस समय मै कुछ और ही कहना चाहता हू। वहुतसे भारतीय उनके मित्र थे। वे ऐसे सकटके समय उन्हें पैसा उधार दे सकते थे। पर ऐसा प्रबध करके वह अपना व्यापार बचाते तो उनकी वीरता लज्जित होती। जेल जानेका जो खतरा उनके लिए था वह तो सभी सत्याग्रहियोके लिए था। इसलिए किसी सत्याग्रहीसे पैसे लेकर गोरोका ऋण चुकाना उनको कदापि शोभा न देता। पर जैसे सत्याग्रही व्यापारी उनके मित्र थे वैसे ही जिन्होने खूनी कानूनके सामने घुटने टेक दिये थे वे भी मित्र थे। उनकी मदद मिल सकती थी, यह मै जानता

हूं। मेरी स्मृतिके अनुसार एक-दो मित्रोंने उनसे इसके लिए कहलाया भी, पर उनकी मदद लेना तो यह मान लेने जैसा होता कि खूनी कानूनके सामने सिर झुका देना बुद्धिमानी है। अत हम दोनोंने निश्चय किया कि उनकी मदद हमें हरगिज न लेनी चाहिए। इसके सिवा हम दोनोंने यह भी सोचा कि अगर काछलिया अपने आपको दिवालिया करार दिया जाने दे तो उनका दिवाला दूसरोंके लिए ढालका काम देगा। कारण कि अगर सौमें नही तो ९० फीसदी दिवालोंमें पावनेदारको कुछ-न-कुछ नुकसान उठाना ही पडता है। अत उसे अगर रुपयेमें आठ आने मिल जाए तो वह प्रसन्न होता है और बारह आने मिल जाएं तब तो वह मान लेता है कि हमारा पूरा पावना वसूल हो गया। दक्षिण अफ्रीकाके बड़े व्यापारी आमतौरसे ६। फीसदी नही, बल्कि २५ फीसदी नफा लिया करते हैं। अत. उन्हे रुपयेमें बारह आने मिल जाए तो वे इसे घाटेका रोजगार नही मानते। पर दिवालेमें पूरा-पूरा पावना तो शायद ही मिलता है। इसलिए कोई भी पावनेदार कर्जदारको दिवालिया बनवाना नहीं चाहता।

अत. काछलियाके दिवालेसे गोरे व्यापारियोका दूसरोको धमकाना तो बंद हो ही जाना चाहिए था। हुआ भी यही। गोरोका मतलब यह था कि काछलियाको दबाकर युद्धसे अलग करा दे और वह ऐसा न करे तो अपना सौ फीसदी पावना उनसे वसूल करे। दोमेंसे एक भी उद्देश्य सिद्ध न हुआ, उलटा प्रतिकूल परिणाम हुआ। प्रतिष्ठित भारतीय व्यापारी-के दिवालियेपनका स्वागत करनेका यह पहला उदाहरण देखकर गोरे व्यापारी हतबुद्धि हो गये और सदाके लिए शांत हो गये। एक सालके अदर सेठ काछलियाके मालसे गोरोका पावना पूरा-पूरा, शत-प्रतिशत वसूल हो गया। दिवालेमें

पावनेदारोको सौ फीसदी मिलनेकी मेरी जानकारीमें तो दक्षिण अफ्रीकामे यह पहली ही मिसाल थी। इससे, लडाई जब चल रही थी उसी वक्त काछलियाका मान गोरे व्यापारियोंमे अतिशय बढ गया और वही व्यापारी लडाईके जारी रहते हुए उनको जितना माल चाहिए उतना उधार देनेको तैयार हो गये। पर काछलियाका बल तो दिन-दिन बढता ही जाता था। युद्धका रहस्य भी वह समझ गये। लडाई कितनी लबी होगी यह पीछेमे तो कोई कह ही न सकता था। इसलिए दिवालिया ठहराये जानेके बाद हमने तै कर लिया था कि जबतक लडाई चल रही है तबतक वह लबे व्यापारमें पडे ही नही। एक गरीब आदमी जितनेमे अपना खर्च चला सकता है उतना कमा लेने भर कारबार रखकर बाकी व्यापार लड़ाईके दरमियान बद रखनेका उन्होने निश्चय किया। इससे गोरे उन्हे जो सुभीता दे रहे थे उसका लाभ उन्होने नही उठाया। पाठक इतना तो समझ ही लेगे कि काछलिया सेठके जीवनकी जिन घटनाओका वर्णन मैने ऊपर किया है वे सारी इस प्रकरणमे वर्णित कमेटीकी बैठकके बाद ही नही घटित हुई। पर इस वर्णनको एक ही साथ देना ठीक समझकर यहा मैने उन्हे दे दिया है। तिथिक्रमकी दृष्टिसे देखे तो दूसरी लडाई शुरू होनेके (१० सितबर १९०८) के कुछ दिन बाद काछलिया अध्यक्ष हुए और इसके कोई पाच महीने बाद दिवालिया करार दिये गए।

अब हम कमेटीकी बैठकके नतीजेपर विचार करे। इस बैठकके बाद मैने जनरल स्मट्सको पत्रमे लिखा कि आपका नया बिल समझौतेका भग है। समझौतेके एक हफ्तेके अंदर उन्होने जो भाषण दिया था उसकी ओर भी मैने अपने पत्रमे ध्यान खीचा। उस भाषणमें उन्होने ये शब्द कहे थे—"ये लोग (एशियावासी) एशियाटिक कानून रद

कर देनेके लिए मुझसे कहते है। मैंने उनसे कह दिया है कि जबतक सभी एशियावासी ऐच्छिक परवाना नही ले लेते तबतक कानून रद नही किया जा सकता।" अधिकारी लोग ऐसी बातोंका जवाब नही दिया करते जो उन्हे उलझनमे फँसा दे। देते भी है तो वह गोल-मटोल होता है। जनरल स्मट्स तो इस कलाके आचार्य थे। आप चाहे जितना लिखे, चाहे जितना बोले, जब उनकी जवाब देनेकी इच्छा न होगी तब उनके मुहसे आप कोई उत्तर नही निकलवा सकते। अपनेको मिले हुए पत्रोका उत्तर देना ही चाहिए, यह सामान्य शिष्टाचार उनके लिए बंधनकारक नही था। अत. अपने पत्रोंके उत्तरसे मै कुछ भी सतोष न प्राप्त कर सका।

अपने मध्यस्थ अलबर्ट कार्टराइटसे मै मिला। वह सुनकर स्तब्ध हो गये और कहा—"सचमुच मैं इस आदमी-को समझ नही सकता। एशियाटिक कानून रद कर देनेकी बात मुझे अच्छी तरह याद है। मुझसे जो हो सकेगा करूंगा, पर तुम जानते हो कि यह आदमी जब एक निश्चय कर लेता है तब उसपर किसीकी कुछ चलती नही। अखबारोंके लेखों-को तो वह कुछ गिनता ही नही। इसलिए मुझे पूरा डर है कि मेरी मदद तुम लोगोंके कुछ काम न आ सकेगी।" मि० हास्किन आदिसे भी मिला। उन्होने जनरल स्मट्सको पत्र लिखा। उन्हे भी बहुत ही असंतोषकारक उत्तर मिला। 'विश्वासघात' शीर्षक देकर मैंने 'इंडियन ओपीनियन' मे कई लेख भी लिखे; पर जनरल स्मट्स उनकी परवा क्यों करने लगे? तत्त्ववेत्ता अथवा निष्ठुर मनुष्यके लिए चाहे जैसे कड़वे विशेषण व्यवहार करो उसपर कोई असर नही होनेका। वह अपने सोचे हुए काम करनेमें तन-मनसे लगा रहता है। जनरल स्मट्सके विषयमे दोमेसे

किस विशेषणका व्यवहार हो सकता है, यह मै नही जानता। मुझे यह तो स्वीकार करना ही होगा कि उनकी वृत्तिमें एक प्रकारकी दार्शनिकता है। जिस वक्त उनके साथ मेरा पत्र-व्यवहार हो रहा था और अखबारोमे मेरे लेख निकल रहे थे उस वक्त तो मुझे याद है कि मैंने उन्हे निष्ठुर ही माना था। पर यह युद्धका अभी पहला भाग, उसका दूसरा ही बरस, था और हमारी लड़ाई तो आठ बरस चली। इस बीच मैं उनसे कितनी ही बार मिला। हमारी पीछेकी बात-चीतसे मुझे अकसर ऐसा लगता कि जनरल स्मट्सके काइयापनके बारेमे जो आम खयाल दक्षिण अफ्रीकामे है उसमे परिवर्तन होना चाहिए। दो बाते तो मुझे साफ दिखाई दी . अपनी राज-नीतिके विषयमे उन्होने कुछ सिद्धांत स्थिर कर रखे है और वे नितान्त अनीतिमय तो नही ही है, पर इसके साथ-साथ मैंने यह भी देखा कि उनके राजनीतिशास्त्रमे चालाकी और मौका पडनेपर सत्याभासके लिए भी स्थान है।[1]

: २ :

युद्धकी पुनरावृत्ति

एक ओर जनरल स्मट्ससे समझौतेकी शर्तोका पालन करनेके लिए विनती की जा रही थी तो दूसरी ओर कौमको फिरसे जगानेका उद्योग उत्साहपूर्वक चल रहा था। अनुभव यह हुआ कि हर जगह लडाई फिर शुरू करने और जेल जानेको लोग तैयार थे। हर जगह सभाए की जाने लगी, जिनमें

---

[1] ये पंक्तिया छपते समय हमें यह मालूम हो गया है कि जनरल स्मट्सकी सरदारीका भी अंत हो सकता है।—मो० क० गांधी।

सरकारके साथ हमारा जो पत्र-व्यवहार चल रहा था वह समझाया जाता। 'इंडियन ओपीनियन' में तो हर हफ्तेका रोजनामचा दिया ही जाता था। इससे कौमको स्थितिकी पूरी जानकारी रहती। सबको समझा दिया गया कि हमारा अपनी खुशीसे परवाने लेना निष्फल सिद्ध होनेवाला है और खूनी कानून किसी तरह रद्द न हुआ तो हमें अपने परवाने जला डालने होंगे। इससे स्थानीय सरकारको यह मालूम हो जायगा कि हिंदुस्तानी अडिग हैं, निर्भय हैं और जेल जानेको भी तैयार हैं। इस दृष्टिसे हर जगह परवाने भी इकट्ठा किये जा रहे थे।

जिस बिलके बारेमें हम पिछले प्रकरणमें पढ़ चुके हैं सरकारकी ओरसे उसको पास करानेकी तैयारी होने लगी। ट्रासवालकी धारा सभाका अधिवेशन आरंभ हुआ। भारतीयोंने उसमें आवेदनपत्र भेजा, पर इसका भी नतीजा कुछ न निकला। अंतमें सत्याग्रहियोंका 'अल्टिमेटम' सरकारके पास भेजा गया। 'अल्टिमेटम' के मानी होते हैं 'निश्चयपत्र' या धमकीका पत्र जो लड़ाईके इरादेसे ही भेजा जाता है। इस शब्दका व्यवहार कौमकी ओरसे नहीं किया गया, बल्कि उसके निश्चयकी सूचना देनेवाला जो पत्र सरकारको भेजा गया उसको जनरल स्मट्सने धारा सभामें यही नाम दिया और साथ-साथ यह भी कहा कि जो लोग ऐसी धमकी इस सरकारको दे रहे हैं उनको उसके बलका पता नहीं है। मुझे खेद इतना ही है कि कुछ आंदोलनकारी (एजिटेटर) गरीब हिंदुस्तानियोंको उकसा रहे हैं और गरीब लोगोंमें उनका जोर हुआ तो वे बरबाद हो जायगे। अखबारोंके संवाददाताओंने इस प्रसंगका वर्णन करते हुए लिखा था कि धारा सभाके बहुसंख्यक सदस्य अल्टिमेटमकी बात सुनकर आगबबूला हो गये। उनकी आंखें सुर्ख हो गईं और उन्होंने

जनरल स्मट्सके पेश किये हुए बिलको एकमतसे तथा उत्साहपूर्वक पास कर दिया।

उपर्युक्त अल्टिमेटममें इतनी ही बात थी—"जो समझौता हिंदुस्तानी कौम और जनरल स्मट्सके बीच हुआ था उसकी स्पष्ट शर्त यह है कि हिंदुस्तानी अपनी इच्छासे परवाने ले ले तो उनको बाक़ायदा मान लेनेके लिए एक बिल विधान-सभामें पेश किया जायगा और एशियाटिक कानून रद कर दिया जायगा। यह तो प्रसिद्ध बात है कि हिंदुस्तानी कौमने इस रीतिसे ऐच्छिक परवाने ले लिए जिससे सरकारी अधिकारियोंको संतोष हो जाय। इसलिए अब एशियाटिक कानून रद हो ही जाना चाहिए। कौमने इस बारेमें जनरल स्मट्सको बहुत लिखा। न्याय पानेके लिए जो दूसरे कानूनी उपाय किये जा सकते थे वे सब भी किये गये; पर अबतक उसका सारा प्रयत्न निष्फल हुआ है। मसविदा विधान-सभामें पास होने ही जा रहा है। ऐसे वक्त कौममें फैली हुई बेचैनी और उसकी तीव्र भावना सरकारको बता देना नेताओंका फर्ज है। और हमें खेदके साथ कहना पड़ता है कि अगर समझौतेकी शर्तोंके अनुसार एशियाटिक कानून रद न कर दिया गया और ऐसा करनेके निश्चयकी सूचना कौमको अमुक अवधिके अंदर न मिल गई तो उसने जो परवाने इकट्ठा किये हैं वे जला डाले जायंगे और ऐसा करनेसे जो मुसीबतें उसपर आयेंगी उनको वह विनय और दृढ़ताके साथ सहन कर लेगी।"

इस पत्रको 'अल्टिमेटम' माननेका एक कारण तो यह था कि उसमें जवाब देनेके लिए एक अवधि रख दी गई थी। दूसरा कारण था गोरोंका यह आम खयाल कि हिंदुस्तानी एक जंगली कौम है। अगर हिंदुस्तानियोंको वे अपने-जैसा समझते होते तो इस चिट्ठीको विनय-पत्र मानते और उसपर ध्यान देते; पर गोरोंकी यह जंगलीपनकी धारणा ही हिंदुस्तानियोंके

ऊपरके जैसा पत्र लिखनेका पर्याप्त कारण था। कौमके सामने दो स्थितिया थी . एक तो यह कि जगलीपनका आरोप स्वीकार कर दवी पडी रहे। दूसरी यह कि उक्त आरोपसे इन्कार करनेके अमली कदम उठाये। ऐसे कदमोंमे यह पत्र पहला था। इस पत्रके पीछे उसपर अमल करनेका दृढ निश्चय न होता तो यह पत्र उद्धत समझा जाता और हिंदुस्तानी विचाररहित और उजड्ड कौम है, यह सावित होता।

पाठकोंके मनमें शायद यह शंका पैदा हो कि जगली होनेसे इन्कार करनेका कदम तो १९०६मे, जब सत्याग्रहकी प्रतिज्ञा की गई उसी वक्त उठाया जा चुका था और यदि यह सही हो तो इस पत्रमे ऐसी कौन-सी नई बात थी जिससे मैं उसको महत्त्व देता हू और यह मानता हू कि उसके लिखे जानेके वक्तसे कौमने जंगलीपनके आरोपको अस्वीकार करना आरभ किया? एक दृष्टिसे यह दलील सही मानी जा सकती है, पर विशेष विचारसे मालूम होगा कि अस्वीकारका सच्चा आरंभ निश्चय-पत्रसे ही हुआ। पाठकोको याद रखना चाहिए कि सत्याग्रहकी प्रतिज्ञाका संयोग अनायास बना। उसके बादकी जेल आदि तो उसका अनिवार्य परिणाम ही था। उसमें कौमकी प्रतिष्ठा बढ़ी, पर अनजानमे। यह पत्र लिखे जानेके समय तो पूरा ज्ञान और प्रतिष्ठाका दावा करनेका पूरा इरादा था। खूनी कानूनको रद करनेका उद्देश्य तो था ही, जैसे पहले वैसे अब। पर उसके साथ भाषाकी शैली, काम करनेके ढंगके चुनाव आदिमे फर्क था। गुलाम मालिकको सलाम करे और एक मित्र दूसरे मित्रको करे तो दोनों सलाम तो है ही, पर दोनोमे इतना बडा अतर है कि उससे तटस्थ प्रेक्षक तुरंत जान जायगा कि एक गुलाम और दूसरा दोस्त है।

अल्टिमेटम भेजते समय हम लोगोमे यह चर्चा भी हुई थी कि अवधि नियत करके जवाब मंगाना क्या अविनय न माना

जायगा ? क्या इसीसे यह नहीं हो सकता कि सरकार हमारी माग मजूर करनेवाली हो तो भी न करे ? कौमका निश्चय परोक्ष रीतिसे सरकारपर प्रकट कर देना क्या काफी न होगा ? इन सब बातोपर विचार कर लेनेके बाद हम सबने एकमतसे निश्चय किया कि हम जिसको सही और मुनासिब समझे वही करें। अविनयी कहे जानेका इलजाम सिरपर आये तो उसे कबूल कर ले। सरकार जो देनेवाली हो वह झूठा रोष दिखाकर न दे तो यह जोखिम भी उठा लें। अगर हम मनुष्यरूपमे अपने आपको दूसरोसे किसी तरह हेठा न मानते हो और यह भी मानते हो कि चाहे जितना दुःख चाहे जितने दिनतक उठाना पडे उसे सह लेनेकी शक्ति हममे है, तो जो सही और सीधा रास्ता हो वही हमे स्वीकार करना चाहिए।

अब शायद पाठक यह समझ सके कि इस वक्त जो कदम उठाया गया उसमे कुछ नवीनता और विशेषता थी। उसकी प्रतिध्वनि विधान-सभामे और बाहरके यूरोपीय मडलोमे भी हुई। कुछने हिंदुस्तानियोकी हिम्मतकी सराहना की और कितने ही उनपर अति क्रुद्ध हुए। उन्होने यह भी कहा कि हिंदुस्तानियोको इस गुस्ताखीकी पूरी सजा मिलनी चाहिए। उभयपक्षने अपने व्यवहारसे हिंदुस्तानियोके कदमका नयापन स्वीकार किया। सत्याग्रह जब आरभ हुआ उस वक्त सच पूछिए तो वह नया कदम था। फिर भी उससे जो हलचल मची थी उसकी बनिस्वत इस पत्रसे बहुत अधिक हलचल मची। इसका एक कारण तो स्पष्ट ही है। सत्याग्रह आरभ होनेके समय कौमकी शक्तिका अदाजा किसीको न हुआ था। अत उस वक्त ऐसा पत्र या उसकी भाषा हमे शोभा न देती। अब कौमकी थोडी-बहुत परीक्षा हो चुकी थी। सबने देख लिया था कि सामाजिक कठिनाइयोका सामना करनेमे जो कष्ट सिरपर आये उन्हे सह लेनेकी शक्ति उसमे है। अत

निश्चयपत्रकी भाषा स्वाभाविक रीतिसे उद्भूत हुई और तनिक भी अशोभनीय न लगी।

ऐच्छिक परवानोंकी होली

'अल्टिमेटम' या निश्चयपत्रकी अवधि उसी दिनकी रखी गई थी जिस दिन दूसरा एशियाटिक कानून विधान-सभामें पास होनेवाला था। अवधि बीतनेके एक-दो घंटे बाद परवानोंको जलानेकी सार्वजनिक क्रिया करनेके लिए सभा बुलाई गई थी। सत्याग्रह-कमेटीने सोचा था कि शायद अनसोची रीतिसे सरकारका अनुकूल उत्तर मिल जाय तो भी सभा व्यर्थ न जाय। उस दशामें सरकारका अनुकूल निश्चय उसके जरिये लोगोंपर प्रकट किया जा सकता था।

कमेटीका खयाल तो यह था कि इस निश्चयपत्रका सरकार कोई जवाब ही नहीं देगी। हम सभी पहलेहीसे सभा-स्थानपर पहुंच गये थे। इसका प्रबंध भी कर रखा गया था कि सरकारका तारसे भी कोई जवाब आये तो वह सभामें तुरत मिल जाय। सभाका समय चार बजेका रखा गया था। नियमानुसार वह मस्जिदके मैदानमें १६ अगस्त १९०८ को की गई थी।

सारा मैदान हिंदुस्तानियोंसे ठसाठस भर गया था। दक्षिण अफ्रीकामें हबशी अपना खाना पकानेके लिए लोहेकी बनी चार पायोंवाली छोटी या बड़ी कढाई काममें लाते हैं। परवाने जलानेके लिए ऐसी ही एक कढाई जो बड़ी-से-बड़ी मिल सकी, एक हिंदुस्तानी व्यापारीकी दुकानसे मंगा रखी गई थी। यह कढाई एक कोनेमें चबूतरेके ऊपर रखी गई थी।

सभाका काम शुरू करनेका समय हुआ कि इतनेमें एक स्वयंसेवक बाइसिकिलपर आ पहुचा। उसके हाथमे तार था। यह तार सरकारका जवाव था। उसमे हिंदुस्तानी कौमके निश्चयपर खेद प्रकट किया गया था और यह भी जता दिया गया था कि सरकारके लिए अपना निश्चय वदल सकना मुमकिन नही। यह तार सभाको पढकर सुना दिया गया। सभाने उसका स्वागत किया। सरकार निश्चयपत्रकी मागे मजूर कर लेती तो कौमको परवानोंकी होली जलानेका शुभ कार्य करनेका जो अवसर मिला था वह हाथसे निकल जाता। यह हर्ष योग्य माना जाय कि अयोग्य, इसका निश्चय करना बहुत कठिन है। जिस-जिसने जवावका तालियोंसे स्वागत किया उनका हेतु समझे बिना योग्यता-अयोग्यताका निर्णय नही हो सकता। पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि यह हर्ष सभाके उत्साहका सुदर लक्षण था। सभाको अपनी शक्तिका कुछ अंदाजा मिल गया था।

सभा आरंभ हुई। सभापतिने सभाको सावधान किया। सारी स्थिति समझाई। सभाने अवसरके अनुरूप प्रस्ताव स्वीकार किये। जो भिन्न-भिन्न स्थितियां हमारे सामने अभी आई थी मैंने उन्हे स्पष्ट रीतिसे समझा दिया और कहा—"जिन लोगोने अपने परवाने जलानेके लिए दिये है उनमेंसे कोई अपना परवाना वापस लेना चाहता हो तो ले सकता है। परवाने जला देनेसे ही कोई अपराध नही होता और जिन्हे जेल जानेका हौसला हो उनका हौसला इतनेहीसे पूरा नही होनेका। परवाने जलाकर तो हम महज अपना यह निश्चय प्रकट करते है कि हमे खूनी कानूनके आगे सिर नही झुकाना है और परवाना दिखानेभरकी शक्ति भी अपने पास नही रखना चाहते। पर जो आदमी परवाना जलानेकी क्रियामे आज शामिल हो वह अगले ही दिन जाकर नया परवाना निकलवा

ले तो कोई उनका हाथ पकड़नेवाला नहीं। जिसका ऐसा कुकर्म करनेका इरादा हो या जिसे परीक्षाके समय अपनी शक्तिके विषयमे शका हो उसके लिए अब भी वक्त है कि अपना परवाना वापस ले ले और वह ले सकता है। इस वक्त अपना परवाना लौटा लेनेवालेके लिए लज्जाका कोई कारण नही। मै तो इसको एक तरहकी हिम्मत ही मानूगा। पर पीछेसे परवानेकी नकल लेनेमे शर्म और जिल्लत है और कौमकी हानि है। इसके सिवा कौमको यह भी समझ रखना चाहिए कि यह लडाई लबी हो सकती है। हमे यह भी मालूम है कि हमारे कुछ साथी निश्चयसे गिर गये है। अत. स्पष्ट है कि कौमकी गाड़ी खीचनेवाले जो बाकी रह गये है उन्हे उतना जोर और लगाना होगा। मेरी सलाह है कि इन सारी बातों-को सोच-समझकर ही आप आनेका साहस करें।"

मेरे भाषणके बीचमे ही ये आवाजे तो आ ही रही थी—"हमे परवाने वापस नही लेने है, उनकी होली जलाइये।" अतमे मैने कहा कि किसीको प्रस्तावका विरोध करना हो तो वह खडा हो जाय। पर कोई खड़ा न हुआ। इस सभामें मीर आलम भी हाजिर था। उसने जाहिर किया कि मुझको मारकर उसने भूल की और अपना असल परवाना जलानेके लिए दिया। ऐच्छिक परवाना तो उसने लिया ही नही था। मैने मीर आलमका हाथ पकड़ा और हर्षसे दबाया। मैने फिर उसे जताया कि मेरे मनमे तुम्हारे प्रति कभी कोई रोष नहीं था। मीर आलमके इस कामसे सभाके हर्षका ठिकाना न रहा।

कमेटीके पास दो हजारसे ऊपर परवाने जलानेके लिए आ चुके थे। उनकी गठरी उपर्युक्त कढाईमे झोंककर ऊपरसे मिट्टीका तेल उंडेल दिया गया और ईसप मियांने उसे दिया-सलाई लगा दी। सारी सभा खडी हो गई और यह होली जबतक जलती रही तबतक तालियोसे मैदानको गुजा रखा। कुछ

लोगोने अपने परवाने अभीतक अपने पास ही रख छोडे थे। वे मचपर उनकी वर्षा करने लगे। कढाईमे उनकी भी आहुति कर दी गई। होली जलनेसे पहले तक वे क्यों नही दिये गए, यह पूछनेपर किसीने जवाब दिया कि हमारा ख्याल था कि होली जलते समय देनेमे अधिक शोभा है और दूसरोपर उसका असर भी अधिक होगा। दूसरे कितनोने सरल भावसे स्वीकार किया कि हमारी हिम्मत न होती थी और अतिम क्षणतक यह भी सोचते थे कि शायद परवाने न जलाये जायं। पर यह होली देखकर हमसे रहा न गया। जो गति सबकी होगी वह हमारी भी हो जायगी। इस लडाईमे ऐसी सरल हृदयताके अनुभव हमें अनेक हुए।

लदनके 'डेली मेल' अखबारके जोहान्सवर्गके सवाददाताने उक्त पत्रको इस सभाका विवरण भेजा। इसमे परवानोकी होली जलानेकी तुलना उस घटनाके साथ की गई जब अमरीकाके अग्रेजोंने विलायतसे भेजी चायकी पेटियोको बोस्टन-बंदरगाहमे जलसमाधि दे दी और इंग्लैडके अधीन न रहनेके निश्चयकी घोषणा की। दक्षिण अफ्रीकामे १३००० हिंदुस्तानियोके असहाय समुदायका ट्रासवालके बलवान राज्यसे सामना था। उधर अमरीकामे वहाके हर बातमे कुशल लाखो गोरे ब्रिटिश साम्राज्यके बलका सामना कर रहे थे। इन दोनों स्थितियोंकी तुलना करके देखनेपर 'डेलीमेल' के सवाद-दाताने भारतीयोके विषयमे अतिशयोक्ति की, ऐसा नही जान पडता। हिंदुस्तानी कौमका हथियार अपने सत्यपर विश्वास और भगवानके भरोसेके सिवा और कुछ न था। इसमें सदेह नही कि श्रद्धालुके लिए यह शस्त्र सर्वोपरि है। पर जन-समाजमे अभी यह दृष्टि नही आई थी और जबतक वह नही आती तबतक निहत्थे १३ हजार हिंदुस्तानी हर हथियारसे लैस अमरीकाके गोरोके सामने तुच्छ ही गिने जाएगे, पर

ईश्वर तो निर्बलका ही बल है। इसलिए दुनिया इनको तुच्छ समझे, यह ठीक ही है।

: ४ :

कौमपर नया सवाल उठानेका आरोप

विधानसभाकी जिस बैठकमें एशियाटिक कानून (दूसरा) पास हुआ उसीमें जनरल स्मट्सने एक और बिल भी पेश किया। उसका नाम था 'इमिग्रट्स रिस्ट्रिक्शन ऐक्ट', यानी नई बस्तीपर रोक लगानेवाला कानून। यह कानून सबपर लागू होता था; पर उसका मुख्य उद्देश्य नये आनेवाले हिंदुस्तानियोंको रोकना था। इस कानूनको गढनेमें नेटालके वैसे ही कानूनका अनुकरण किया गया था। पर इसमें एक दफा यह थी कि जिनपर एशियाटिक कानून लागू होता है वे भी प्रतिबद्ध बस्तीकी व्याख्यामें आ जाएं। अर्थात् परोक्ष रीतिसे उस कानूनमें ऐसी युक्ति की गई थी कि एक भी नया हिंदुस्तानी ट्रासवालमें दाखिल न हो सके। इससे लोहा लेना तो कौमके लिए जरूरी था ही, पर उसको सत्याग्रहमें शामिल करें या नहीं, यह सवाल सामने खड़ा हो गया। सत्याग्रह कब और किस विषयमें करे, इस बारेमें कौम किसीके साथ बंधी हुई नहीं थी। उसकी सीमा कौमके विवेक और शक्तिसे थी। बात-बातमें कोई सत्याग्रह करे तो वह दुराग्रह होगा। वैसे ही अपनी शक्तिकी नाप-तौल किये बिना कोई इस शस्त्रका उपयोग करे और पीछे हार खाय तो इसमें भी वह खुद तो कलंकित होता ही है, इस अविवेकसे इस बेजोड़ हथियारको भी दूषित करता है।

कमेटीने देखा कि हिंदुस्तानी कौमका सत्याग्रह खूनी

कानूनके ही खिलाफ है। वह रद हो जाय तो वस्तीसबंधी कानून (इमिग्रंट्स रिस्ट्रिक्शन ऐक्ट) मे छिपा हुआ जहर, जो ऊपर बताया गया है, अपने आप नष्ट हो जायगा। फिर भी अगर यह सोचकर कि खूनी कानून रद हो गया तो बस्तीवाले कानूनके लिए अलगसे चर्चा या आंदोलनकी आवश्यकता न होगी। कौमे चुप बैठी रहें तो यह समझा जायगा कि हिंदुस्तानियोंकी नई बस्तीपर लगाये गये सारे प्रतिबधोंको उसने स्वीकार कर लिया। इसलिए उस कानूनका तो विरोध करना ही होगा। विचार केवल इस बातका करना है कि इस संघर्षको सत्याग्रहमें शामिल करें या नही। कौमने सोचा कि सत्याग्रहके दौरानमें ही उसपर कोई नया हमला हो तो इस हमलेको भी सत्याग्रहमे शामिल कर लेना उसका फर्ज होगा। अशक्तिवश वैसा न किया जा सके तो यह जुदी बात है। नेताओंने देखा कि शक्तिके अभाव या न्यूनताका बहाना बनाकर हम इस जहरीली दफाकी घूटको पी नही सकते, इसलिए उसको भी सत्याग्रहका विषय बना ही लेना चाहिए।

अत इस विषयमे स्थानीय सरकारके साथ लिखा-पढी आरभ हुई। इससे कानूनमें कोई हेर-फेर तो नही हुआ, पर जनरल स्मट्सको उसमे कौमको, सच पूछिये तो मुझको, बदनाम करनेका एक नया औजार मिल गया। वह जानते थे कि जितने गोरे जाहिरा हमारी मदद करते है उनसे कही अधिककी हमदर्दी निजी तौरपर हमारे साथ है और वह हमदर्दी नष्ट की जा सकती हो तो उसकी फिकर की जाय। उनका यह सोचना स्वाभाविक ही था। इसलिए उन्होंने मुझपर नया सवाल उठानेका इलजाम लगाया और अपने साथ बातचीतमे तथा लिखकर भी हमारे अग्रेज सहायकोको बताया—"गाधीको जितना मै पहचानता हू उतना आप लोग नही पहचानते। आप उसे एक इच दे तो वह एक हाथ मागेगा।

यह सब मैं जानता हू। इसीलिए एशियाटिक कानूनको रद नही कर रहा हू। जब उसने सत्याग्रह आरभ किया था तब नई वस्तीकी तो कोई वात ही नही थी। ट्रासवालकी रक्षाके लिए हम नये हिंदुस्तानियोका आना रोकनेका कानून वना रहे हैं तो यह उसमे भी अपना सत्याग्रह चलाना चाहता है। ऐसी चालाकी (कनिग) कवतक वर्दाश्त की जा सकती है? उसे जो करना हो करे, भले ही एक-एक हिदुस्तानी वरवाद हो जाय, मैं एशियाटिक कानूनको रद करनेवाला नही और ट्रासवाल सरकारने हिदुस्तानियोके विपयमे जो नीति ग्रहण की है उसका भी त्याग नही किया जायगा। इस न्यायसंगत नीतिका समर्थन करना हर यूरोपियनका फर्ज है।"

तनिक-सा विचार करनेसे ही यह देखा जा सकता है कि उपर्युक्त दलील सोलहो आने गैरवाजिब और नीतिविरुद्ध थी। नई वस्ती रोकनेके कानूनका जव जन्म ही नही हुआ था उस वक्त मैं या कौम उसका विरोध कैसे कर सकती थी? जनरल स्मट्सने मेरी चालाकीके अनुभवकी वात कही है, पर इसकी एक भी मिसाल वह पेश नही कर सके और मैं खुद तो जानता हू कि दक्षिण अफ्रीकामे मैं इतने वरस रहा उसमे कभी चालाकी वरतनेकी बात मुझे याद ही नही आती; वल्कि इस मौकेपर तो मुझे आगे वढकर यह कहनेमे भी हिचक नही होती कि अपनी सारी जिंदगीमे मैंने चालाकीसे कभी काम लिया ही नही। मैं मानता हू कि चालाकीसे काम लेना नीति-विरुद्ध है। इतना ही नही, मैं तो उसे युक्तिविरुद्ध भी मानता हूं। इसलिए व्यवहार-दृष्टिसे भी उसका उपयोग मैंने सदा नापसद किया है। अपने वचावमे इतना लिखनेकी भी जरूरत मैं नही समझता। जिस पाठकवर्गके लिए मैं यह लिख रहा हू उसके सामने अपने मुहसे अपनी सफाई देते मुझे शर्म मालूम होती है। मैं चालाकीसे रहित हूं इसका अनुभव अगर उन्हे

अबतक न हुआ हो तो अपनी सफाईसे मैं इस विषयको सिद्ध कर ही नही सकता। ऊपरके वाक्य लिखनेका हेतु इतना ही है कि सत्याग्रहकी लड़ाई कैसे संकटके बीच लड़ी जा रही थी इसकी कल्पना पाठकोको हो जाय और वे समझ लें कि कौम नीतिकी पगडंडीसे वाल बराबर भी हट जाती तो लड़ाई कैसे खतरेमे पड़ जाती। बाजीगर जब बीस फुट ऊचे खभेसे लटकाई गई रस्सीपर चलता है तो उसे जैसी एकाग्र दृष्टि रखकर चलना पड़ता है—तनिक भी निगाह चूके तो दाहिने गिरे या बाये, उसके लिए मौत रखी ही होती है—सत्याग्रहीको उससे भी अधिक एकाग्र दृष्टि रखकर चलना होता है। आठ बरसके लबे कालमे मैने यह बात सीख ली थी। जिन मित्रोके सामने जनरल स्मट्सने उक्त आरोप लगाया था वे मुझे अच्छी तरह पहचानते थे। अत उनपर जनरल स्मट्स जो चाहते थे उसका उलटा ही असर हुआ। उन्होने मेरा या युद्धका त्याग नही किया, बल्कि हमारी सहायता करनेमे अधिक उत्साह दिखाने लगे और कौमने पीछे देख लिया कि हमने नई बस्तीके कानूनको सत्याग्रहमे शामिल न कर लिया होता तो हम भारी मुसीबतमे पड़ जाते।

मेरे अनुभवने मुझे सिखाया है कि जिसे मैं वृद्धिका नियम कहता हू वह हरएक शुद्ध युद्धपर घटित होता है। पर सत्याग्रहके विषयमे तो मैं इस वस्तुको सिद्धातरूपमे मानता हू। जैसे गगानदी ज्यो-ज्यो आगे बढती है त्यो-त्यो अनेक नदियां आकर उसमे मिलती जाती है और मुहानेपर तो उसका पाट इतना चौड़ा हो जाता है कि दाये-बाये किसी ओर किनारा दिखाई नही देता और नावमे बैठे हुए यात्रीको विस्तारमे उसमे और समुद्रमे कोई फर्क नही दिखाई देता। उसी तरह सत्याग्रहकी लड़ाई ज्यो-ज्यो आगे बढती है त्यो-त्यो उससे उत्पन्न होनेवाले परिणाममे वृद्धि होती जाती है। मैं मानता

हूं कि सत्याग्रहका यह परिणाम अनिवार्य है। उसका कारण उसके मूल तत्वमें ही विद्यमान है। कारण कि सत्याग्रहमें कम-से-कम ही अधिक-से-अधिक है। कम-से-कममें कुछ घटाना तो हो ही नही सकता, इसलिए इससे पीछे हटा ही नही जा सकता और स्वाभाविक क्रिया वृद्धिकी ही हो सकती है। दूसरी लडाइया शुद्ध हों तो भी मागमें कमीकी गुंजाइश शुरूसे ही रखी जाती है। इससे वृद्धिका नियम उनपर निरपवाद-रूपसे घटित हो सकता है। इस विषयमें मैंने शका प्रकट की। पर जब कम-से-कम अधिक-से-अधिक ही हो तब वृद्धिका नियम कैसे घटित होता है, यह बात मुझे समझानी होगी। जैसे गंगा वृद्धिकी खोजमें अपनी गति छोड़ती नही, वैसे ही सत्या-ग्रही भी अपनी तलवारकी धार-सरीखा रास्ता नही छोडता। पर जैसे गगाकी धारा ज्यो-ज्यो बढती जाती है त्यों-त्यों दूसरी नदिया अपने आप आकर उसमें मिलती जाती है, वही बात सत्याग्रही गगाकी भी है।

बस्तीका कानून सत्याग्रहके विषयमें शामिल कर लिया गया तो यह देखकर सत्याग्रहका सिद्धात न जाननेवाले हिदु-स्तानियोंने आग्रह किया कि ट्रांसवालके भारतीय विरोधी सभी कानून उनमें ले लिये जाए। दूसरे कितने लोगोंने कहा कि जबतक लड़ाई चल रही है, नेटाल, केप कालोनी, आरेंज फ्री स्टेट इन सबको निमंत्रित करके दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंके विरोधी हरएक कानूनके विरुद्ध सत्याग्रह छेड दिया जाय। इन दोनो बातोंमें सिद्धात भग था। मैंने साफ बता दिया कि जो स्थिति सत्याग्रह आरंभ होनेके समय हमने नही ग्रहण की थी वह अब मौका देखकर ग्रहण कर लें तो यह ईमानदारीके खिलाफ होगा। हमारी शक्ति कितनी ही क्यो न हो, यह सत्याग्रह जिन मागोंके लिए किया गया है उन मांगोंके पूरी हो जानेपर वह समाप्त होना ही चाहिए। मेरा

दृढ़ विश्वास है कि इस सिद्धांतपर हम दृढ न रहते तो जीतके बदले हमारी हार हुई होती। इतना ही नही, जो हमदर्दी हम पा सके वह भी गंवा बैठते। इसके विपरीत जब सत्याग्रह चल रहा हो उस वक्त प्रतिपक्षी खुद नई अड़चने पैदा करता है तो वे अपने आप सत्याग्रहमें शामिल हो जाती है। सत्याग्रही जब अपनी दिशामे चला जा रहा हो उस वक्त जो चीजें उसके रास्तेमे आकर मिलती जाएं उनकी उपेक्षा वह अपने सत्याग्रहका त्याग किये बिना कर ही नही सकता। और प्रतिपक्षी तो सत्याग्रही होता ही नही। सत्याग्रहके विरुद्ध सत्याग्रह करना असभव है। इसलिए न्यूनतम और अधिकतमका बधन उसको होता ही नही। वह कोई नई बात खड़ी करके सत्याग्रहीको डराना चाहे तो डरा सकता है, पर सत्याग्रही तो भयसे मुक्त हो चुका होता है। इसलिए प्रतिपक्षी नई आपत्तियां खडी करे तो उनके सामने भी वह अपना मंत्रोच्चार करता है और यह विश्वास रखता है कि उसकी राहमे आनेवाली सभी बाधाओके सामने यह मंत्रोच्चार अवश्य फलदायी होगा। इसीसे सत्याग्रह ज्यो-ज्यो लंबा होता है, यानी प्रतिपक्षी उसे ज्यो-ज्यो लंबा करता है, त्यों-त्यों उसकी अपनी दृष्टिसे तो वह गाठकी पूजी ही गवाता है और सत्याग्रहीका अधिकाधिक लाभ होता है। इस नियमकी चरितार्थताके दूसरे दृष्टांत हमे इस युद्धके इतिहासमे मिलेंगे।

: ५ :

सोराबजी शापुरजी अडाजनिया

जब नई बस्तीका सवाल—इमिग्रेशन ऐक्ट भी लडाईके विषयोंमे शामिल कर लिया गया तब सत्याग्रहियोके लिए इस अधिकारकी परीक्षा कर लेना भी जरूरी हो गया। कमेटीने

तय किया था कि चाहे जिस भारतीयके जरिये यह परीक्षा नही कराई जायगी। खयाल यह था कि ऐसे आदमीको ट्रांसवालमे दाखिल कराके जेल-महलमे बैठा दें जो नई बस्तीके कानूनकी उन दूसरी शर्तोको पूरा करता हो जिनसे हमारा कुछ भी विरोध नही है। इससे हमें यह साबित करना था कि सत्याग्रह मर्यादा-धर्म है। इस कानूनमे एक दफा इस आशयकी थी कि नये आनेवालेको यूरोपकी किसी एक भाषाका ज्ञान होना ही चाहिए। इसलिए कमेटीने अंग्रेजी जाननेवाले ऐसे हिंदुस्तानीको दाखिल करानेकी बात सोची थी जो ट्रांसवालमे पहले रह चुका हो। कितने ही हिंदुस्तानी नौजवानोने इस परीक्षाके लिए अपने आपको पेश किया। पर उनमेंसे सोराबजी शापुरजी अडाजनियाका नाम बतौर कसौटीके स्वीकार किया गया।

नामसे ही पाठक समझ लेंगे कि सोराबजी पारसी थे। सारे दक्षिण अफ्रीकामे पारसियोंकी सख्या सौ से ऊपर नही होगी। पारसियोंके बारेमे जो मत मैंने हिंदुस्तानमे प्रकट किया है, दक्षिण अफ्रीकामे भी मेरा वही मत था। सारी दुनियामे कुल मिलाकर एक लाखसे अधिक पारसी न होंगे। इतनी छोटी-सी जाति अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा कर रही है। अपने धर्मपर दृढ़तासे आरूढ है और दानशीलतामें दुनियाकी कोई भी कौम उसकी बराबरी नही कर सकती। इतनी ही बात इस जातिकी उत्तमताका प्रमाणपत्र है। उनमे भी सोराबजी तो काम पड़ने-पर रत्न निकले। जब वह लड़ाईमें शामिल हुए उस वक्त मैं उनको कुछ यों ही मामूली-सा जानता था। लड़ाईमे शामिल होनेके विषयमे उन्होने जो पत्र लिखे थे उन्होने मुझपर अच्छा असर डाला था। मै जैसे पारसियोंके गुणोंका पुजारी हूं वैसे ही जातिरूपमे उनमें जो अनेक खामियां है उनसे भी अनजान नही था और न हू। इसलिए सच्ची परीक्षाका अवसर आनेपर

सोराबजी टिक सकेंगे या नही, इस विषयमें मेरे मनमे शंका थी। पर विपक्षी इसके विरुद्ध बात कहता हो तो अपने शक-शुबहेपर अमल न करना मेरा नियम था। इसलिए मैंने तो कमेटीसे यही सिफारिश की कि सोराबजीने अपने पत्रोमे जो दृढता दिखाई है उसको पक्की मान ले। और अतमें तो सोराबजी प्रथम श्रेणीके सत्याग्रही सिद्ध हुए। जिन सत्याग्रहियोने लंबी-से-लबी कैदे भुगती उनमें वह भी थे। इतना ही नही, उन्होंने इस युद्धका इतना गहरा ज्ञान प्राप्त कर लिया था कि वह जो कुछ कहें उस सबको ध्यानसे सुनना पडता। उनकी सलाहमें सदा दृढता, विवेक, उदारता, शाति आदिकी झलक रहती। राय कायम करनेमे वह जल्दबाजी न करते और जो कायम कर ली उसे बदलते भी नही। उनमे जितना पारसीपन था—और वह भरपूर था—उतना ही हिंदुस्तानीपन भी था। सकुचित जाति-अभिमानकी तो उनमें कभी गध भी नही मिली। युद्ध समाप्त होनेके बाद डाक्टर मेहताने अच्छे सत्याग्रहियोंमेंसे किसीको विलायत भेजकर बैरिस्टर बनवानेके लिये छात्रवृत्ति दी थी। इसका चुनाव मुझीको करना था। दो-तीन योग्य भारतीय थे, पर सारी मित्रमडलीकी रायमे कोई दूसरा आदमी नही था जो विचारकी प्रौढता और समझदारीमें सोराबजीकी बराबरी कर सके। अतः वही चुने गये। ऐसे एक हिंदुस्तानीको विलायत भेजनेमें उद्देश्य यह था कि वह वापस आकर मेरी जगह ले और कौमकी सेवा करे। कौमका आशीर्वाद और सम्मान लेकर सोराबजी विलायत गये और बैरिस्टर बने। गोखलेसे उनका सपर्क तो दक्षिण अफ्रीकामे ही हो गया था। विलायतमें वह अधिक निकटका हो गया। उनका मन सोराबजीने हर लिया। उन्होंने सोराबजीसे यह आग्रह भी किया कि हिंदुस्तान लौटनेपर भारत सेवक समिति (सरवेंटस् आव इंडिया सोसायटी) में शामिल हो जाओ। विद्यार्थीवर्गमे सोराबजी अतिशय प्रिय

हो गये थे। वह हरएक दुःख-दर्दमें शरीक होते। विलायतके ठाट-बाट और विलासिताका उनके मनपर तनिक भी असर न हुआ। जब वह विलायत गये, उनकी उम्र ३० से ऊपर थी। उनका अंग्रेजीका अभ्यास ऊंचे दरजेका नहीं था। व्याकरण आदि भूलभाल गये थे; पर मनुष्यके अध्यवसायके सामने ऐसी कठिनाइयां टिक नहीं सकतीं। सोराबजीने शुद्ध विद्यार्थी-जीवन बिताया और परीक्षाओंमें पास होते गये। मेरे जमानेकी बैरिस्टरीकी परीक्षा आजकी तुलनामें आसान थी। अब तो बैरिस्टर बननेवालेको तबसे बहुत अधिक पढना पड़ता है; पर सोराबजीने हार न मानी। विलायतमें जब 'ऐम्बुलेंस कोर' (युद्धमे सेवा-कार्य करनेवाला दस्ता) बना तो जो लोग इसमें अगुआ बने उनमें वह भी थे और अंततक उसमें बने रहे। इस दस्तेको भी सत्याग्रह करना पड़ा था। सदस्योंमेंसे बहुतेरे गिर गये। जिनके पांव अचल रहे उनमे सोराबजी सबसे आगे थे। यहां यह भी बता दूं कि इस दस्तेके सत्याग्रहमें भी हमें जय ही मिली थी।

विलायतसे बैरिस्टरी पास कर लेनेके बाद सोराबजी जोहान्सबर्ग लौटे। वहां उन्होंने सेवा और वकालत दोनों साथ-साथ शुरू कर दीं। दक्षिण अफ्रीकासे मुझे जो चिट्ठियां मिली उनमें सभी सोराबजीकी तारीफ करते थे—"वह पहले जैसे सीधे-सादे थे वैसे ही अब भी हैं। आडंबर नामको नहीं। छोटे-बड़े सबके साथ हिले-मिले रहते हैं।" पर ईश्वर जैसा दयालु दिखाई देता है वैसा ही निर्दय भी लगता है। सोराबजीको क्षयरोग (गॅलपिंग थाइसिस) हुआ और कुछ महीनेमें वह कौमका नया प्रेम संपादन करके और उसे रोती छोड़कर चल बसे! इस तरह ईश्वरने थोड़े ही समयके बीच कौमसे दो पुरुषरत्न छीन लिये। काछलिया और सोराबजी! चुनाव करना हो तो मैं इन दोनोंमेंसे किसे प्रथम पद दे सकता हूं?

मै इनमे चुनाव कर ही नही सकता। दोनो अपने-अपने क्षेत्रमें बेजोड थे। जैसे काछलिया जितने शुद्ध मुसलमान थे उतने ही शुद्ध भारतीय थे, वैसे ही सोरावजी भी जितने सच्चे पारसी थे उतने ही सच्चे हिंदुस्तानी थे।

यही सोरावजी सरकारको पहलेसे नोटिस देकर आजमाइशके लिए ट्रांसवालमे दाखिल हुए। सरकार इस कदमके लिए बिलकुल तैयार न थी। इससे सोरावजीके साथ क्या कारंवाई की जाय इसका तुरत निश्चय न कर सकी। सोरावजीने खुले तौरपर सरहद लाघी और ट्रासवालमे दाखिल हुए। सरहदपर परवानोकी जांच करनेवाला अफसर उन्हें जानता था। सोरावजीने उससे कहा, "मै ट्रांसवालमें जान-बूझकर अपने अधिकारकी परीक्षाके लिए प्रवेश कर रहा हू। तुम्हे मेरी अग्रेजीकी परीक्षा लेनी हो तो लो और गिरफ्तार करना हो तो कर लो।" अधिकारीने जवाब दिया—"मुझे मालूम है कि आप अग्रेजी जानते है, इसलिए यह परीक्षा मुझे लेनेकी जरूरत ही नही। आपको गिरफ्तार करनेका मुझे हुक्म नही। इसलिए आप खुशीसे जाए। जहां जायगे वहा सरकारको आपको गिरफ्तार करना होगा तो करेगी।"

इस प्रकार अनसोची रीतिसे सोरावजी जोहान्सबर्ग तक पहुंच गये। हम सबने उनका हर्षके स थ स्वागत किया। किसीको यह आशा नही थी कि सरकार ट्रासवालके सरहदी स्टेशन वोक्सरेस्टसे उनको एक कदम भी आगे न बढने देगी। अकसर ऐसा होता है कि जब हम अपना कदम सोच-समझकर और निर्भय होकर तुरत उठाते है तो सरकार उसका सामना करनेको तैयार नही होती। हरएक सरकारका यह स्वभाव माना जा सकता है। सामान्य आदोलनोमें सरकारका कोई भी अधिकारी अपने महकमेको इतना अपना नही लेता कि हर मामलेमे पहलेसे विचार स्थिर और व्यवस्थित कर

रक्खे और तदनुसार तैयारी भी। फिर अधिकारीका एक ही काम नहीं होता, बल्कि अनेक काम होते हैं जिनमें उसका ध्यान बट जाता है। इसके सिवा अधिकारीको अधिकारका मद होता है जिससे वह बेफिक्र रहता है और मान लेता है कि कैसा ही आंदोलन हो उसका उपाय कर लेना सत्ताधीश के बाएं हाथका खेल है। इसके विपरीत आंदोलन करनेवाला अपना ध्येय जानता हो, उसके साधनको जानता हो और अपनी योजनाके बारेमें उसका मन पक्का हो तो वह तो पूरी तरह तैयार होता है और उसे एक ही कामका विचार रात-दिन करना होता है। इसलिए अगर वह सही कदम पक्के तौरपर उठा सके तो वह सरकारसे सदा आगे ही रहता है। बहुतसे आंदोलन जो विफल हो जाते हैं उसका कारण सरकारकी असामान्य शक्ति नहीं, बल्कि संचालकोंके ये ऊपर बताये हुए गुणोंका अभाव होता है।

सारांश, सरकारकी गफलतके कारण या जान-बूझकर की हुई वैसी योजनाके कारण सोराबजी जोहान्सवर्गतक पहुंच सके और उनके जैसे मामलेमें अधिकारीका क्या कर्तव्य है, इसकी कल्पना स्थानीय अधिकारीको न थी और न इस विषयमें बड़े अफसरका आदेश मिला था। सोराबजीके इस तरह आनेसे कौमके उत्साहमें बहुत वृद्धि हुई। कुछ नौजवानोंको तो ऐसा जान पड़ा कि सरकार हार गई और जल्दी ही समझौता कर लेगी। वैसा कुछ नहीं था, यह उन्होंने तुरत ही देख लिया; बल्कि उन्होंने यह भी देखा कि समझौता होनेके पहले शायद बहुतेरे युवकोंको आत्मबलि देनी होगी।

सोराबजीने अपने जोहान्सवर्ग आनेकी सूचना वहांके पुलिस-सुपरिंटेंडेंटको दी और उसके साथ यह भी लिखा कि नई बस्तीके कानूनके अनुसार मैं अपने आपको ट्रांसवालमें रहनेका हकदार मानता हूं, इसलिए कि मुझे अंग्रेजी भाषाका

सामान्य ज्ञान है और स्थानीय अधिकारी इसकी परीक्षा लेना चाहे तो देनेको तैयार हू । इस पत्रका उन्हें कोई जवाव न मिला था । कुछ दिन वाद उसका जवाव समनके रूपमे मिला ।

अदालतमे मुकदमा चला । १९०८ की ८ वी जुलाईको उसकी सुनवाई हुई । अदालतका कमरा भारतीय दर्शकोसे भर गया था । मुकदमा शुरू होनेके पहले अदालतके अहातेमे उपस्थित भारतीयोको इकट्ठा करके तात्कालिक सभा की गई । सोरावजीने उसमे जोशीला भाषण दिया । उसमे यह प्रतिज्ञा की कि जवतक हमारी विजय न हो तवतक जितनी वार जेल जाना पड़े उतनी वार जानेको तैयार रहूगा और चाहे जो संकट आये उसे सहन करूगा । यह अरसा इतना लवा था कि इस वीच मैंने सोरावजीको अच्छी तरह पहचान लिया था और समझ गया था कि वह अवश्य सच्चे रत्न निकलेंगे । मुकदमा पेश हुआ । मै वकीलकी हैसियतसे खडा हुआ । समनमें कई दोष थे । उन दोषोके कारण मैंने सोरावजीके विरुद्ध निकाले हुए समनको रद कर देनेकी माग की । सरकारी वकीलने जवावमे दलील पेश की; पर अदालतने अगले दिन मेरी दलीलको मान कर समन रद कर दिया और सोरावजीको रिहा कर दिया । कौम खुशीसे पागल हो गई और कह सकते हैं कि उसके पागल हो जानेका कारण भी था । दूसरा समन निकाल कर फौरन ही सोरावजी पर पुनः मुकदमा चलानेकी हिम्मत तो सरकारको किस तरह हो सकती थी ? और हुआ भी यही । इसलिए सोरावजी सार्वजनिक कामोमे लग गये ।

पर यह छुटकारा सदाके लिए नही था । सोरावजीको तुरंत चेतावनी मिली कि १० जुलाईको फिर अदालतमें हाजिर हो । उस दिन मजिस्ट्रेटने उन्हे सात दिनके अदर ट्रांसवाल छोड देनेका हुक्म दिया । अदालतका हुक्म तामील हो जानेके वाद सोरावजीने पुलिस-सुपरिटेंडेंट मि० वरनोनको सूचना दी कि

मेरा ट्रांसवालसे चले जानेका इरादा नहीं है। इसपर २० जुलाईको वह फिर अदालतके सामने लाये गये और मजिस्ट्रेटकी आज्ञा न माननेके जुर्ममें उन्हें एक महीनेकी कड़ी कैदकी सजा दी गई।

पर स्थानीय हिंदुस्तानियोंको सरकार गिरफ्तार ही नहीं करती थी। उसने देखा कि गिरफ्तारियां जितनी ज्यादा होंगी हिंदुस्तानियोंका जोश उतना ही बढ़ता जायगा। फिर किसी मुकदमेमें किसी-न-किसी कानूनी बारीकीके कारण भारतीय अभियुक्त छूट जाता था तो इससे भी जोश बढ़ता। सरकारको जो कानून बनाने थे वे सब पास कर चुकी थी। बहुतसे हिंदुस्तानियोंने अपने परवाने जला जरूर डाले थे; पर उन्होंने परवाने लेकर ट्रांसवालमें रहनेका अपना हक तो साबित कर ही दिया था। अतः उन्हें जेल भेजनेके लिए ही उनपर मुकदमा चलानेमें सरकारको कोई फायदा नहीं दिखाई दिया और उसने यह भी सोचा कि वह खामोश रहेगी तो आंदोलन करनेवाले आंदोलनका कोई दरवाजा खुला न रहनेके कारण अपने आप शांत हो जायगे। पर सरकारका यह हिसाब गलत था। कौमने उसकी चुप्पी तोड़नेके लिए ऐसा नया कदम उठाया कि वह टूटकर ही रही और सोराबजी पर फिर मुकदमा चलाना पड़ा।

: ६ :

सेठ दाऊद मुहम्मद आदिका लड़ाईमें शामिल होना

कौमने जब देखा कि सरकार खुद कुछ न करके उसको थका देना चाहती है तब दूसरा कदम उठाना उसके लिए जरूरी हो गया। सत्याग्रहीमें जबतक कष्ट सहन करनेकी शक्ति हो

तबतक वह थकता ही नही। इसलिए कौम सरकारकी धारणाको गलत साबित कर देनेमे समर्थ थी।

नेटालमे अनेक ऐसे हिंदुस्तानी बसते थे जिन्हे ट्रासवालमें बसनेका पुराना हक था। उन्हें व्यापारके लिए ट्रासवालमें दाखिल होनेकी आवश्यकता नही थी। पर कौम मानती थी कि उन्हें यहां आनेका हक है। फिर वे थोडी बहुत अंग्रेजी तो जानते ही थे। इसके सिवा सोराबजी जितनी शिक्षा पाये हुए भारतीयोके प्रवेशसे तो सत्याग्रहके नियमका किसी तरह भग होता ही नही था। अतः हमने दो तरहके हिंदुस्तानियोंको दाखिल करनेका निश्चय किया : एक तो वे जो पहले ट्रासवालमें रह चुके थे, दूसरे वे जिन्होने खास तौरसे अंग्रेजी पढी हो, यानी जो शिक्षित कहे जाते हो।

इनमें सेठ दाऊद मुहम्मद और पारसी रुस्तमजी ये दो बडे व्यापारियोमेंसे थे और सुरेन्द्रराय मढे, प्रागजी खंडूभाई देसाई, हरिलाल गाधी, रतनशी सोढा आदि शिक्षित जनोमेंसे थे।

सेठ दाऊद मुहम्मदका परिचय पाठकोंको करा दूं। ये नेटाल इडियन काग्रेसके अध्यक्ष थे और उन भारतीय व्यापारियोंमेंसे थे जो सबसे पहले दक्षिण अफ्रीकामें पहुंचे थे। वह सूरतके सुन्नी जमातके वोहरा थे। दक्षिण अफ्रीकामें मुझे ऐसे थोडे ही हिंदुस्तानी मिले जो चतुराईमे उनकी बराबरी कर सकें। उनकी समझनेकी शक्ति बहुत अच्छी थी। अक्षरज्ञान थोडा ही था, पर अभ्याससे अंग्रेजी और डच अच्छी बोल लेते थे। यूरोपियन व्यापारियोंके साथ अपना काम मजेसे चला लेते थे। उनकी दानशीलता विख्यात थी। उनके यहा नित्य कोई ५० मेहमानोंका खाना तो होता ही था, कौमी चन्दोमें उनका नाम मुखियाओंमे होता। उनके एक बेटा था जो अमूल्य रत्न था। वह चारित्र्यमे बापसे बहुत बढा-चढा था। उसका हृदय स्फटिक मणिके समान था। इस बेटेके चारित्र्य-वेगको दाऊद सेठने कभी रोका

नहीं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि वह अपने पुत्रको पूजते थे। वह चाहते थे कि उनका एक भी दोष हुसेनमें न हो। उन्होंने उसे विलायत भेजकर अच्छी शिक्षा दिलाई थी, पर सेठ दाऊद इस रत्नको भरी जवानीमे खो बैठे। क्षय रोगने हुसेनको पकड़ा और उसका प्राण हर लिया। यह घाव कभी भरा नहीं। हुसेनके साथ हिंदुस्तानी कौमकी बड़ी-बड़ी आशाए भी डूब गईं। हुसेनके लिए हिंदू-मुसलमान दाईं-बाईं आखे थे। उसका सत्य तेजस्वी था। आज दाऊद सेठ भी इस लोकमे नहीं है। काल कब किसीको छोडता है?

पारसी रुस्तमजीका परिचय मै करा चुका हूं। शिक्षित भारतीयोमेसे अधिकांशको पाठक जानते हैं। यह प्रकरण मै बिना कोई पुस्तकादि अपने सामने रखे लिख रहा हूं। इस कारण कुछ नाम छूट गये होगे। वे भाई मुझे इसके लिए माफ करेंगे। ये प्रकरण नाम अमर करनेके लिए नहीं लिखे जा रहे हैं; बल्कि सत्याग्रहका रहस्य समझाने और यह बतानेके लिए लिखे जा रहे हैं कि उसकी विजय कैसे हुई। उसमें कैसे-कैसे विघ्न आये और वे किस तरह दूर किये जा सके। जहां-जहां नामों और उन नामोको धारण करनेवालोंकी चर्चा भी है वहा भी उद्देश्य यही है कि पाठक जान लें कि दक्षिण अफ्रीकामे अपढ कहलानें-वालोने कैसा पराक्रम किया। हिंदू, मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि कैसे साथ मिल सके और कैसे व्यापारियों, शिक्षितवर्ग आदिने अपने कर्तव्यका पालन किया। जहां गुणीका परिचय दिया है वहां उसका नहीं, उसके गुणका स्तवन किया है।

इस प्रकार जब दाऊद सेठ अपनी सत्याग्रही सेना लेकर ट्रांस-वालकी सरहदपर पहुंचे तब सरकार उनका सामना करनेको तैयार थी। वह इतने बडे दलको ट्रांसवालमें प्रवेश करने देती तो उसकी हंसी होती, इसलिए उन्हें गिरफ्तार करनेसे ही छुट-कारा था। वे पकड लिये गये। मुकदमा चला। १८ अगस्त १९०८को

मजिस्ट्रेटने उन्हें सात दिनके अंदर ट्रांसवालकी सरहदसे बाहर हो जानेका हुक्म दिया। उन्होंने आज्ञाका उल्लंघन किया और २८ अगस्तको प्रिटोरियामें फिर गिरफ्तार किये गये और बिना मुकदमा चलाये ही देशसे निकाल दिये गये। ३१ तारीखको वे फिर ट्रासवालकी सीमामे दाखिल हुए और अंतमें ८ सितंबरको वोक्सरस्टमें उन्हे ५० पौंडके जुर्माने या तीन महीनेकी कडी कैदकी सजा सुनाई गई। कहनेकी आवश्यकता नही कि उन्होने खुशीसे जेल जाना पसंद किया।

कौमका जोश बढा। ट्रांसवालके भारतीय नेटालसे उनकी मददको आये हुए अपने भाइयोको छुडा न सके तो जेलमें उनका साथ तो उन्हें देना ही चाहिए। इस विचारसे ट्रासवालके भारतीय भी जेलकी राह ढूढने लगे। उनकी गिरफ्तारीके कितने ही रास्ते थे। ट्रासवालमे बसनेवाला हिंदुस्तानी परवाना न दिखाये तो उसे व्यापारका परवाना न मिलेगा और परवानेके बिना व्यापार करे तो अपराधी माना जाता। नेटालसे ट्रांसवालकी सरहदमे दाखिल होना हो तो भी परवाना दिखाना जरूरी था। न दिखानेवाला गिरफ्तार कर लिया जाता। परवाने तो जला डाले गये थे, इसलिए रास्ता साफ था। दोनो रास्ते पकडे गये। कुछ लोग बिना परवाना दिखाये फेरी करने लगे और कुछ ट्रासवालकी सरहदमें दाखिल होते समय परवाना न दिखाकर गिरफ्तार होने लगे।

अब युद्धका रंग जमा। सबकी परीक्षा होने लगी, नेटालसे और भारतीय आये। जोहान्सबर्गमे भी धर-पकड शुरू हुई। स्थिति यह हो गई कि जो चाहे वह गिरफ्तार हो सकता था। जेलखाने भरे जाने लगे। नेटालसे आये हुए आक्रमणकारियोको तीन-तीन महीनेकी सजा मिली, ट्रांसवालके फेरीवालोको चार दिनसे लगाकर तीन महीनेतककी।

जो लोग इस तरह गिरफ्तार हुए उनमें हमारे इमाम

साहब इमाम अब्दुलकादिर बावजीर भी थे। वह फेरी करके गिरफ्तार हुए थे। उनकी सजाकी शुरुआत चार दिनकी कड़ी कैदसे हुई। उनका शरीर इतना नाजुक था कि लोग उनके जेल आनेकी बात सुनकर हंसते थे। कुछ लोग आकर मुझसे कहते कि भाई, इमाम साहबको न लो तो अच्छा है। वह कौमको लज्जित करेंगे। मैंने इस चेतावनीको अनसुनी किया। इमाम साहबकी शक्तिकी नाप-तौल करनेवाला मैं कौन होता था? इमाम साहब कभी नंगे पांव न चलते, शौकीन थे, मलायी स्त्रीसे ब्याह किया था, घर सजा हुआ रखते और घोड़े-गाड़ीके बिना कहीं नहीं जाते थे। यह सब सच था, पर उनके मनको कौन जान सकता था? चार दिनकी सजा भुगत कर रिहा होनेके बाद इमाम साहब फिर जेल गये। वहां आदर्श कैदीके रूपमें रहे, कहीं मशक्कत करके भोजन करते और जिसे नित्य नयी चीजें खानेकी आदत थी वह मकईके आटेकी लपसी खाकर खुदाका शुक्र बजा लाता। इन कष्टोंसे उन्होंने हिम्मत नहीं हारी; बल्कि सादगी अख्तियार की। कैदीकी हैसियतसे उन्होंने पत्थर तोड़े, झाड़ू लगाई, कैदियोंकी पांतमें खड़े रहे। अंतमें फिनिक्समें पहुंचकर पानी भरने और अक्षर जोड़ने (कंपोज करने)का काम भी किया। फिनिक्स-आश्रममें रहनेवालेके लिए अक्षर जोड़नेकी कला सीख लेना जरूरी था। इमाम साहबने इस कार्यको यथाशक्ति सीख लिया था। ये इमाम साहब इन दिनों हिंदुस्तानमें अपना भाग अर्पण कर रहे हैं।

पर ऐसे तो बहुतेरे इस जेलमें शुद्ध हो गये।

जोसफ रॉयपेन बैरिस्टर, कैम्ब्रिजके ग्रेजुएट, नेटालमें गिरमिटिए मां-बापके घर जन्मे थे, पर साहब लोग बन गये थे। वह तो घरमें भी बूटके बिना एक कदम भी नहीं चलते थे। इमाम साहबके लिए वजू करते समय पैर धोना जरूरी था। नमाज नंगे

पाव करनी चाहिए थी। बेचारे रॉयपेनको तो इतना भी नहीं करना था। उन्होंने बैरिस्टरीसे छुट्टी लेकर साग-तरकारीकी टोकरी बगलमे दबाई और फेरी करके गिरफ्तार हो गये। उन्होंने भी जेल भुगती। रॉयपेनने मुझसे पूछा—"पर मुझे तीसरे दरजेमें सफर करना चाहिए ?" मैने जवाब दिया—"अगर आप पहले या दूसरे दरजेमे सफर करेंगे तो मै किसको तीसरे दरजेमे बैठाऊंगा ? जेलमे आपको बैरिस्टरके रूपमे कौन पहचानेगा ?" जोसफ रॉयपेनके लिए यह जवाब काफी था। वह भी जेलमे चले गये।

सोलह बरसके नौजवान तो कितने ही जेलमे पहुंचे थे। मोहनलाल मानजी घेलानी तो चौदह ही बरसका था। जेलमे अधिकारियोंने हमे सतानेमे कुछ उठा नही रखा। पाखाने साफ कराये। हिंदुस्तानी कैदियोंने उन्हे हँसते-हँसते साफ किया। पत्थर तुड़वाये और अल्ला या रामका नाम लेकर सत्याग्रहियोंने उन्हे तोडा। तालाब खुदवाये, पथरीली जमीन खुदवाई। उनकी हथेलियोमे छाले पड़ गये, कोई-कोई असह्य कष्टसे मूर्छित भी हो गये; पर किसीने हिम्मत नही हारी।

कोई यह न समझे कि जेलमें आपसमें झगड़े या ईर्ष्या द्वेष नही होता था। ज्यादा जोरकी तकरार तो खानेको लेकर होती है; पर हम उससे भी उबर गये।

मै भी दूसरी बार गिरफ्तार हुआ। वोक्सरस्टके जेलखानेमें एक वक्त हम लगभग ७५ हिंदुस्तानी कैदी इकट्ठे हो गये थे। अपनी रसोई हमने अपने हाथमे ले ली। झगडेका बचाव मेरे ही हाथो हो सकता था, इससे मै ही रसोइया बना। मेरे साथी प्रेमके वश मेरे हाथकी बनी कच्ची-पक्की, बिना गुड़-शक्करकी पतली लपसी पी लेते थे।

सरकारने सोचा कि मुझे और कैदियोसे अलग कर दे

तो मैं भी जरा आंच खा जाऊं और दूसरे कैदी भी ढीले हो जाएं; पर इसका उसे कोई बढ़िया मौका नहीं मिला।

मुझे प्रिटोरियाकी जेलमें ले गये। यहां मैं तनहाई-वाली कोठरीमें रखा गया, जिसमें केवल खतरनाक कैदी रखे जाते हैं। सिर्फ दो बार कसरत करानेके लिए बाहर निकाला जाता। वोक्सरस्टमें हमें घी दिया जाता था, यहां वह भी नदारद। इस जेलके गौण कष्टोंके वर्णनमें मैं नहीं उलझना चाहता। जिसको उसकी जिज्ञासा हो वह 'दक्षिण अफ्रीकाके जेलके मेरे अनुभव' पुस्तक पढ़ ले।

इतनेपर भी हिंदुस्तानियोंने हार नहीं मानी। सरकार सोच-विचारमें पड़ी। जेलमें कितने हिंदुस्तानियोंको भरे? इससे उलटा खर्च बढ़ता था। अब वह क्या करे?

: ७ :

देशनिकाला

खूनी कानूनमें तीन तरहकी सजाएं रखी गई थीं: जुर्माना, कैद और देशनिकाला। अदालतको तीनों सजाएं एक साथ देनेका अधिकार था और यह अधिकार छोटे-छोटे मजिस्ट्रेटों-को भी दे दिया गया था। पहले तो देशनिकालेके मानी थे अपराधीको ट्रांसवालकी हदसे बाहर नेटाल, फ्री स्टेट या डेलागोआ बे (पुर्तगाली पूर्वी अफ्रीका) की हदमें ले जाकर छोड़ देना। उदाहरणार्थ नेटालकी तरफसे आये हुए भारतीयोंको वोक्सरस्ट स्टेशनकी हदसे बाहर ले जाकर छोड़ देते थे। इस तरहके देशनिकालेमें थोड़ी-सी तकलीफके सिवा और कोई नुकसान न था। यह दंड तो केवल खिलवाड़ था। हिंदु-स्तानियोंमें इससे उलटा और ज्यादा जोश आता था।

अतः स्थानीय सरकारको हिंदुस्तानियोको हैरान करनेकी नई तरकीब सोचनी पड़ी। जेलोमे जगह रह नही गई थी। सरकारने सोचा कि हिंदुस्तानियोको अगर हिंदुस्तानतक पहुचा सके तो वे जरूर डरकर हमारी शरण आयंगे। इसमे कुछ सचाई जरूर थी। इस प्रकार एक बडे जत्थेको सरकारने हिंदुस्तान भेजा। इन निर्वासितोंको बहुत कष्ट सहने पडे। खाने-पीनेको भी जो सरकार दे वही मिलता, यानी भारी कष्ट था। सब डेकमे ही भेजे गए, फिर इस तरह निर्वासित होनेवालोंके पास अपनी जमीन होती, दूसरी मिल्कियत होती। अपना धधा-रोजगार होता, अपने आश्रित बाल-बच्चे होते, कुछके सिरपर कर्ज भी होता। शक्ति होते यह सब गंवाने, दिवालिया बननेको तैयार होनेवाले लोग अधिक नही हो सकते थे।

यह सब होते हुए भी बहुतसे भारतीय अपने निश्चयपर अटल रहे। बहुतेरे ढीले भी पड गये, पर उन्होने इतना ही किया कि अपने आपको जान-बूझकर गिरफ्तार नहीं कराया। उनमेसे *अधिकांशने* इतनी कमजोरी नही दिखाई कि जलाए हुए परवानोको फिरसे निकलवा ले; पर कुछने डरकर फिरसे परवाने ले लिए।

फिर भी जो लोग दृढ रहे उनकी संख्या नगण्य नही थी। उनकी बहादुरीकी हद न थी। मेरा विश्वास है कि उनमें कितने ही ऐसे थे जो हँसते-हँसते फासीके तख्तेपर चढ जाते। माल-जायदादकी चिंता तो उन्होने छोड ही दी थी; पर जो हिंदुस्तान भेज दिये गये उनमें बहुतेरे गरीब और सीधे-सादे आदमी थे। वे केवल विश्वासके बलपर ही लडाईमें शामिल हुए थे। उनपर इतना जुल्म होना असह्य लगा। उनकी मदद भी कैसे की जाय, यह समझना कठिन था। पैसा तो अपने पास थोड़ा ही था। ऐसी लडाईमे पैसेकी मदद देने

जाय तो लड़ाई ही हार जाय। उसमें लालची आदमी न घुस आएं, इस डरसे पैसेका लालच एक भी आदमीको नही दिया जाता था। हां, सहानुभूतिकी सहायता देना हमारा धर्म था।

अनुभवसे मैंने देखा है कि सहानुभूति, मीठी निगाह और मीठे बोल जो काम कर सकते है वह पैसेसे नही हो सकता। पैसेका लोभी भी अगर उसको हमदर्दी न मिले तो अतमें वह उसे त्याग देता है। इसके विपरीत जो प्रेमसे वश हुआ है वह अनेक संकट सह लेनेके लिए तैयार रहता है।

अत. हमने निश्चय किया कि इन निर्वासित भाइयोंके लिए हमदर्दी जो कुछ कर सकती है वह किया जाय। उन्हे आश्वासन दिया कि हिंदुस्तानमे आप लोगोंके लिए यथोचित प्रबध किया जायगा। पाठकोको जान लेना चाहिए कि इन लोगोंमेंसे बहुतेरे तो गिरमिट-मुक्त थे। हिंदुस्तानमें उनका कोई सगा-सबधी न मिलता। कुछ तो दक्षिण अफ्रीकामे ही जन्मे भी थे। सबके लिए हिंदुस्तान परदेश-सा तो हो ही गया था। ऐसे निराधार जनोंको समुद्रके किनारे उतारकर भटकने-को छोड़ देना तो क्रूरता ही मानी जायगी। इसलिए उन्हें इतमीनान दिलाया गया कि हिंदुस्तानमे उनके लिए सब आवश्यक प्रबंध कर दिया जायगा।

यह सब करते हुए भी जबतक उनके साथ कोई मददगार न हो तबतक उनको शांति नही मिल सकती थी। देशनिकाला पानेवालोंका यह पहला ही जत्था था। स्टीमर छूटनेके कुछ ही घटे बाकी रह गये थे। चुनावके लिए वक्त न था। साथियों-मेंसे भाई पी० के० नायडूपर मेरी नजर गई। मैंने पूछा—"इन गरीब भाइयोंको पहुंचाने हिंदुस्तान जा सकते हो?"

"क्यों नही?"

"पर स्टीमर तो छूटने ही वाला है।"

"छूटने दीजिए।"

"पर तुम्हारे कपडे-लत्तेका क्या होगा ? खानेका क्या होगा ?"

"कपडे जो पहने हूं वही काफी होगे। खाना स्टीमरसे मिल जायगा।"

मेरे हर्ष और आश्चर्यकी सीमा न रही। यह बातचीत पारसी रुस्तमजीके मकानपर हुई थी। वही उनके लिए कुछ कपड़े-कंबल आदि माग-मूगकर उन्हे रवाना किया।

"देखना, रास्तेमे इन भाइयोकी पूरी सम्हाल रखना। उन्हे सुलाकर सोना। मै मद्रासमे श्रीनटेसन्को तार दे रहा हूं। वह जो कहे सो करना।"

"मै अपने आपको सच्चा सिपाही साबित करनेकी कोशिश करूंगा।" यह कहकर नायडू रवाना हो गए। मैने सोच लिया कि जहा ऐसे वीर पुरुष हो वहा हार हो ही नही सकती। भाई नायडूका जन्म दक्षिण अफ्रीकामे ही हुआ था। हिंदुस्तानके उन्हे कभी दर्शन ही नही हुए थे। मैने श्रीनटेसन्के नाम सिफारिशी चिट्ठी दी थी। उन्हे तार भी दे दिया।

यह कहना अत्युक्ति न होगा कि हिंदुस्तानमें इस वक्त प्रवासी भारतीयोंके कष्टका अध्ययन करनेवाले, उनकी सहायता करनेवाले और उनके बारेमे नियमित तथा ज्ञानपूर्वक लिखनेवाले अकेले श्रीनटेसन् ही थे। उनके साथ मेरा पत्रव्यवहार नियमित रूपसे हुआ करता था। ये निर्वासित भाई जब मद्रास पहुंचे तो श्रीनटेसन्ने उनकी पूरी मदद की। भाई नायडूके जैसे समझदार आदमीके साथ रहनेसे उन्हे भी समुचित सहायता मिली। उन्होने नगरवासियोसे चदा किया और निर्वासितोंको यह मालूम नही होने दिया कि हम देशनिकालेका दंड पाकर यहा आये हैं।

ट्रासवाल सरकारका यह काम जितना क्रूरता-भरा था

उतना ही गैरकानूनी भी था। वह खुद भी इसको जानती थी। आमतौरसे लोगोंको इस बातकी जानकारी नहीं रहती कि सरकारें अकसर जान-बूझकर अपने कानून तोड़ा करती है। कठिनाईमें पडनेपर नया कानून बनानेका समय रहता नही, इसलिए कानूनको तोड़कर मनमानी कर लेती है और पीछे या तो नये कानून बना लेती है या ऐसी स्थिति पैदा करती हैं कि जिससे जनता इस बातको भूल जाय कि सरकारने कानून तोडा है।

सरकारके इस गैरकानूनी कामके खिलाफ हिंदुस्तानियोंने जबर्दस्त आंदोलन चलाया। हिंदुस्तानमे भी शोर मचाया और ट्रासवाल सरकारके लिए इस तरह गरीब हिंदुस्तानियोंको देशनिकाला देना कठिन हो गया। हिंदुस्तानियोंको जो कानूनी कार्रवाइया करनी चाहिए थीं वे सब उन्होंने कीं। अपीलें कीं और उनमे भी उनकी जीत हुई। अंतमे निर्वासितोको ठेठ हिंदुस्तान भेजनेकी प्रथा बद हुई।

पर इसका असर सत्याग्रही सेनापर पड़े बिना न रहा। अब उसमें सच्चे योद्धा ही रह गये। 'सरकार कही पकड़कर हिंदुस्तान न भेज दें' इस भयका त्याग सब नही कर सके।

कौमका उत्साह भग करनेके लिए सरकारने यही एक काम नही किया। पिछले प्रकरणमे मै बता चुका हूं कि सत्याग्रही कैदियोंको दु.ख देनेमें उसने जरा भी कसर नही रखी। उनसे पत्थर तुड़वाने तकके काम कराये जाते। इतनेसे भी आगे सरकार बढ गई। पहले सभी कैदी साथ रखे जाते थे। अब उन्हे अलग-अलग रखनेकी नीति ग्रहण की गई और हर जेलमें उन्हें खूब तकलीफ दी गई। ट्रासवालका जाड़ा बहुत सख्त होता है। ठड इतनी अधिक होती है कि सवेरे काम करते हुए हाथ अकड जाते है। इससे कैदियोके लिए जाड़ेके दिन बहुत कठिन हो गये। ऐसी दशामे कुछ कैदी एक छोटीसी

जेलमे रखे गये जहा कोई उनसे मिलने भी नही जा सकता। इस जत्थेमे स्वामी नागप्पा नामका एक १८ वरसका नौजवान सत्याग्रही था। वह जेलके नियमोंका पालन करता और जो काम उसे सौंपा जाता पूरा करता। सबेरे, पौ फटते ही, उसे सडकपर मिट्टी कूटनेके लिए ले जाते थे। इससे उसे फेफडेके शोथ (डबल निमोनिया) का कठिन रोग हो गया और अतमें ७ जुलाई १९०९ को उसने अपने प्रिय प्राणोकी बलि दे दी। नागप्पाके साथियोका कहना है कि अतिम क्षणतक वह लडाई-की ही बात सोचता, करता रहा। जेल जानेका उसे कभी पछतावा न हुआ। देशकी खातिर मिली हुई मौतको उसने इस तरह गले लगाया जैसे कोई मित्रसे मिलता है। हमारे पैमानेसे नापा जाय तो नागप्पाको निरक्षर कहना होगा। अंग्रेजी, जुलू आदि भाषाएं वह अभ्याससे बोल लेता था। अग्रेजी टूटी-फूटी शायद लिख भी लेता हो; पर उसे विद्वानोकी पक्तिमें तो नही ही बिठा सकते थे। फिर भी नागप्पाके धीरज, उसकी शक्ति, उसकी देशभक्ति, आमरणान्त बनी रहनेवाली उसकी दृढताका विचार करे तो क्या उसके विषयमें और कुछ चाहने लायक रह जायगा? बड़े विद्वानोंके न मिलनेपर भी ट्रांसवालकी लड़ाई चल सकी; पर नागप्पा-जैसे सिपाही न मिले होते तो क्या वह चल सकती थी?

जैसे नागप्पाकी मृत्यु जेलके कष्टोसे हुई, वैसे ही नारायण स्वामीकी देशनिकालेसे हुई (१६ अक्तूबर १९१०)। देशनिकालेकी तकलीफें उसकी मौत साबित हुईं। पर इन घटनाओसे कौमने हिम्मत न हारी। हाँ, कमजोर दिलवाले मैदानसे खिसक गये। पर वे भी अपनी शक्तिभर कुर्बानी तो कर ही चुके थे। कमजोर जानकर हमें उनकी अवगणना नही करनी चाहिए। हममें यह रिवाज हो गया है कि आगे बढ जानेवाले पीछे छूटनेवालोका तिरस्कार करते और अपनेको

बड़ा वीर मानते हैं। हकीकत अकसर इसकी उलटी होती है। जिसकी शक्ति पचास रुपये देनेकी हो वह पच्चीस देकर बैठ जाय और पाच देनेकी शक्ति रखनेवाला पूरे पांच हाजिर कर दे तो हम यही मानेंगे कि पाच देनेवालेने अधिक दिया। फिर भी पच्चीस देनेवाला पाच देनेवालेके सामने अकसर इतराता है। पर हम जानते हैं कि उसके इतरानेका कोई भी कारण नही। वैसे ही अपनी निर्बलताके कारण आगे न जा सकने-वाला अगर अपनी सारी शक्ति खर्च कर चुका हो और शक्ति चुरा रखनेवाला उस नाप-तौलमे उससे अधिक शक्ति लगा रहा हो तो भी पहला उससे अधिक योग्य है। इसलिए जो लोग युद्धके अधिक कठोर होनेपर बैठे रहे उन्होंने भी देशकी सेवा तो की ही। अब वह वक्त आया जब अधिक सहन-शक्ति और अधिक हिम्मतकी आवश्यकता थी। इसमे भी ट्रासवालके भारतीय पीछे न रहे। युद्ध जारी रखनेके लिए जितनेकी जरूरत थी उतने तो रहे ही।

इस तरह हिंदुस्तानियोंकी दिन-दिन अधिक कठिन परीक्षा होने लगी। ज्यो-ज्यों वे अधिक बल प्रकट करते त्यो-त्यों सरकार भी और ज्यादा ताकत काममे लाती। खतरनाक कैदियोके लिए या जिन्हे खास तौरसे सीधा करना होता है उनके लिए हर देशमे कुछ खास कैदखाने रखे जाते हैं। ट्रास-वालमे भी ऐसा ही था। ऐसे एक जेलखानेका नाम 'डायकलुफ' था। वहांका दारोगा भी सख्त, वहांकी मशक्कत भी सख्त। फिर भी उसको भी पूरा कर देनेवाले कैदी मिल गये। वे मशक्कत करनेको तैयार थे, पर अपमान सहनेको तैयार नहीं थे। दारोगाने उनका अपमान किया, इसलिए उन्होने उप-वास आरभ किया। शर्त यह थी—"जबतक तुम इस दारोगाको नही हटाते या हमारी जेल नही बदलते तबतक हम अन्न ग्रहण नही करेंगे।" यह उपवास शुद्ध था। उपवास

करनेवाले ऐसे आदमी नही थे जो छिपे तौरपर कुछ खा-पी लेते हों। पाठकोंको जान लेना चाहिए कि ऐसे मामलेमे यहा हिंदुस्तानमें जो आंदोलन हो सकता है ट्रासवालमे उसके लिए अधिक अवकाश नही था। वहांके जेल-नियम भी अधिक कड़े थे। ऐसे समयमे भी कैदियोको देखने जानेका वहा रिवाज नही था। सत्याग्रही जब जेलमे पहुच गया तब आमतौरसे उसे अपनी फिक्र खुद करनी पड़ती। यह लडाई गरीबोकी थी और गरीबोंके तरीकेसे चलाई जा रही थी। अत. ऐसी प्रतिज्ञा-की जोखिम बहुत बड़ी थी, फिर भी ये सत्याग्रही दृढ रहे। उस वक्तका उनका कार्य आजकी तुलनामे अधिक स्तुत्य गिना जायगा; क्योंकि उस समय अनशनकी आदत लोगोंको नही पड़ी थी। पर वे सत्याग्रही अडिग रहे और उनकी जीत हुई। सात दिन के उपवासके बाद उन्हें दूसरी जेलमे भेजनेका हुक्म आ गया।

: ८ :

फिर शिष्ट-मंडल

इस प्रकार सत्याग्रहियोको जेलमे ठूसने और देशनिकाला देनेका चक्र चल रहा था। इसमे ज्वारभाटा आता रहता। दोनो पक्ष कुछ ढीले भी हो रहे थे। सरकारने देखा कि जेलोको भरने-से पक्के सत्याग्रही हारनेवाले नही। देशनिकालेसे उसकी बदनामी होती थी। मामले अदालतमे पहुचते तो उनमे उसकी हार भी होती थी। हिंदुस्तानी भी जोरदार मुकाबले-के लिए तैयार नही थे। न इतने सत्याग्रही अब रह ही गये थे। कुछ थक गये थे, कुछने बिलकुल हिम्मत हार दी थी और अपने निश्चयपर अटल रहनेवालोको मूर्ख समझते थे।

पर ये मूर्ख अपने आपको बुद्धिमान मानकर भगवान् और अपनी लड़ाई तथा उसके साधनोंकी सचाईपर पूरा भरोसा रखे हुए बैठे थे। वे मानते थे कि अंतमें तो सत्यकी ही जय होती है।

दक्षिण अफ्रीकाकी राजनीति तो एक क्षणके लिए भी स्थिर नही होती थी। बोअर और अंग्रेज दोनों चाहते थे कि दक्षिण अफ्रीकाके सब उपनिवेशोंको इकट्ठा करके और अधिक स्वतंत्रता प्राप्त करे। जनरल हर्टजोग चाहते थे कि ब्रिटेनसे बिलकुल नाता टूट जाय। दूसरे लोग उससे नामका संबंध बनाए रखना पसंद करते थे। अंग्रेज संबंधका पूर्ण विच्छेद तो सहन न कर सकते थे। जो कुछ मिलना था वह ब्रिटिश पार्लमेंटके जरिये ही मिल सकता था, इसलिए बोअरों और अंग्रेजोंने यह तै किया कि दक्षिण अफ्रीकाकी ओरसे एक शिष्ट-मंडल विलायत जाय और उसका मामला ब्रिटिश मन्त्रि-मंडलके सामने रखे।

भारतीयोंने देखा कि चारो उपनिवेश एक हो गये, उनका 'यूनियन' (संघ) बन गया तो हमारी जैसी दशा है उससे भी बुरी हो जायगी। सभी उपनिवेश सदा हिंदुस्तानियोंको अधिक-से-अधिक दबाये रखना चाहते थे। यह तो स्पष्ट ही था कि ये सब भारतके द्वेषी आपसमे और ज्यादा मिल गये तो हिंदुस्तानी और ज्यादा दबाये जायगे। गो हिंदुस्तानियोंकी आवाज नक्कारखानेमे तूतीकी आवाज-जैसी ही थी, फिर भी हमें एक भी कोशिशसे बाज न रहना चाहिए, यह सोचकर भारतीयोंका एक शिष्ट-मंडल फिर विलायत भेजनेका निश्चय हुआ। इस बार पोरबंदरके मेमन सेठ हाजी हबीब शिष्ट-मंडलमें मेरे साथी चुने गये। इनका ट्रांसवालका कारबार बहुत पुराने जमानेसे था। अनुभव विस्तृत था। अंग्रेजी पढ़ी नही थी, फिर भी अंग्रेजी, डच, जूलू आदि भाषाएं आसानीसे समझ लेते थे। इनकी सहानुभूति सत्याग्रहियोंकी ओर थी;

पर पूरे सत्याग्रही नही कहे जा सकते थे। हम दोनों केपटाउन से जिस जहाज (केनिलवर्थ कासिल) पर रवाना हुए। उसपर दक्षिण अफ्रीकाके मशहूर बुजुर्ग मेरीमेन भी थे। वह यूनियन बनवानेके लिए जा रहे थे। जनरल स्मट्स आदि तो पहलेसे पहुंचे हुए थे। नेटालकी तरफसे भी एक अलग भारतीय शिष्ट-मडल इस वक्त विलायत गया था। यह सत्याग्रहके सिलसिलेमे नही, बल्कि नेटालमे हिंदुस्तानियोको जो विशेष कष्ट और कठिनाइया थी उनकी बात कहने गया था।

इस वक्त लार्ड क्रू उपनिवेश मत्री थे और लार्ड मॉरले भारत मत्री। खूब बातचीत हुई। हम बहुतोसे मिले। जितने पत्रो-के सपादको और साधारण या उमरावोकी सभाके सदस्योसे हम मिल सकते थे उनमेंसे एकसे भी मिले बिना नही रहे। लार्ड एम्प्टहिलके बारेमे कह सकता हू कि उन्होने हमारी बेहद मदद की। वह मि० मेरीमेन, जनरल बोथा आदिसे मिला करते थे और अतमें जनरल बोथाका एक सदेसा भी लाये। उन्होने कहा—"जनरल बोथा आपकी भावनाको समझते है। आपकी छोटी मागे मंजूर कर लेनेको तैयार है, पर एशियाटिक कानून रद करने और दक्षिण अफ्रीकामें नये आदमियोंके आनेके सबंधके कानूनमे अदल-बदल करनेको तैयार नही है। आप चाहते है कि कानूनमें जो काले-गोरे-का भेद किया गया है वह दूर कर दिया जाय। उनको इसमे इन्कार है। भेद रखना उनके लिए सिद्धांतरूप है और शायद वह सोचते हैं कि मैं इस भेदको दूर कर भी दू तो दक्षिण अफ्रीकाके गोरे इस बातको कभी सहन नही करेंगे। जनरल स्मट्सकी राय भी जनरल बोथाकी जैसी ही है। दोनो कहते है कि यह हमारा अंतिम निर्णय और अंतिम प्रस्ताव है। आप इससे अधिक मांगेगे तो आप दुखी होगें और आपकी कौम भी दुखी होगी। अत. आप जो निर्णय करें सोच-समझकर करें।

जनरल बोथाने मुझसे कहा है कि आपसे यह कह दूं और आपकी जिम्मेदारीका खयाल आपको करा दूं।"

यह संदेसा सुनानेके बाद लार्ड एम्प्टहिलने कहा—"देखिये, आपकी सारी व्यावहारिक मांगें तो जनरल बोथा मंजूर कर ही रहे हैं और इस दुनियामें हमें कहीं लेना और कहीं देना तो पड़ता ही है। हम जो चाहते हैं वह सब तो हमें मिल नहीं सकता। इसलिए आपको मेरी अपनी सलाह यही है कि आप इस प्रस्तावको स्वीकार कर लें। आपको सिद्धांतके लिए लड़ना हो तो आगे चलकर लड़ सकते हैं। आप दोनों इस बातपर विचार कर लें और फिर जो मुनासिब हो वह जवाब दें।"

यह सुनकर मैंने सेठ हाजी हबीबकी ओर देखा। उन्होंने कहा—"मेरी तरफसे कहिये कि मैं समझौता-पक्षकी ओरसे कहता हूं कि मैं जनरल बोथाका प्रस्ताव स्वीकार करता हूं। वह इतना दे देंगे तो तत्काल हम संतोष कर लेंगे और सिद्धांतके लिए पीछे लड़ लेंगे। अब कौमका और बरबाद होना मुझे पसंद नहीं। जिस पक्षकी ओरसे मैं बोल रहा हूं उसकी संख्या अधिक है और उसके पास पैसा भी अधिक है।" मैंने इन वाक्योंके अक्षर-अक्षरका उलथा कर दिया और फिर अपने सत्याग्रही पक्षकी ओरसे कहा—"आपने जो कष्ट किया उसके लिए हम दोनों आपके अहसानमंद हैं। मेरे साथीने जो बात कही है वह ठीक है। वह उस पक्षकी ओरसे बोले हैं जो संख्या और पैसा दोनोंमें अधिक बलवान है। जिनकी ओरसे मैं बोल रहा हूं वे पैसेमें उनसे गरीब और संख्यामें थोड़े हैं। पर वे सिरपर कफन बांधे हुए हैं। उनकी लड़ाई व्यवहार और सिद्धांत दोनोंके खातिर है। अगर दोमेंसे एकको छोड़ना ही पड़े तो वे व्यवहारको जाने देंगे और सिद्धांतके लिए लड़ेंगे। जनरल बोथाकी शक्तिका हमें अंदाजा है, पर अपनी प्रतिज्ञाको हम उससे ज्यादा वजनदार मानते हैं, इसलिए उसका पालन

करनेमें हम मर-मिटनेको तैयार हैं। हम धीरज रखेंगे। हमारा विश्वास है कि हम अपने निश्चयपर अटल रहे तो जिस ईश्वरके नामपर हमने प्रतिज्ञा की है वह उसे पूरी करेगा।

"आपकी स्थिति मैं पूरी तरह समझता हूं। आपने हमारे लिए बहुत किया है। अब आप हम मुट्ठीभर सत्याग्रहियोका और साथ न दे सके तो हमें उससे भ्रम न होगा और इससे हम आपके उपकारोको भूलेंगे नही। हमें आशा है कि आप भी हमें आपकी सलाह कबूल न कर सकनेके लिए माफ कर देंगे। जनरल बोथाको हम दोनोकी बाते सुखसे सुनाइएगा और कहिएगा कि हम जो थोड़ेसे सत्याग्रही हैं वे अपनी प्रतिज्ञाका अवश्य पालन करनेवाले और यह आशा रखनेवाले हैं कि हमारी दुःख-सहनकी शक्ति अतमें उनके हृदयको भेदेगी और वे एशियाटिक कानूनको रद कर देंगे।"

लार्ड एम्प्टहिलने उत्तर दिया, "आप यह न समझिएगा कि मैं आपको छोड़ दूगा। मुझे भी अपनी भलमनसीकी रक्षा तो करनी ही है। अग्रेज जिस कामको एक बार हाथमें लेता है उसको यकायक छोडता नही। आपकी लड़ाई न्यायसगत है। आप शुद्ध साधनोसे लडते हैं। मैं आपको कैसे छोड सकता हू ? पर मेरी स्थिति आप समझ सकते हैं। कष्ट तो आपको ही सहने होंगे। इसलिए समझौता हो सकता हो तो उसे स्वीकार करनेकी सलाह देना मेरा धर्म है। पर आप जिन्हे कष्ट सहन करना है, अपनी टेकके लिए चाहे जितना कष्ट सहनेको तैयार हैं तो मैं आपको कैसे रोक सकता हू ? मैं तो आपको बधाई ही दूगा। अत: आपकी कमेटीका अध्यक्ष तो बना ही रहूगा और मुझसे जो मदद बन पडेगी वह भी जरूर करता रहूंगा; पर आपको इतना ध्यानमें रखना होगा कि मैं उमराव सभाका एक छोटा सदस्य समझा

जाता हूं। मेरा वजन ज्यादा नहीं है। फिर भी जो कुछ है वह आपके लिए काम आता ही रहेगा, इस विषयमें आप निश्शंक रहें।"

ये प्रोत्साहनके वचन सुनकर हम दोनोंको प्रसन्नता हुई। इस प्रसंगकी एक मधुर वस्तुकी ओर शायद पाठकोंने ध्यान न दिया हो। सेठ हाजी हबीब और मुझमें, जैसा कि ऊपर बता चुका हूं, मतभेद था, फिर भी हममें परस्पर इतना प्रेम और विश्वास था कि सेठ हाजी हबीबको अपना विरोधी वक्तव्य मेरे ही जरिये कहलानेमें हिचक न हुई। वह इतना विश्वास रख सकते थे कि उनका प्रश्न मैं लार्ड एम्प्टहिलके सामने ठीक तौरसे उपस्थित कर दूंगा।

यहां पाठकोंसे एक अप्रस्तुत बात भी कह दूं। विलायतमें रहनेके दिनोंमें बहुतसे भारतीय अराजकतावादियोंके साथ मेरी बातचीत हुई। उन सबकी दलीलोंका खंडन करके और दक्षिण अफ्रीकाके वैसे विचारवाले लोगोंका समाधान करनेके प्रयत्नसे 'हिंदस्वराज' की उत्पत्ति हुई। उसके मुख्य तत्त्वोंकी मैंने लार्ड एम्प्टहिलके साथ भी चर्चा की थी। उसमें उद्देश्य यही था कि वह जरा भी यह न सोच सकें कि मैंने अपने विचारको दबाकर उनके नाम और उनकी सहायताका दक्षिण अफ्रीकाके कामके लिए दुरुपयोग किया। उनके साथ हुई मेरी बहस और बातचीत मुझे सदा याद रही है। उनके घरमें बीमारी होते हुए भी वह मुझसे मिले थे और यद्यपि 'हिंद-स्वराज' में प्रकट किये हुए मेरे विचारोंसे वह सहमत नहीं हुए, फिर भी दक्षिण अफ्रीकाकी लड़ाईमें उन्होंने अपना हिस्सा आखिरतक पूरा अदा किया और हमारा मधुर संबंध अंततक बना रहा।

: ९ :

टाल्स्टाय फार्म—१

इस बार विलायतसे जो शिष्टमडल लौटा वह अच्छी खबर नही लाया। लोग लार्ड एम्पटहिलके साथ हुई बातचीतका नतीजा क्या निकालेगे इसकी चिता मुझे अधिक नही थी। मेरे साथ अंततक कौन खड़ा होगा यह मैं जानता था। सत्याग्रहके विषयमे मेरे विचार अब अधिक परिपक्व हो गये थे। उसकी व्यापकता और उसकी अलौकिकताको अब मैं अधिक समझ सका था। इसलिए मैं शांत था। 'हिंद-स्वराज' को मैंने विलायतसे लौटते हुए जहाजपर ही लिख डाला। उसका उद्देश्य केवल सत्याग्रहकी भव्यता दिखाना था। यह पुस्तक मेरी श्रद्धाका मानदड है। इससे लडनेवालोकी संख्याका मेरे सामने सवाल ही नही था।

पर मुझे पैसेकी चिता रहती थी। लंबे अरसेतक लडाई चलानी हो और पासमें पैसा न हो, यह दु ख भारी हो गया। पैसेके बिना लडाई चलाई जा सकती ह, पैसा अकसर सत्यकी लड़ाईको दूषित कर देता है, प्रभु सत्याग्रहीको, मुमुक्षुको, आवश्यकतासे अधिक साधन कभी देता ही नही,. इस बातको जितना स्पष्ट आज समझता हूं उतना उस वक्त नही समझता था। पर मैं आस्तिक हूं। प्रभुने उस वक्त भी मेरा साथ दिया। मेरा संकट काटा। एक ओर मुझे दक्षिण अफ्रीकाके तटपर उतरते ही कौमको कामकी विफलताका समाचार देना था तो दूसरी ओर प्रभुने मुझे पैसोके कष्टसे मुक्त कर दिया। केप-टाउनमे उतरते ही मुझे विलायतसे तार मिला कि सर रतनजी जमशेदजी ताताने सत्याग्रह कोषमें २५ हजार रुपया दिया है। इतना रुपया उस वक्त हमारे लिए काफी था। हमारा काम चल निकला।

पर इस धनसे या बड़ी-से-बड़ी धनराशिसे सत्याग्रहकी आत्मशुद्धिकी—आत्मबलकी—लड़ाई नहीं चल सकती। इस संग्रामके लिए चारित्र्यकी पूंजी होनी चाहिए। मालिकके विना महल जैसे खंडहर-सरीखा लगता है वैसे ही चारित्र्यहीन मनुष्य और उसकी सम्पत्तिको समझना चाहिए। सत्याग्रहियोंने देखा कि लड़ाई कितने दिन चलेगी इसका अंदाजा किसीसे नहीं लगाया जा सकता। कहां जनरल बोथा और जनरल स्मट्सकी एक इंच भी न हटनेकी प्रतिज्ञा और कहां सत्याग्रहियोंकी मरते दमतक जूझनेकी प्रतिज्ञा! हाथी और चींटीकी लड़ाई थी। हाथीके एक पांवके नीचे अगणित चींटियोंका भुरता बन सकता है। सत्याग्रही अपने सत्याग्रहकी अवधिको हदसे घेर नहीं सकता। एक बरस लगे या अनेक, उसके लिए सब बराबर हैं। उसके लिए तो लड़ना ही जय है। लड़नेके मानी थे जेल जाना, देशनिकाला होना। इसके बीच बाल-बच्चोंका क्या हो? निरंतर जेल जानेवालेको नौकरी तो कोई देगा ही नहीं। जेल-से छूटनेपर खुद क्या खायं, बाल-बच्चोंको क्या खिलायें? कहां रहें? भाड़ा कौन दे? आजीविकाके विना सत्याग्रही भी उद्विग्न होता है। भूखों मरकर और अपनोंको भूखों मारकर भी लड़ाई लड़ते रहनेवाले दुनियामें अधिक नहीं हो सकते।

अबतक जेल जानेवालोंके कुनबोंका भरण-पोषण उनको हर महीने पैसा देकर किया जाता था। हरएकको उसकी आवश्यकता-के अनुसार दिया जाता था। चींटीको कण और हाथीको मन। सबको बराबर तो दे ही नहीं सकते थे। पांच बच्चेवाले सत्याग्रही और ब्रह्मचारीको जिसके आगे-पीछे कोई हो ही नहीं, एक पांतमें नहीं बिठा सकते। केवल ब्रह्मचारियोंको ही भरती करें, यह भी नहीं हो सकता था। तब किस दर या पैमानेसे पैसा दिया जाय? आम तौरसे तो हरएक कुटुंबसे पूछा जाता कि कम-से-कम कितने रुपयेमें उसका गुजर हो जायगा और जो

रकम वह बताता उसपर विश्वास रखकर उसीके अनुसार उसका खर्च दिया जाता। इसमे छल-कपटके लिए बहुत अवकाश था। कपटियोने इसका कुछ लाभ भी लिया। दूसरे सच्चे लोग भी, किसी खास ढंगसे रहनेके आदी होनेसे उसके योग्य सहायताकी आशा रखते थे। मैने देखा कि इस ढगसे लबे अरसेतक लडाई चलाना अशक्य है। लायकके साथ अन्याय होने और नालायकके अपने पाखडमे सफल हो जानेका डर रहता है। यह मुश्किल एक ही तरह हल हो सकती थी कि सारे कुटुबोको एक जगह रखे और सब साथ रहकर काम करे। इसमे किसीके साथ अन्याय होनेका डर न रहता। ठगोके लिए बिलकुल गुजाइश नही रहती, यह भी कह सकते है। जनताके पैसेकी बचत होती और सत्याग्रही कुटुबोको नये और सादे जीवनकी तथा बहुतोके साथ मिलकर रहनेकी शिक्षा मिलती, अनेक प्रातो और अनेक धर्मोके भारतीयोके साथ रहनेका मौका मिलता।

पर ऐसी जगह कहा मिले? शहरमे रहने जाय तो बकरीको निकालते हुए ऊटोको घुसा लेनेका डर था। महीनेके खर्चके बराबर शायद मकानभाडा ही देना पडे और सत्याग्रही कुटुबोको शहरमे सादगीसे रहनेमे भी कठिनाई होती। फिर शहरमे इतना लबा-चौड़ा स्थान भी न मिल सकता जहा बहुतसे परिवार घर बैठे कोई उपयोगी धंधा कर सकें। अत यह स्पष्ट था कि हमे ऐसा स्थान पसद करना चाहिए जो शहरसे न बहुत दूर हो और न बहुत नजदीक। फिनिक्स तो था ही, 'इडियन ओपीनियन' वहा छपता था। थोडी खेती भी होती थी, बहुतसे सुभीते मौजूद थे। पर फिनिक्स जोहान्सबर्गसे ३०० मीलके फासलेपर और रेलसे तीस घटेका रास्ता था। इतनी दूर कुटुबोको लाना, ले जाना टेढा और महँगा काम था। फिर सत्याग्रही कुटुब अपना घर-बार छोडकर इतनी दूर जानेको तैयार नही हो सकते थे।

होते भी तो उन्हे और सत्याग्रही बंदियोको जेलसे छूटनेपर इतनी दूर भेजना अशक्य-सा लगा।

अतः स्थान तो ट्रांसवालमे ही और वह भी जोहान्सबर्गके पास ही होना चाहिए था। मि० केलनबेकका परिचय पाठकोंको करा चुका हूं। उन्होने ११०० एकड़ जमीन खरीदी और सत्याग्रहियोको बिना किसी भाडे-लगानके उसको काममे लानेका अधिकार दे दिया (३० मई १९१०)। इस जमीनमे बहुतसे, एक हजारके लगभग, फलवाले पेड थे और पहाडीकी तलहटीमे पाच-सात आदमियोंके रहने लायक एक छोटा-सा मकान था। पानीके लिए एक झरना और दो कुए थे। रेलवे स्टेशन लॉले करीब एक मीलपर था और जोहान्सबर्ग २१ मील। इस जमीनपर ही मकान बनवाने और सत्याग्रही कुटुंबोको बसानेका निश्चय किया गया।

: १० :

टाल्स्टाय फार्म—२

यह जमीन ११०० एकड थी और उसके ऊचे हिस्सेपर एक छोटी-सी पहाडी थी, जिसकी तलहटीमें एक छोटा-सा मकान था। उसमे एक हजारके लगभग फल वाले पेड थे। उनमे नारगी, एप्रिकॉट, प्लम इफरातसे फलते, इतने कि मौसिममे सत्याग्रही भरपेट खाये तो भी बच रहे। पानीका एक नन्हा-सा झरना था। उससे पानी मिल जाता। जहां रहना था उस जगहसे वह कोई ५०० गज दूर होगा। इसलिए पानी कांवरपर भरकर लानेकी मेहनत तो थी ही।

इस स्थानमे हमारा यह आग्रह था कि घरका कोई काम नौकरसे न लिया जाय और खेती-बारी और घर बनानेका काम

भी जितना अपने हाथो हो सकता है किया जाय। इसलिए पाखाना साफ करनेसे लगाकर खाना पकानेतकका सारा काम हमें अपने हाथों ही करना था। कुटुंबोंका रखना था, पर हमने शुरूसे ही तै कर लिया था कि स्त्रिया और पुरुष अलग-अलग रखे जायं। इसलिए दोनोके लिए अलग-अलग मकान और थोड़े फासलेपर बनानेका निश्चय हुआ। १० स्त्रियों और ६० पुरुषोके रहने लायक मकान तुरत बना लेनेका निश्चय किया गया। एक मकान मि० केलनबेकके रहनेके लिए बनाना था और उसके साथ-साथ एक पाठशालाके लिए भी। इनके सिवा बढईके काम, मोचीके काम इत्यादिके लिए एक कारखाना भी तैयार करना था।

जो लोग इस स्थानमे रहनेके लिए आनेवाले थे वे गुजरात, मद्रास, आंध्र और उत्तरी हिंदुस्तानके थे। धर्मके विचारसे वे हिंदू, मुसलमान, पारसी और ईसाई थे। कुल ४०के लगभग युवक, दो-तीन बूढ़े, पाच स्त्रियां और २०से ३० तक बच्चे थे, जिनमे पाच लडकिया थीं।

स्त्रियोंमें जो ईसाई थी उन्हे और दूसरोंको भी मासाहार-की आदत थी। मि० केलनबेककी और मेरी भी राय थी कि इस स्थानमे मांसाहारका प्रवेश न हो तो अच्छा है। पर जिन्हे उसके विषयमे धर्म-नीतिकी तनिक भी अडचन न हो, जो संकटके समय इस स्थानमें आ रहे थे और जिन्हें जन्मसे इस चीजकी आदत हो उनसे थोडे दिनोके लिए भी उसे छोडनेको कैसे कहा जा सकता ? न कहा जाय तो खर्च कितना होगा ? फिर जिन्हे गोमांसकी आदत हो उन्हें क्या गोमास दिया जाय ? कितने रसोईघर चलाये जाय ? मेरा धर्म इस विषयमे क्या था ? इन कुटुबोंको पैसा देनेका निमित्त बनकर भी तो मैं मांसाहार और गोमासाहारमे सहायक होता ही था। अगर यह नियम कर लू कि मांसाहार करनेवालेको मदद न मिलेगी तो

सत्याग्रहकी लड़ाई मुझे केवल निरामिषभोजियोंके जरिये ही लड़नी होगी। यह भी कैसे हो सकेगा? लड़ाई तो भारतीय-मात्रकी थी। अपना धर्म मैं स्पष्ट देख सका। ईसाई या मुसलमान भाई गोमांस ही मांगे तो मुझे उनको वह देना ही होगा। मैं उन्हें इस स्थानमें आनेकी मनाही नहीं कर सकता।

पर प्रेमका बेली ईश्वर है ही। मैंने तो सरल भावसे ईसाई बहनोंके सामने अपना संकट रखा। मुसलमान भाइयोंने तो मुझे केवल निरामिष रसोई चलानेकी इजाजत पहले ही दे दी थी, केवल ईसाई बहनोंकी बात मुझे समझनी थी। उनके पति या पुत्र तो जेलमें थे। उनकी सम्मति मुझे प्राप्त थी, उनके साथ ऐसे मौके अनेक बार आ चुके थे। केवल बहनोंके साथ ऐसे निकट संबंधका यह पहला ही अवसर था। मैंने उनसे मकानकी अड़चन, पैसेकी अड़चन और अपनी भावनाकी बात कही, साथ ही यह इतमीनान भी दिला दिया कि वे मांगेंगी तो मैं गोमांस भी हाजिर कर दूंगा। बहनोंने प्रेमभावसे मांस न मांगना मंजूर किया। रसोईका काम उनके हाथमें सौंपा गया। उनकी मददके लिए हममेंसे एक-दो पुरुष भी दे दिये गये। उनमें मैं तो था ही। मेरी मौजूदगी छोटे-मोटे झगड़े-टंटोंको दूर रख सकती थी। रसोई जितनी सादी हो सकती है रखनेका निश्चय हुआ। खानेका समय निश्चित हुआ। रसोई एक ही रखी गई। सबको एक ही पांतमें भोजन करना था, सबको अपने-अपने बरतन धो-मांजकर साफ रखने थे। शामिल बरतन सब लोग बारी-बारीसे मांजें यह तै हुआ। मुझे यह बता देना चाहिए कि टाल्स्टाय फार्म लंबे अरसेतक चला, पर बहनों या भाइयोंने कभी मांसाहारकी मांग नहीं की। शराब, तंबाकू आदि तो वर्जित थे ही।

मैं लिख चुका हूं कि मकान बनानेका काम भी जितना अपने हाथों हो सके उतना करनेका हमारा आग्रह था। स्थापति

(Architect) तो मि० कैलनबेक थे ही। वह एक यूरोपियन राज ले आये। एक गुजराती बढ़ई नारायणदास दमानियाने, अपनी सहायता बिना पैसेके प्रदान की। और दूसरे बढ़ई भी थोड़े पैसेमें चला दिये। केवल शारीरिक श्रमका काम हमने अपने हाथों किया। हममेंसे जिनके अंग लचीले थे उन्होंने तो कमाल कर दिया। बढ़ईका आधा काम तो विहारी नामके सत्याग्रहीने उठा लिया। सफाईका काम, शहर जाना और वहांसे सामान लाना आदि सिंह समान थंबी नायडूने अपने जिम्मे ले लिया।

इस टुकड़ीमें एक थे भाई प्रागजी खंडूभाई देसाई। उन्होंने अपनी जिंदगीमें कभी सर्दी-गर्मी नहीं सही थी। यहां तो कड़ाकेकी ठंड, कड़ी गर्मी और गहरी बरसात सब सहनी थी। इस स्थानमें हमारे निवासका श्रीगणेश तो खेमोंमें हुआ। जबतक मकान बने तबतक उन्हींमें सोना पड़ा। मकान दो महीनेमें बने होंगे। मकान सफेद लोहेकी चादरोंके थे, इससे उनके बनानेमें ज्यादा वक्त न लगता। हमें लकड़ी भी जिस-जिस नापकी दरकार थी तैयार मिल जाती थी। हमको बस इतना ही करना रहता कि नापकर उसके टुकड़े कर ले। खिड़की, दरवाजे भी थोड़े ही बनाने थे, इसीसे इतने कम समयमें इतने अधिक मकान बना लिये गये। पर इन कामोंमें भाई प्रागजीकी पूरी मशक्कत हो गई। जेलकी तुलनामें फार्मका काम निश्चय ही कड़ा था। एक दिन तो थकावट और गर्मीसे वह बेहोश हो गये; पर वह झट हार माननेवाले आदमी नहीं थे। उन्होंने अपने शरीरको यहां पूरी तरह कस लिया और अंतमें तो इतनी शक्ति प्राप्त कर ली थी कि मशक्कतमें सबके साथ जुट सके।

ऐसे ही दूसरे भाई थे जोसफ़ रॉयपन। वह तो बैरिस्टर थे, पर उन्हें बैरिस्टरीका गर्व न था। बहुत कड़ी मेहनत उनसे

न हो सकती थी, ट्रेनसे बोझा उतारना और बैलगाडीपर उसे लादना उनके लिए कठिन था, पर अपनी शक्तिभर उन्होंने इसे भी किया।

टाल्सटाय फार्ममें निर्बल सबल हो गये और मेहनत सबके लिए शक्तिवर्द्धक साबित हुई।

सबको किसी-न-किसी कामसे जोहान्सवर्ग जाना पड़ता। बच्चोंको सैरके लिए जानेकी इच्छा होती, मुझको भी कामवश जाना होता। हमने निश्चय किया कि सार्वजनिक आश्रमके कामसे जाना हो तभी रेलसे जानेकी इजाजत मिले और तीसरे दरजेको छोडकर और किसीमें जाना तो हो ही नहीं सकता था। जिसे सैरके लिए जाना हो वह पैदल चलकर जाय और अपना नाश्ता बांधकर साथ ले जाय। कोई शहरमें खानेको खर्च न करे। इतने कड़े नियम न रखे होते तो जो पैसा बचानेके लिए हमने वनवास स्वीकार किया वह रेलभाड़े और बाजारके रास्तेमें उड़ जाता। घरका नाश्ता भी सादा ही होता। घरके पिसे और बिना छने आटेकी रोटी, मूगफलीका घर बनाया हुआ मक्खन और नारंगीके छिलकेका मुरब्बा। आटा पीसनेके लिए हाथसे चलानेकी लोहेकी बनी चक्की ली थी। मूगफलीको भूनकर पीस लेनेसे मक्खन तैयार हो जाता था। उसका दाम दूधके मक्खनकी अपेक्षा चार गुना सस्ता पड़ता। नारंगी तो फार्ममें ही इफरातसे होती थी। फार्ममें गायका दूध तो शायद ही कभी लिया जाता। हम डिब्बेका दूध काममें लाते।

अब फिर सफरकी चर्चापर आएं। जिसे जोहान्सवर्ग जानेका शौक होता वह हफ्तेमें एक या दो बार पैदल जाता और उसी दिन लौट आता। पहले बता चुका हूं कि वह २१ मीलका रास्ता था। पैदल जाने-आनेके इस एक नियमसे ही सैकडों रुपये बच गये और पैदल जानेवालोंको बहुत

लाभ भी हुआ । कितनोको पैदल चलनेकी नई आदत पड़ गई। नियम यह था कि इस तरह जानेवाले दो बजे रातको उठे और २॥ बजे रवाना हो जायं। सब छः से सात घटेके अंदर जोहान्सवर्ग पहुंच सकते थे । कम-से-कम समय लेनेवाले ४ घंटे १८ मिनटमे पहुंचते ।

पाठक यह न माने कि ये नियम आश्रमवासियोपर भाररूप थे। सभी उनका प्रेमपूर्वक पालन करते थे। वलात्कारसे तो मैं एक भी आदमीको वहां न रख सकता। युवक सफरमे हो या आश्रममे, सारा काम हँसते-हँसते और किलकते हुए करते। शारीरिक श्रमके समय तो उन्हें ऊधम मचानेसे रोकना कठिन होता। उनसे उतना ही काम लेनेका नियम रखा गया था जितना उन्हे खुश रखते हुए लिया जा सके। इससे काम कम हुआ, यह मुझे नही जान पड़ा ।

पाखानेकी कथा समझ लेनी चाहिए। इतने आदमी इकट्ठे रहते थे, फिर भी किसीको कही कूड़ा, मैला या जूठन पड़ी दिखाई नही देती थी। एक गढा खोद रखा गया था, सारा कूड़ा उसीमे डालकर ऊपरसे मिट्टी डाल दी जाती। पानी कोई रास्तेमे न गिराने पाता। सब बरतनोमे इकट्ठा किया जाता और पेड़ोको सीचनेमे खर्च किया जाता। जूठन और साग-तर-कारीके छिलको आदिकी खाद बनती। पाखानेके लिए रहनेके मकानके पास एक चौरस गढा डेढ़ फुट गहरा खोद रखा था। उसीमे सारा पाखाना डाल दिया जाता और ऊपरसे खोदी हुई मिट्टीको भी डालकर पाट दिया जाता। इससे जरा भी दुर्गंध न आती। मक्खियां भी वहा नही भिनभिनाती थी और किसीको इसका खयाल भी न आता कि यहा पाखाना पाटा गया है। साथ ही फार्मको अमूल्य खाद मिलती थी। हम मैलेका सदुपयोग करें तो लाखो रुपयेकी खाद बचाएं और अनेक रोगोंसे भी बचे। पाखानेके बारेमें अपनी

बुरी आदतके कारण हम पवित्र नदीके किनारेको भ्रष्ट करते हैं, मक्खियोंकी उत्पत्ति करते हैं और नहा-धोकर साफ-सुथरे होनेके बाद, जो मक्खियां हमारी बेहूदी लापरवाहीसे खुले हुए विष्टापर बैठ चुकी हैं उन्हें अपने शरीरका स्पर्श करने देते हैं। एक छोटी-सी कुदाली हमें बहुत-सी गंदगीसे बचा सकती है। चलनेके रास्तेपर मैला फेंकना, थूकना, नाक साफ करना ईश्वर और मनुष्य दोनोंके प्रति पाप है। इसमें दयाका अभाव है। जंगलमें रहनेवाला भी अगर अपने मैलेको मिट्टीमे दबा नही देता तो वह दडके योग्य है।

हमारा काम था सत्याग्रही कुटुंबोंको उद्योगी बनाये रखना, पैसा बचाना और अंतमे स्वावलंबी बनना। हम यह कर सकें तो चाहे जितने अरसेतक लड़ सकते थे। जूतोंका तो खर्च था ही। बंद जूते (शू) से गर्म आब-हवामे तो नुकसान ही होता है। सारा पसीना पैर चूस लेता है और नाजुक हो जाता है। मोजेकी जरूरत तो हमारी जैसी आबहवामे होती ही नही। पर कांटे-रोड़े आदिसे बचनेके लिए कुछ बचावकी आवश्यकता हम मानते थे। इसलिए हमने कंटकरक्षक अर्थात् चप्पल बनानेका काम सीख लेनेका निश्चय किया। दक्षिण अफ्रीकामें प्राइनटाउनके पास मेरियनहिलमे रोमनकैथेलिक पादरियोंका ट्रेपिस्ट नामका मठ है। वहां ऐसे उद्योग चलते हैं। ये पादरी जर्मन हैं। उनके एक मठमे जाकर मि० केलनबेक चप्पल बनाना सीख आये। उन्होंने मुझे सिखाया और मैंने दूसरे साथियोंको। यों अनेक युवक चप्पल बनाना सीख गये और हम मित्रमंडलीमे उसे बेचने भी लगे। मुझे यह कहनेकी आवश्यकता नही होनी चाहिए कि मेरे कितने ही 'चेले' इस हुनरमें मुझसे सहज ही आगे निकल गये। दूसरा धंधा हमने बढ़ईका दाखिल किया। हम एक गांव-सा बसा रहे थे। वहां हमे चौकीसे लगाकर बक्स-सदूकतक अनेक

छोटी-बड़ी चीजोंकी आवश्यकता थी । वे सब चीजे हम अपने हाथ ही बनाते । जिन परोपकारी मिस्त्रियोकी बात ऊपर कह चुका हूं उन्होंने तो कई महीनेतक हमे मदद दी। इस विभागकी अध्यक्षता मि० केलनबेकने स्वय स्वीकार की थी । उनकी कुशलता और सावधानताका अनुभव हमें प्रतिक्षण होता था।

युवकों और बालक-बालिकाओंके लिए एक पाठशाला तो चाहिए ही थी । यह काम सबसे कठिन जान पडा और अततक पूर्णताको नही पहुचा । शिक्षणका भार मुख्यत मि० केलनबेक और मुझपर था। पाठशाला दोपहरसे ही चलाई जा सकती थी । उस वक्त हम दोनो सवेरेकी मशक्कतसे खूब थके होते । पढनेवालोका भी यही हाल होता । अत अकसर वे और हम भी ऊंघने लगते । हम आखोंपर पानीके छीटे देते, बच्चोके साथ हँस-खेलकर उनकी और अपनी ऊंघ भगाते; पर अकसर यह कोशिश बेकार जाती । शरीर जो आराम मागता है वह लेकर ही छोडता है । यह तो एक और सबसे छोटा विघ्न था, क्योकि नीदमे झोके खाते हुए भी कक्षाए तो चलती ही थी। पर तामिल, तेलगू और गुजराती तीन भाषाएं बोलनेवालोंको क्या सिखाया जाय और कैसे ? मातृभाषाके द्वारा शिक्षा देनेका लोभ तो मुझे था ही । तामिल थोडी-बहुत जानता था, पर तेलगू तो एक अक्षर भी न आती थी । ऐसी स्थितिमे एक शिक्षक क्या करे ? युवकोमेसे कुछका शिक्षकरूपमे उपयोग किया । यह प्रयोग सफल हुआ, यह नही कहा जा सकता । भाई प्रागजीका उपयोग तो होता ही था । युवकोमेसे कुछ बडे नटखट और आलसी थे । किताबके साथ हमेशा लडाई करते थे । ऐसे विद्यार्थियोको आगे बढाने की शिक्षक क्या आशा कर सकते थे ? फिर हमारा काम अनियमित था । जरूरी होनेपर मुझे जोहान्सबर्ग जाना ही पडता । यही बात मि० केलनबेककी थी ।

दूसरी कठिनाई धार्मिक शिक्षाकी थी। मुसलमानोको कुरान पढानेका लोभ तो मुझे था ही। पारसियोंको अवेस्ता पढानेकी इच्छा होती। एक खोजाका लडका था। उसके पास अपने पंथकी एक छोटी-सी पोथी थी। उसके वापने वह पोथी पढानेका भार मुझपर डाल दिया था। मैंने इस्लाम और पारसी धर्मकी पुस्तकें इकट्ठी की। हिंदू-धर्मके जो मुझे मूलतत्त्व जान पडे उन्हे मैंने लिख डाला—अपने ही वच्चोके लिए या फार्मके वच्चोके लिए, यह वात अव याद नही रही। यह चीज मेरे पास होती तो अपनी प्रगति या गतिकी नाप करनेके लिए मै उसे यहा दे देता; पर ये चीजे तो कितनी ही अपनी जिदगीमें मैंने फेक दी या जला डाली। इन वस्तुओंके संग्रहकी आवश्यकता मुझे ज्यो-ज्यों कम जान पड़ती गई और ज्यो-ज्यो मेरा काम वढता गया त्यो-त्यों मैं इन चीजोका नाश करता गया। मुझे इसका पछतावा भी नही। इन वस्तुओका सग्रह मेरे लिए एक वोझ और वडे खर्चकी चीज हो जाता। उनके रक्षणके साधन मुझे जुटाने पडते और मेरी अपरिग्रही आत्माको यह असह्य होता।

पर यह शिक्षणका प्रयोग व्यर्थ नही गया। वालकोमे कभी असहिष्णुता नही आई। एक दूसरेके धर्म और रीति-रिवाजके प्रति उन्होंने उदार-भाव रखना सीखा। सगे भाइयों-की तरह हिल-मिलकर रहना सीखा। एक-दूसरेकी सेवा करना सीखा। सभ्यता सीखी। उद्यमी वने और आज भी उन वालकोमेंसे, जिनके कार्योंकी थोडी-वहुत खवर मुझको है उसपरसे मै जानता हू कि टाल्स्टाय फार्ममे उन्होंने जो कुछ सीखा वह व्यर्थ नही गया। अधूरा सही, पर यह विचारमय और धार्मिक प्रयोग था और टाल्स्टाय फार्मके जो संस्मरण अत्यन्त मधुर है उनमे यह शिक्षणके प्रयोगका स्मरण तनिक भी कम मधुर नही है।

पर इन मधुर स्मृतियोंके लिए एक पूरे प्रकरणकी आवश्यकता है।

: ११ :

टाल्स्टाय फार्म—२

इस प्रकरणमे टाल्स्टाय फार्मके वहुतसे संस्मरणोका सग्रह होगा। अतः ये स्मरण असवद्ध लगेंगे। पाठक इसके लिए मुझे क्षमा करेंगे।

पढानेके लिए जैसा वर्ग मुझे मिला था वैसा शायद ही किसी शिक्षकके हिस्से पडा हो। सात वरसके वालक-वालिकाओसे लगाकर२० वरसतकके जवान और १२-१३ वरसतककी लड़कियां इस वर्गमे थी। कुछ लड़के ऐसे थे जिन्हे जगली कह सकते हैं। वे खूव ऊधम मचाते।

ऐसे जमातको क्या पढाऊ? सवके स्वभावके अनुकूल कैसे होऊ? फिर सवके साथ किस भाषामे वातचीत करू? तामिल और तेलगूभाषी बच्चे या तो अपनी मातृभाषा समझते थे या अग्रेजी। थोड़ी डच भी जानते थे। मुझे तो अग्रेजीसे ही काम लेना होता। मैंने वर्गके दो विभाग कर दिये—गुजराती भाषी बच्चोंसे गुजरातीमें बोलता, बाकी सबसे अग्रेजीमे। शिक्षणकी योजना यह थी कि उसका मुख्य भाग होता तो कोई रोचक वार्ता कहना या पढकर सुनाना। बच्चोको साथ मिलकर वैठना और मित्रभाव, सेवाभाव सिखाना, यही उद्देश्य मैंने सामने रखा था। इतिहास-भूगोलका थोडा सामान्य ज्ञान करा देता और थोडा लिखना सिखा देता। कुछको अकगणित भी सिखाता। इस तरह गाडी चला

लेता। प्रार्थनामे गानेके लिए कुछ भजन सिखाता। उसमे शामिल होनेके लिए तामिल वालकोंको भी ललचाता।

लड़के-लड़कियां आजादीसे साथ उठते-बैठते। टाल्स्टाय फार्ममे मेरा यह सहशिक्षाका प्रयोग अधिक-से-अधिक निर्भय था। जो आजादी मैंने बालक-बालिकाओंको वहा दी या सिखाई थी वह आजादी देने या सिखानेकी मेरी हिम्मत भी आज नही होती। मुझे अकसर ऐसा लगा है कि मेरा मन उन दिनों आजकी अपेक्षा अधिक निर्दोष था। इसका कारण मेरा अज्ञान हो सकता है। इसके बाद कई बार मुझे धोखा हुआ है, कड़वे अनुभव हुए है। जिन्हें मै नितांत निर्दोष समझता था वे सदोष सिद्ध हुए है। अपने आप भी गहराईमे पैठनेपर मैंने विकार पाये है। इससे मन कातर बन गया है।

मुझे अपने इस प्रयोगपर पछतावा नही। मेरी आत्मा गवाही देती है कि इस प्रयोगसे कुछ भी हानि नही हुई; पर दूधका जला छाछको भी फूक-फूककर पिया करता है। यही बात मेरे बारेमें समझनी चाहिए।

मनुष्य श्रद्धा या हिम्मत दूसरेसे चुरा नही सकता। 'सशयात्मा विनश्यति'। टाल्स्टाय फार्ममे मेरी हिम्मत और श्रद्धा पराकाष्ठाको पहुची हुई थी। यह श्रद्धा और हिम्मत फिर देनेके लिए मैं प्रभुसे प्रार्थना किया करता हूं। पर वह सुने तब न! उसके सामने तो मुझ-जैसे अगणित भिखारी होते है। भरोसा इतना ही है कि जैसे उससे याचना करनेवाले असख्य है वैसे उसके कान भी असख्य है। इसलिए उसपर मेरी श्रद्धा पूरी है। यह भी जानता हू कि जब मैं इसका अधिकारी हो जाऊंगा तब मेरी अर्ज जरूर सुनेगा।

यह था मेरा प्रयोग। मै तो बदमाश समझे जानेवाले लड़कों और निर्दोष सयानी लड़कियोको साथ नहानेको भेजता।

लड़के-लडकियोको मर्यादाधर्मके विषयमे खूब समझा दिया था। मेरे सत्याग्रहसे वे सभी परिचित थे। मै उन्हे माके जितना ही प्यार करता था इसे मै तो जानता ही था, पर वे भी इसे मानते थे। पाठकोंको पानीके झरनेकी बात याद होगी। वह रसोईसे कुछ दूरपर था। वहा बालक-बालिकाओका सगम होने देना और फिर यह आशा रखना कि वे निर्दोष निष्पाप बने रहेंगे? मेरी आखे तो उन लडकियोके पीछे वैसे ही फिरा करती थी जैसे मांकी आखें बेटीके पीछे फिरा करती है। स्नानका समय नियत था। उसके लिए सब लड़कियां और सब लड़के साथ जाते। संघमे जो एक प्रकारकी सुरक्षितता होती है वह यहां थी। उन्हे कही एकात तो मिलता ही नही। आमतौरसे मै भी उसी वक्त वहां पहुंच जाता।

हम सभी एक खुले बरामदेमें सोते थे। लड़के-लडकिया मेरे आस-पास सोते। दो बिस्तरोके बीच मुश्किलसे तीन फुटका अतर होता। बिस्तरोके क्रममें अवश्य थोडी सावधानी रखी जाती; पर सदोष मनके लिए यह सावधानी क्या कर सकती थी? अब मै देखता हू कि इन लड़के-लड-कियोंके बारेमे प्रभुने ही लाज रखी। मैने इस विश्वाससे यह प्रयत्न किया कि लड़के-लड़कियां इस तरह निर्दोष रीतिसे मिल-जुल सकते है। उनके मा-बापने मुझपर बेहद विश्वास रखकर यह प्रयोग करने दिया।

एक दिन इन लड़कियोने ही या किसी लडकेने मुझे खबर दी कि एक युवकने दो लड़कियोके साथ मजाक किया है। मै कांप उठा। मैने जांच की। बात सच थी। युवकोंको समझाया, पर इतना काफी नही था। दोनों लडकियोके शरीरपर कोई ऐसा चिह्न चाहता था जिससे हरएक युवक यह समझ सके और जान ले कि इन बालाओंपर कुदृष्टि डाली ही नही जा सकती। लड़कियां भी समझ ले कि हमारी पवित्रतापर

कोई हाथ डाल सकता ही नही। सीताके शरीरको विकारी रावण स्पर्शतक न कर सका। राम तो दूर थे। ऐसा कौन-सा चिह्न इन लड़कियोको दू, जिससे वे अपने आपको सुरक्षित समझे और दूसरे भी उन्हे देखकर निर्विकार रहे? रातभर जागा। सवेरे लडकियोंसे विनती की। उन्हें चौकाये विना समझाकर सलाह दी कि वे अपने सुंदर केश कतर देनेकी इजाजत मुझे दे दे। फार्मपर हम एक दूसरेकी दाढी बनाया और वाल कतर दिया करते थे। इससे कतरनी मेरे पास थी। पहले तो उन लड़कियोने नहीं समझा। वडी स्त्रियोको मैंने अपनी वात समझा दी थी। उन्हे मेरी सलाह सहन तो नही हुई, पर वे मेरा हेतु समझ सकी थी। उनकी मदद मुझे मिली। दोनो लडकिया भव्य थी। आह! आज उनमेंसे एक चल वसी है। वह तेजस्विनी थी! दूसरी जीवित है और अपनी गृहस्थी चला रही है। अतमे वे दोनो समझ गईं। उसी क्षण उस हाथने जो आज यह प्रसंग लिख रहा है, उन वालिकाओंके केशपर कतरनी चला दी। पीछे दरजेमे इस कार्यका विश्लेपण करके सवको समझा दिया। परिणाम सुदर रहा। फिर मैंने मजाककी वात नही सुनी। इन लड़कियोंने कुछ खोया तो नही ही। कितना पाया यह तो भगवान ही जानते होंगे। मै आशा रखता हू कि युवक इस घटनाको याद करते और अपनी दृष्टिको शुद्ध रखते होगे।

ऐसे प्रयोग अनुकरणके लिए नही लिखे जाते। कोई शिक्षक उनका अनुकरण करे तो वह भारी जोखिम अपने सिरपर लेगा। इस प्रयोगका उल्लेख स्थितिविशेषमे मनुष्य किस हदतक जा सकता है यह दिखाने और सत्याग्रहकी लडाईकी विशुद्धता वतानेके लिए किया गया है। इस विशुद्धतामे ही उसकी विजयकी जड़ थी। इस प्रयोगके लिए शिक्षकको मां-वाप दोनो वनना होता है और हर कष्ट-हानिके लिए

तैयार होकर ही ऐसे प्रयोग किये जा सकते है। उनके पीछे कठिन तपश्चर्याका बल होना चाहिए।

इस कार्यका असर फार्मवासियोकी सारी रहन-सहनपर पडे बिना न रहा। कम-से-कम खर्चमे गुजर करना हमारा उद्देश्य था, इसलिए पहनावेमे भी हेर-फेर किया। दक्षिण अफ्रीकाके शहरोमे आमतौरसे हमारे पुरुषवर्गका पहनावा यूरोपियन ढंगका ही होता है। सत्याग्रहियोका भी था। फार्मपर उतने कपड़ोकी जरूरत नही थी। हम सभी मजदूर बन गये थे। इससे पहनावा रखा मजदूरोका, पर यूरोपीय ढंगका—यानी मजदूरोके पहननेका पतलून और उसी तरहकी कमीज। इस पहनावेमे जेलका अनुकरण था। मोटे आसमानी रगके कपडेका सस्ता पतलून और कमीज मिलती, वही सब पहनते। स्त्रियोमें अधिकाश सिलाईका काम सुदर रीतिसे कर सकती थी। उन्होने सिलाईका सारा काम अपने ऊपर ले लिया।

भोजनमे चावल, दाल, तरकारी, रोटी और कभी-कभी खीर होना सामान्य नियम था। ये सारी चीजे एक ही बरतनमे परसी जाती। बरतनमे थालीके बदले जेलकी जैसी तसली रखी गई थी और लकडीके चमचे अपने हाथसे बना लिए गये थे। खाना तीन वक्त दिया जाता। सवेरे छ. बजे रोटी और गेहूका कहवा (काफी), ग्यारह बजे दाल-भात और तरकारी और शामके ५॥ बजे गेहूकी लपसी और दूध या रोटी और गेहूका कहवा। रातके ९ बजे सबको सो जाना होता। शामके भोजनके बाद सात या साढे सात बजे प्रार्थना होती। प्रार्थनामे भजन गाये जाते और कभी रामायणसे तो कभी इसलामके धर्मग्रथोमेंसे कुछ पढा जाता। भजन अग्रेजी, हिंदी और गुजरातीमे होते। कभी तीनोके भजन गाये जाते तो कभी एकहीसे।

फार्ममे बहुतेरे एकादशी व्रत करते। वहा भाई पी. के. कोतवाल पहुच गये थे जिन्हे उपवास आदिका अच्छा ज्ञान

और अनुभव था। उनको देखकर बहुतोने चातुर्मास किया। इसी बीच रोजा भी आ गया। हममे कुछ मुसलमान नौजवान थे। उन्हे रोजा रखनेको प्रोत्साहन देना हमे अपना धर्म जान पड़ा। उसके लिए सरगही (सहरी) और रातके भोजनका प्रबंध कर दिया। उनके लिए रातमे खीर आदि भी बनती। मासाहार तो होता ही नही था। किसीने इसकी मांग भी नही की। उनके धर्मभावका सम्मान करनेके लिए हम भी एक ही जून शामको भोजन करते। हमारा सामान्य नियम सूर्यास्तसे पहले भोजन कर लेनेका था। मुसलमान लडके थोडे ही थे, इसलिए अंतर इतना ही होता कि दूसरे सूर्यास्तसे पहले खा-पीकर तैयार हो जाते। मुसलमान नवयुवकोने भी रोजा रखनेमे इतनी भलमनसी बरती कि किसीको ज्यादा तकलीफ न होने दी। पर इस तरह गैर मुस्लिम लडकोके आहार-संयममे उनका साथ देनेका असर सबके ऊपर अच्छा ही हुआ। हिंदू-मुसलमानके लड़कोंके बीच मजहबको लेकर एक बार भी झगड़ा हुआ हो या भेद उत्पन्न हुआ हो इसकी याद मुझे नही है। इसका उलटा मै जानता हूं कि सब अपने-अपने धर्मपर दृढ रहते हुए भी एक दूसरेके प्रति पूरा आदर रखते और एक दूसरेको स्वधर्माचरणमे सहायता देते।

हम शहरसे इतनी दूर रहते थे फिर भी बीमारियोके लिए दवा-दारूका जो साधारण प्रबंध रखा जाता है वैसा कुछ भी नही रखा गया था। उन दिनों लडके-लड़कियोकी निर्दोषताके विषयमें मुझे जो श्रद्धा थी वही श्रद्धा बीमारीमे केवल प्राकृतिक उपचार करनेके विषयमे भी थी। मै सोचता था कि पहले तो सादे जीवनमे बीमारी होगी ही क्यों और हो भी गई तो हम उसका उपाय कर लेगे। मेरी आरोग्यविषयक पुस्तक मेरे प्रयोगो और मेरी उस संयमकी श्रद्धाकी नोटबुक है। मुझे यह अभिमान था कि मै तो बीमार हो ही नही सकता।

यह मानना था कि केवल पानी, मिट्टी या उपवासके प्रयोग या भोजनके अदल-बदलसे सब प्रकारके रोग दूर किये जा सकते है। फार्ममे एक भी बीमारीके मौकेपर डाक्टरका उपयोग नही किया गया। उत्तर भारतका रहनेवाला एक सत्तर बरसका बूढा था। उसको दमे और खांसीकी शिकायत थी। वह भी महज खूराकके अदल-बदल और पानीके प्रयोगसे चगा हो गया। पर ऐसे प्रयत्न करनेकी हिम्मत अब मै खो बैठा हू और खुद दो बार बीमार पडनेके बाद यह मानने लगा हू कि मैने इसका अधिकार भी खो दिया।

फार्म जब चल रहा था उसी बीच स्व० गोखले दक्षिण अफ्रीका आये थे। उनकी यात्राके वर्णनके लिए तो अलग प्रकरणकी जरूरत है। पर उसका एक कड़वा-मीठा सस्मरण यहा लिखे देता हूं। हमारा जीवन कैसा था यह तो पाठकोने जान ही लिया। फार्ममे खाट-जैसी कोई चीज नही थी; पर गोखलेजीके लिए एक माग लाये। कोई ऐसा कमरा नही था जहां उनको पूरा एकात मिले। बैठनेके लिए पाठशालाकी बेचे भर थी। ऐसी स्थितिमे भी नाजुक तबियत-वाले गोखलेजीको फार्मपर लाये बिना हमसे कैसे रहा जाता? वैसे वह भी उसे देखे बिना कैसे रह सकते थे? मेरा खयाल था कि उनका शरीर एक रातकी तकलीफ बर्दाश्त कर लेगा और वह स्टेशनसे फार्मतक डेढ मील पैदल भी आ सकते है। मैने उनसे पूछ लिया था और अपनी सरलतावश उन्होने बिना सोचे-समझे मुझपर विश्वास रखकर सारी व्यवस्था स्वीकार कर ली थी। संयोगवश उसी दिन वर्षा भी हो गई। यकायक मेरे किये प्रबंधमे कोई हेरफेर नही हो सकता था। इस अज्ञानभरे प्रेमके कारण उस दिन मैने गोखलेजीको जो कष्ट दिया वह मुझे कभी नही भूला। इतना बडा परिवर्तन उनकी प्रकृति सहन नही कर सकती थी। उन्हे ठंड लग गई।

भोजनके लिए उन्हें रसोईमे नही ले जा सकते थे। मि० केलनबेकके कमरेमें उन्हें उतारा था। वहा खाना ले जानेमे ठंडा तो हो ही जाता। उनके लिए मैं खास शोरवा बनाता। भाई कोतवाल खास चपातिया बनाते। पर वे गरम कैसे रखे जाय? ज्यों-त्यों करके निवटाया। गोखलेने मुझे एक शब्द भी नही कहा; पर उनके चेहरेसे मै समझ गया और अपनी मूर्खता भी समझ गया। जब उन्हें मालूम हुआ कि हम सभी जमीनपर सोते है तब उनके लिए जो खाट लाई गई थी उसे हटा दिया और अपना बिस्तर भी फर्शपर ही लगा लिया। यह रात मैने पश्चात्ताप करते विताई। गोखलेकी एक आदत थी जिसे मै बुरी आदत कहता। वह नौकरकी ही सेवा स्वीकार करते। ऐसी यात्राओमे नौकरको साथ न रखते। मैने और मि० केलनबेकने उनसे बहुत विनती की कि हमे पाव दबाने दीजिए; पर वह टस-से-मस न हुए। हमे अपना शरीर स्पर्शतक न करने दिया। उलटे आधी खीझ और आधी हँसीमे कहा—"जान पड़ता है कि आप सब लोगोने यही समझ लिया ह कि कष्ट भोगनेके लिए अकेले आप ही लोग जन्मे हो और हम-जैसे लोग इसीलिए पैदा हुए है कि तुम्हें कष्ट दे। अपनी अतिकी सजा आज तुम पूरी-पूरी भोग लो। मै तुम्हें अपना शरीर छूनेतक नही दूगा। तुम सब लोग निवटनेके लिए दूर जाओगे और मेरे लिए कमोड रखोगे! ऐसा क्यो? चाहे जितनी तकलीफ उठानी पड़े, मै भोग लूगा; पर तुम्हारा गर्व चूर करूगा।" यह वचन हमारे लिए वज्रसमान थे। मै और मि० केलनबेक खिन्न हुए; पर इतना ढाढस था कि उनके चेहरेपर हास्य था। अर्जुनने कृष्णको अनजानेमें बहुत कष्ट दिया होगा, पर कृष्णने क्या उसे याद रखा? गोखलेने हमारा सेवाका भाव ही याद रखा, सेवा तो करने ही नही दी। मोवासासे उन्होने मुझे जो प्रेमभरा पत्र लिखा वह मेरे हृदयपर अंकित हो गया है। उन्होने कष्ट सह लिये, पर जो

सेवा हम कर सकते थे वह अततक न करने दी। भोजन आदि हमारे हाथसे न लेते तो करते क्या ?

अगले दिन सवेरे न उन्होने खुद आराम लिया, न हमें लेने दिया। उनके सब भाषणोको जिन्हे हम पुस्तकरूपमे छपाने जा रहे थे, सुधारा। उनकी आदत थी कि कुछ भी लिखना हो तो उसका मजमून इधर-से-उधर टहलते हुए सोचते। उन्हे एक छोटा-सा पत्र लिखना था। मैंने सोचा कि उसे तो वह तुरत लिख डालेगे; पर उन्होने ऐसा नही किया। मैंने टीका की तो मुझे यह व्याख्यान सुनना पडा—"मेरा जीवन तुम क्या जानो ? मै छोटी-से-छोटी बात भी उतावलीमे नही करता। उसको सोचता हूं। उसके मध्यबिंदुको सोचता हूं; फिर विषयके अनुरूप भाषाका विचार करता हू और तब लिखता हूं। सब ऐसा करे तो कितना वक्त बच जाय ? और समाज भी आज जो अध-कचरे विचार उसे मिले रहे हैं उनके भारसे बच जाय।"

जैसे गोखलेके आगमनके वर्णनके बिना टाल्स्टाय फार्म-के संस्मरण अधूरे माने जायंगे वैसे ही मि० केलनबेककी रहन-सहनके विषयमें भी यही बात कही जा सकती है। इस निर्मल पुरुषका परिचय मै पहले करा चुका हू। मि० केलनबेकका टाल्स्टाय फार्ममे, हम लोगोके बीचमे हम-जैसे ही होकर रहना यही अचरजकी बात थी। गोखले सामान्य बातोंसे आकृष्ट होने-वाले आदमी नही थे; पर केलनबेकके जीवनके महान परिवर्तन-से वह भी अतिशय आकृष्ट हुए थे। केलनबेकने कभी दुनियाकी सर्दी-गर्मी न सही थी, एक भी तकलीफ या अडचन न उठाई थी। असयम उनका धर्म हो गया था। ससारके सुख भोगनेमें उन्होने कोई कसर नही रखी थी। पैसेसे जो चीज मिल सकती थी अपने सुखके लिए उसे प्राप्त करनेमें उन्होने कभी आगा-पीछा न किया था।

ऐसे आदमीका टाल्स्टाय फार्ममें रहना, सोना-बैठना,

खाना-पीना और फार्मवासियोंके साथ घुल-मिल जाना ऐसी-वैसी बात नही थी। हम लोगोंको यह देखकर आनंदजनक आश्चर्य हुआ। कुछ गोरोंने मि० केलनबेकको मूर्ख या पागल समझ लिया। दूसरे कितनोंके दिलमे उनकी त्यागशक्तिको देखकर उनके लिए इज्जत बढी। केलनबेकने अपने त्यागको कभी दुःखरूप न माना। जितना आनंद उन्होने सुखोंके भोगमे पाया था उससे अधिक उनके त्यागमे पाया। सारी जिंदगीके सुखका वर्णन करते हुए वह तल्लीन हो जाते और क्षणभरके लिए तो सुननेवालेको भी वह सुख भोगनेकी इच्छा हो जाती। छोटे-बड़े सबके साथ वह इतने प्रेमसे हिल-मिल जाते कि उनका अल्प वियोग भी सबको खले बिना न रहता। उन्हे फलवाले पेड़ोंका बडा शौक था। इससे मालीका काम उन्होंने अपने ही लिए रख छोडा था। रोज सवेरे बच्चों और बडोसे भी सीचने-संवारनेका काम कराते। वह इतने हँसमुख और स्वभावके इतने आनन्दमय थे कि मशक्कत पूरी कराते, फिर भी उनके साथ काम करना सबको रुचता। जब-कभी रातके दो बजे उठकर टाल्स्टाय फार्मसे जोहान्सबर्गसे जाने वाले निकलते तो मि० केलनबेक इस टोलीमें जरूर होते।

इनके साथ धार्मिक संवाद सदा हुआ करता था। मेरे पास अहिंसा, सत्य इत्यादि यामोको छोडकर दूसरी बात हो ही क्या सकती थी? सर्पादिक मारनेमे भी पाप है, मेरी इस बातसे जैसे मेरे अनेक दूसरे यूरोपियन मित्र पहले चौंके थे वैसे ही मि० केलन-बेकको भी धक्का लगा; पर पीछे तात्त्विक दृष्टिसे उन्होने यह सिद्धांत स्वीकार कर लिया। हमारे सबधके आरंभमें ही उन्होंने यह बात मान ली थी कि बुद्धि जिस वस्तुको स्वीकार कर ले उसका आचरण करना उचित और धर्म है। इसीमे वह अपने जीवनमे इतने महत्त्वके परिवर्तन एक क्षणमे बिना किसी हिचक-के कर सके थे। अब अगर सर्पादिका मारना अनुचित है तो

मि० केलनबेकको इच्छा हुई कि उनकी मित्रता संपादन करें। पहले तो उन्होंने ऐसी पुस्तकें इकट्ठी की जिनसे भिन्न-भिन्न जातिके सर्पोंकी पहचान हो सके। उनमें उन्होंने देखा कि सभी साप जहरीले नही होते। कुछ तो खेतोकी फसलकी रक्षा करनेवाले होते है। हम सबने सापोको पहचानना सीख लिया और अतमे एक विशाल अजगरको, जो फार्ममे ही मिल गया था, पाल लिया। उसको सदा अपने ही हाथसे खाना देते। मैंने नरमीसे उनके साथ यह दलील की—"यद्यपि आपका भाव शुद्ध है फिर भी अजगर तो उसको पहचाननेसे रहा, क्योंकि आपकी प्रीतिके साथ भय मिला हुआ है। उसको खुला रखकर उसके साथ खेलनेकी हिम्मत तो न आपकी है, न मेरी और ऐसी हिम्मत ही वह चीज है जिसे हम अपने अदर पैदा करना चाहते है। इसलिए इस सर्पको पालनेमे मै सद्भाव तो देखता हू; पर उसमे अहिसा नही देखता। हमारा व्यवहार तो ऐसा होना चाहिए कि अजगर उसे पहचान सके। प्राणिमात्र भय और प्रीतिको पहचानते है, यह तो हमारा रोजका अनुभव है। फिर इस सांपको आप जहरीला तो मानते ही नही। इसके तौर-तरीके, इसकी आदते आदि जाननेके लिए ही उसे कैद कर रखा है। यह एक प्रकारकी विलासिता हुई। मित्रतामे इसके लिए भी स्थान नही है।"

मि० केलनबेकको यह दलील जंची, पर उस अजगरको तुरत छोड देनेकी उनकी इच्छा नही हुई। मैंने किसी तरहका दबाव नही डाला। सर्पके व्यवहारमे मै भी रस लेने लगा था और बच्चोको तो उसमे अतिशय आनद मिल रहा था, उसको तग करनेकी सभीको मनाही थी; पर इस कैदीने अपना रास्ता खुद निकाल लिया। पिंजडेका दरवाजा खुला रह गया हो या उसी ने युक्तिसे खोल लिया हो, चाहे जो कारण हो, दो-चार दिनके अदर ही एक दिन सवेरे मि० केलनबेक अपने कैदी मित्रसे

मिलने गये तो देखते हैं कि उसका पिंजडा खाली है। वह खुश हुए, मैं भी हुआ; पर इस प्रयोगके फलस्वरूप सर्प हमारी बातचीतका स्थायी विषय हो गया था।

मि० केलनबेक एक गरीब जर्मनको फार्मपर लाये थे। वह गरीब तो था ही, अपंग भी था। उसका कूबड़ इतना निकल आया था कि लकड़ीके सहारेके बिना चल ही नही सकता। उसकी हिम्मतकी हद नही थी। शिक्षित होनेसे सूक्ष्म बातोंमें बहुत रस लेता था। फार्ममें वह भी हिंदुस्तानियों-जैसा ही होकर सबके साथ हिल-मिलकर रहता था। उसने निर्भय होकर सांपोंके साथ खेलना शुरू किया। छोटे सांपोंको तो हाथमें पकडकर ले आता और हथेलीपर रखकर खिलाता भी। फार्म लंबे अरसेतक चलता तो इस जर्मनके, जिसका नाम ऑल्ब्रेस्ट था, प्रयोगका फल क्या होता, यह तो ईश्वर ही जाने।

इन प्रयोगोके फलस्वरूप यद्यपि हमारे मनमे सांपोका डर घट गया था; पर कोई यह न समझ ले कि फार्ममें कोई सांपसे डरता ही नही था या सर्पादिको मारनेकी सभीको मनाही थी। अमुक वस्तुमें हिंसा है या पाप है, यह मान लेना एक बात है और तदनुसार आचरण करनेकी शक्ति होना दूसरी बात है। जिसके मनमें सांपका डर बना हो और जो स्वयं प्राण त्याग करनेको तैयार न हो वह संकटमें पडनेपर सांपको छोड़नेवाला नही। फार्ममें ऐसी एक घटना हुई थी जो मुझे याद है। पाठकोंने यह तो समझ ही लिया होगा कि वहां सांपोंका उपद्रव काफी था। हम जब इस फार्ममें गये तब वहां आदमियोंकी बस्ती बिलकुल ही नही थी और कुछ अरसेसे योंही निर्जन पड़ा था। एक दिन मि० केलनबेकके ही कमरेमें सांप दिखाई दिया और ऐसी जगह जहांसे उसे भगाना या पकड़ लेना नामुमकिन-सा था। फार्मके एक विद्यार्थीने उसको देखा। उसने

मुझे बुलाया और पूछा कि अब क्या करना चाहिए। उसने उसे मारनेकी इजाजत मागी। इस अनुमतिके विना वह सापको मार सकता था; पर आम तौरसे विद्यार्थी या दूसरे लोग भी मुझसे पूछे विना ऐसे काम नही करते थे। मारनेकी इजाजत दे देना मुझे अपना धर्म दिखाई दिया और मैंने इजाजत दे दी। यह बात लिखते समय भी मुझे ऐसा नही जान पडता कि यह इजाजत देनेमें मैंने कोई गलती की। सापको हाथसे पकड लेने या फार्मवासियोको और किसी तरह भयमुक्त कर देनेकी मुझमें शक्ति न थी और आज भी उसे उत्पन्न नही कर सकता हू।

फार्ममें सत्याग्रहियोका ज्वारभाटा आया करता था, यह बात तो पाठक आसानीसे समझ सकते है। कोई सत्याग्रही जेल जानेवाला होता तो कोई-न-कोई उससे छूटकर आया होता। छूटकर आनेवालोमें दो ऐसे आये जिन्हे मजिस्ट्रेटने जाती मुचलकेपर छोडा था और जिन्हे सजा सुननेके लिए अगले दिन अदालतमे हाजिर होना था। वे बैठे बाते कर रहे थे। इतनेमे उनके लिए जो आखिरी ट्रेन थी उसका वक्त हो गया और वे उसे पा सकेंगे या नही, यह सदिग्ध हो गया। दोनों जवान थे और अच्छे कसरती थे। वे और हममेंसे भी कुछ लोग जो उन्हें विदा करने जानेवाले थे, दौडे। रास्तेमे ही मैंने ट्रेनके आनेकी सीटी सुनी। ट्रेन छूटनेकी सीटी हुई तब हम स्टेशनकी बाहरी हदतक पहुच पाये थे। वे दोनो भाई तो अधिकाधिक तेज दौडते जा रहे थे। मै पीछे छूट गया। ट्रेन चल दी। दोनों युवको को दौडते देख स्टेशनमास्टरने चलती ट्रेन रोक दी और उनको बैठा लिया। मैंने स्टेशन पहुचकर स्टेशनमास्टरके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। इस घटनाका वर्णन करनेमें मैंने दो बाते जतायी है : एक तो यह कि सत्याग्रहियोंको जेल जाने और प्रतिज्ञा का पालन करनेकी कितनी उत्सुकता होती थी। दूसरी

यह कि स्थानीय कर्मचारियोंके साथ उन्होंने कैसा मधुर संबंध जोड लिया था। ये युवक उस ट्रेनको न पकड़ सके होते तो अगले दिन अदालतमें हाजिर न हो पाते। उनका कोई दूसरा जामिन नहीं था। न उनसे रुपये-पैसेकी ही जमानत ली गई थी। वे महज अपनी भलमनसीके विश्वासपर छोड़े गये थे। सत्याग्रहियोंकी साख इतनी हो गई थी कि उनके खुद जेल जानेसे आतुर होनेके कारण मजिस्ट्रेट उनसे जमानत लेनेकी जरूरत नही समझते थे। इस कारण इन युवक सत्याग्रहियोंको ट्रेन छूट जानेके डरमे भारी खेद हुआ था। अतः वे वायुवेगसे दौड़े। सत्याग्रहके आरभमें अधिकारियोकी ओरसे सत्याग्रहियोको कुछ कष्ट दिये गये थे, यह बात कही जा सकती है। यह भी कह सकते है कि कही-कही जेलके अफसर-अहलकार बहुत ज्यादा सख्त थे; पर लड़ाई ज्यो-ज्यों आगे बढती गई हमने कुल मिलाकर देखा कि अहलकार पहलेसे कम कड़वे हो गये और कुछ तो मीठे भी हो गये और जहा उनके साथ लबा साबका पड़ा वहां इस स्टेशनमास्टरकी तरह हमारी मदद भी करने लगे। कोई पाठक इससे यह न सोचें कि सत्याग्रहियोंने अहलकारोको किसी तरह घूस देकर उनसे सुभीते प्राप्त किये। ऐसे अयोग्य सुभीते प्राप्त करनेकी बात उन्होने कभी सोची ही नही; पर सभ्यताके सुभीते लेनेका हौसला किसको न होगा? और वैसे सुभीते सत्याग्रहियोको कितनी ही जगह मिल सकते थे। स्टेशनमास्टर प्रतिकूल हो तो नियमोकी सीमामें रहते हुए भी मुसाफिरको कितनी ही तरहसे हैरान कर सकता है। ऐसी हैरानियोंके खिलाफ आप कोई शिकायत—फरियाद भी नही कर सकते। और वह अनुकूल हो तो कायदेके अदर रहकर भी आपको बहुतसे सुभीते दे सकता है। ऐसी सब सहूलियतें हम फार्मके पासके स्टेशन लौलेके स्टेशनमास्टरसे पा सके थे और इसका कारण था सत्याग्रहियोका सौजन्य, उनका धैर्य और कष्ट-सहन करनेकी उनकी शक्ति।

एक अप्रस्तुत प्रसंगकी चर्चा यहां कर देना संभवतः अनुचित न माना जायगा। मुझे भोजनके सुधार और प्रयोग धार्मिक, आर्थिक और आरोग्यकी दृष्टिसे करनेका शौक लगभग ३५ वरससे रहा है। यह शौक आज भी मंद नहीं पड़ा है। मेरे प्रयोगोंका असर मेरे आसपासवालोंपर तो पड़ता ही है। इन प्रयोगोंके साथ दवाकी मदद लिये विना प्राकृतिक—जैसे पानी और मिट्टीके—उपचारोंसे रोग मिटानेके प्रयोग भी मैं करता था। जब वकालत करता था उन दिनों मवक्किलोंके साथ मेरा संबंध कौटुंबिक-जैसा हो जाता। इससे वे मुझे अपने सुख-दुःखमें साथी बनाते। कुछ आरोग्यविषयक मेरे प्रयोगोंसे परिचित हो जानेके बाद उस विषयमें मेरी सहायता लेते। ऐसी सहायता लेनेवाले कभी-कभी टल्स्टाय फार्मपर भी चढ़ आते। यों आनेवालोंमें लुटावन नामका एक बूढ़ा था जो उत्तर भारतका रहनेवाला था और पहले गिरमिटमें दक्षिण अफ्रीका आया था। उसकी उम्र ७०के पार होगी। उसे पुराने दमे और खांसीकी बीमारी थी। वैद्योंके चूर्ण और डाक्टरोंके मिक्सचर काफी आजमा चुका था। उन दिनों अपने उपचारोंके विषयोंमें मेरे विश्वासकी भी कोई सीमा नहीं थी। मैंने कहा कि तुम मेरी सभी शर्तोंका पालन करो और फार्ममें रहो तो मैं तुमपर अपने प्रयोगोंकी परीक्षा कर सकता हूं। यह तो कैसे कह सकता हूं कि मैंने उसका इलाज करना कबूल किया। लुटावनने मेरी शर्तें मंजूर कर ली। उसको तबाकू पीनेका भारी व्यसन था। उससे जो शर्तें कबूल कराई गई थीं उनमें एक तबाकू छोड़ देनेकी भी थी। लुटावनको मैंने एक दिनका उपवास कराया। रोज १२ बजे धूपमें कूने बाथ देना शुरू किया। उस वक्त मौसम ऐसा था कि धूपमें बैठा जा सके। भोजनमें थोड़ा भात, थोड़ा जैतूनका तेल, शहद और शहदके साथ कभी खीर और मीठी नारंगी और कभी अंगूर

और भुने गेहूंका कहवा देता । नमक-मसाला बिलकुल बंद था। जिस मकानमे मैं सोता, उसीमें भीतरके हिस्सेमे लुटावनका भी बिस्तर लगता था । बिस्तरमें सबको दो कंबल मिलते थे—एक बिछानेके लिए दूसरा ओढनेके लिए। और एक काठका तकिया होता था। एक अठवारा बीता। लुटावनके शरीरमे तेज आया। दमा घटा, खासी भी घटी। पर रातमे दमा और खासी दोनों उठते। मेरा शक तबाकू-पर गया। मैंने उससे पूछा। लुटावनने कहा—"मै नही पीता।" एक-दो दिन और गये। फिर भी फर्क न पडा तो मैंने छिपे तौरपर लुटावनपर निगाह रखनेका निश्चय किया। सभी जमीनपर सोते थे। सर्पादिका भय तो था ही, इसलिए मि० केलनबेकने मुझे बिजलीकी चोरबत्ती (टार्च) दे रखी थी और खुद भी एक रखते थे। इस बत्तीको मैं पास रखकर सोता। एक रात मैंने तै किया कि बिस्तरपर पडा-पडा जागता रहूगा। दरवाजेके बाहर बरामदेमे मेरा बिस्तर था और दरवाजेके भीतर बगलमें ही लुटावनका लगा था। आधी रातको लुटावनको खांसी आई। उसने दिया-सलाई जलाई और बीडी पीना शुरू किया। मै धीरेसे जाकर उसके बिस्तरके पास खडा हो गया और बत्तीका बटन दबा दिया। लुटावन घबराया, सब समझ गया । बीडी बुझा दी और मेरे पाव पकड़ लिए। "मैंने भारी कसूर किया। अब मैं कभी तंबाकू न पीऊगा। आपको मैंने धोखा दिया। मुझको आप माफ करें।" यह कहते-कहते लुटावनका गला भर आया। मैंने उसको तसल्ली दी और कहा कि बीड़ी न पीनेमे तुम्हारा हित है । मेरे हिसाबसे खासी अबतक चली जानी चाहिए थी। वह नही गई, इसलिए मुझे शक हुआ। लुटावनकी बीडी गई और उसके साथ दो या तीन दिनमे खासी और दमा ढीले पड़े, और एक महीनेमे दोनों

चले गये। लुटावनमे खूब तेज-शक्ति-उत्साह आ गया और उसने हमसे विदा मांगी।

स्टेशनमास्टरका बेटा, जो दो सालका रहा होगा, टाइफाइड ज्वरसे पीड़ित हुआ। उन्हे मेरे उपचारोका पता था ही। मुझसे सलाह ली। उस बच्चेको दो दिन तो मैने कुछ भी खानेको नही दिया। तीसरे दिनसे आधा केला, खूब मसला हुआ और उसमें एक चम्मच जैतूनका तेल और दो-चार बूद नीबूका रस डालकर देने लगा। इसके सिवा और सब खुराक बंद। रातमे उसके पेटपर मिट्टीकी पट्टी बाधता। यह बच्चा भी चंगा हो गया। हो सकता है कि डाक्टरका निदान गलत रहा हो और उसका बुखार टाइफाइड (मियादी) न रहा हो।

ऐसे बहुतेरे प्रयोग मैने फार्ममे किये। उनमेसे एकमें भी विफल होनेकी बात मुझे याद नही है; पर आज वही उपचार करनेकी मेरी हिम्मत नही होती। टाइफाइडके रोगीको जैतूनका तेल और केला देते तो मुझे कपकंपी होने लगेगी। १९१८ मे हिंदुस्तानमे मुझे आवकी बीमारी हुई और उसीका इलाज मेरे किये न हो सका और मुझे आजतक इसका पता नही कि जो उपचार दक्षिण अफ्रीकामे सफल होते थे वही उपचार हिंदुस्तानमें उसी अंशमे सफल नही होते इसका कारण मेरे आत्मविश्वासका घट जाना है या यहकि यहांकी जलवायु उन उपचारोके पूरी तरह अनुकूल नही? मैं इतना जानता हू कि इन घरेलू इलाजो और टाल्सटाय फार्ममें रखी गई सादी जिंदगीसे कौमके कुछ नहीं तो भी दो-तीन लाख रुपये बच गये। रहनेवालोमें कौटुबिक भावना उत्पन्न हुई। सत्याग्रहियोको शुद्ध आश्रय-स्थान मिला। बेईमानी और मक्कारीके लिए अवकाश न रहा, मूग और ककड़ी अलग-अलग हो गईं।

ऊपरकी घटनाओंमें वर्णित आहारके प्रयोग आरोग्यकी दृष्टिसे किये गये; पर इस फार्मके अंदर ही मैंने अपने ऊपर एक अतिशय महत्त्वका प्रयोग किया, जो शुद्ध आध्यात्मिक दृष्टिसे था।

निरामिषभोजीकी हैसियतसे हमें दूध लेनेका अधिकार है या नहीं, इस विषयपर मैंने खूब विचार किया था, खूब पढ़ा भी था, पर फार्ममें रहनेके दिनोंमें कोई पुस्तक या अखबार मेरे हाथमें पड़ा जिसमें मैंने देखा कि कलकत्तेमें गाय-भैंसोंका दूध निचोड़कर निकाल लिया जाता है। उस लेखमें फूकेकी निर्दयताभरी और भयानक क्रियाका भी वर्णन था। एक बार मि० केलनबेकके साथ दूध लेनेकी आवश्यकताके बारेमें बात-चीत हो रही थी। उस सिलसिलेमें मैंने इस क्रियाकी बात भी कही। दूधके त्यागके दूसरे अनेक आध्यात्मिक लाभ भी मैंने बताये और कहा कि दूध छोड़ा जा सकता हो तो अच्छा है। मि० केलनबेक अत्यन्त साहसी थे, इसलिए दुग्ध-त्यागके प्रयोगके लिए तुरत तैयार हो गये। उन्हें मेरी बात बहुत पसंद आई। उसी दिन हम दोनोंने दूध त्याग दिया और अंतमें हम केवल सूखे और ताजे फलोंपर रहने लगे। आगपर पकाई हुई हर तरहकी खुराक त्याग दी। इस प्रयोगका अंत क्या हुआ, इसका इतिहास देनेका यह स्थान नहीं है। पर इतना तो कह ही दूं कि मैं केवल फल खाकर पांच बरस रहा। इससे न मैंने कोई कमजोरी अनुभव की और न मुझे किसी प्रकारकी व्याधि हुई। इस कालमें मुझमें शारी-रिक काम करनेकी पूरी शक्ति थी, यहांतक कि एक दिन-में मैं पैदल ५५ मीलकी यात्रा कर सकता था। दिनभरमें ४० मीलकी मंजिल कर लेना तो मामूली बात थी। मेरा दृढ़ विश्वास है कि इस प्रयोगके आध्यात्मिक परिणाम बड़े सुंदर हुए। इस प्रयोगको अंशतः त्याग देना पड़ा, इसका दुःख

मुझे सदा रहा है और मैं राजनैतिक काम-काजके झमेले-में जिस हदतक उलझ गया हूं उससे छुटकारा पा सकूं तो इस उम्रमें और शरीरके लिए जोखिम लेकर भी इसके आध्यात्मिक फलके परीक्षणके लिए फिरसे यह प्रयोग कर देखूं। डाक्टरों-वैद्योंमें आध्यात्मिक दृष्टिका अभाव होना भी हमारे मार्गमें विघ्नकारक हो गया है।

पर अब इन मधुर और महत्त्वके संस्मरणोंकी समाप्ति करनी होगी। ऐसे कठिन प्रयोग आत्मशुद्धिके संग्रामके अंदर ही किये जा सकते हैं। आखिरी लडाईके लिए टाल्सटाय फार्म आध्यात्मिक शुद्धि और तपश्चर्याका स्थान सिद्ध हुआ। इसमें मुझे पूरा संदेह है कि ऐसा स्थान न मिला होता या प्राप्त किया गया होता तो आठ बरसतक हमारी लडाई चल सकी होती या नहीं, हमें अधिक पैसा मिल सका होता या नहीं और अंतमें जो हजारों आदमी लडाईमें शामिल हुए वे शामिल होते या नहीं। टाल्सटाय फार्मका ढोल पीटनेका नियम हमने नहीं रखा था। फिर भी जो वस्तु दयाकी पात्र नहीं थी उसने लोगोंके दयाभाव, सहानुभूतिको जाग्रत किया। उन्होंने देखा कि हम खुद जो बात करनेको तैयार नहीं हैं और जिसे कष्ट-रूप मानते हैं, फार्मवासी उस बातको कर रहे हैं। उनका यह विश्वास, १९१३ में जो फिरसे बडे पैमानेपर लडाई शुरू हुई, उसके लिए बडी पूंजीरूप हो गया। इस पूंजीके मुआविजेका हिसाब नहीं हो सकता। मुआवजा कब मिलता है, यह भी कोई नहीं कह सकता। पर मिलता है इस विषयमें मुझे तो तनिक भी शंका नहीं और मेरा कहना है कि किसीको भी शंका नहीं करनी चाहिए।

: १२ :

गोखलेकी यात्रा—१

इस तरह टाल्स्टाय फार्ममे सत्याग्रही अपनी जिदगी विता रहे थे और जो कुछ उनके नसीवमे लिखा था उसके लिए तैयार हो रहे थे। युद्ध कव समाप्त होगा इसका न उन्हे पता था, न चिंता थी। उनकी प्रतिज्ञा एक ही थी : खूनी कानूनके सामने सिर न झुकायगे और ऐसा करते हुए जो कष्ट सिरपर आयगे उन्हे सह लेगे। सिपाहीके लिए लडना ही जीत है; क्योकि इसमे ही वह सुख मानता है और चूकि लडना अपने हाथमे होता है इसलिए वह मानता है कि हार-जीत या सुख-दु ख खुद मुझपर ही अवलवित है। या यो कह सकते है कि पराजय-जैसी चीज उसके शब्दकोपमे होती ही नही। गीताके शब्दोमे कहे तो उसके लिए सुख-दु.ख, हार-जीत समान है।

इक्के-दुक्के सत्याग्रही जेल जाया करते थे। जव इसका मौका न हो तव फार्मके वाहरी कामोको देखकर कोई यह नही सोच सकता था कि इसमे सत्याग्रही रहते होगे और वे लडाईकी तैयारी कर रहे होगे। फिर भी कोई नास्तिक वहां आ जाता तो वह मित्र होता तो हमपर तरस खाता और आलोचक होता तो हमारी निंदा करता। कहता—"आलस सवार हो गया है। इसीसे जगलमे पड़े-पडे रोटियां खा रहे है। जेलसे हार गये है, इसलिए सुदर फलोद्यानमे वसकर नियमित जीवन विता और शहरके झझटोसे दूर रहकर सुख भोग रहे है।" ऐसे आलोचकको कैसे समझाया जाय कि सत्याग्रही अयोग्य रीतिसे नीतिको भग करके जेल जा ही नही सकता? उसे कौन समझाये कि सत्याग्रहीकी शातिमे, उसके सयममे

ही लडाईकी तैयारी होती है ? उससे कौन कहे कि सत्याग्रही मनुष्यकी सहायताका खयालतक दिलसे निकाल देता है, केवल भगवानका भरोसा रखता है। परिणाम यह हुआ कि जिन्हें किसीने न सोचा था ऐसे सयोग आ उपस्थित हुए या भगवानने भेज दिये। ऐसी सहायता भी मिली जिसकी आशा हम नही रखते थे। हमारी परीक्षा भी अचानक, जब वह हमारी कल्पनासे कोसों दूर थी, आ पहुंची और अंतमें ऐसी बाह्य विजय भी मिली, जिसको दुनिया समझ सके।

मै अरसेसे गोखले और दूसरे नेताओसे प्रार्थना करता आ रहा था कि दक्षिण अफ्रीका आकर भारतीयोकी स्थितिको देखें। पर कोई आयेगे या नही इस विषयमें मुझे पूरा संदेह था। मि० रिच किसी भी नेताको भेजनेकी कोशिश कर रहे थे; पर जब लडाई बिलकुल ही मंद पड गई हो वैसे वक्तमे आनेकी हिम्मत कौन करता? १९११ मे गोखले विलायतमे थे। उन्होने दक्षिण अफ्रीकाके संग्रामका अध्ययन तो किया ही था। बड़ी कौंसिलमें बहस भी की थी और गिरमिटियोका नेटाल भेजना बद कर देनेका प्रस्ताव भी पेश किया था (२५ फरवरी १९१०), जो पास हुआ। उनके साथ मेरा पत्र-व्यवहार बराबर चल ही रहा था। भारतमन्त्रीके साथ वह मशविरा भी कर रहे थे और उन्हे यह जता दिया गया था कि वह दक्षिण अफ्रीका जाकर पूरे मसलेको समझना चाहते हैं। भारतमन्त्रीने उनके इरादेको पसद किया था। गोखलेने मुझे छ: हफ्तेके दौरेकी योजना बनानेको लिख भेजा और दक्षिण अफ्रीकासे विदा होनेकी आखिरी तारीख भी लिख दी। हमारे हर्षका तो पार ही न रहा। किसी भी भारतीय नेताने अबतक दक्षिण अफ्रीकाकी यात्रा नही की थी। दक्षिण अफ्रीकाकी बात तो क्या, हिंदुस्तानके बाहरके एक भी देश या उपनिवेशमें प्रवासी

भारतियोकी हालत समझनेके उद्देश्यसे कोई नही गया था। इससे हम सभी गोखले-जैसे महान् नेताके आगमनके महत्त्वको समझ सके और निश्चय किया कि उनका ऐसा स्वागत-सम्मान किया जाय जैसा कभी किसी बादशाहका भी न हुआ हो। दक्षिण अफ्रीकाके मुख्य-मुख्य नगरोमे उनको ले जानेकी बात भी तै की गई। सत्याग्रही और दूसरे हिंदुस्तानी स्वागतकी तैयारीमे खुशीसे शरीक हुए। इस स्वागतमे शामिल होनेके लिए गोरोको भी निमंत्रण दिया गया और लगभग सभी जगह वे उसमे सम्मिलित हुए। हमने यह भी तै किया कि जहा-जहां सार्वजनिक सभा की जाय वहा-वहा उस नगरका मेयर स्वीकार करे तो आमतौरसे उसीको सभापतिके आसनपर बिठाया जाय और जहा-जहा मिल सके वहा-वहां टाउनहालमें ही सभा की जाय। रेलवे विभागकी इजाजत लेकर रास्ते-के बडे-बड़े स्टेशनोंको सजानेका भार भी अपने ऊपर लिया और अधिकांश स्टेशनोके सजानेकी इजाजत भी हासिल कर ली। आमतौरसे ऐसी इजाजत नही दी जाती। स्वागतकी हमारी जबर्दस्त तैयारीका असर अधिकारियोंपर हुआ और उसमे जितनी हमदर्दी वह दिखा सके उतनी दिखाई। मिसालके लिए जोहान्सबर्गमे वहांके स्टेशनको सजानेमें ही हमे कोई १५ दिन लग गये होगें; क्योंकि वहां हमने एक सुदर चित्रित तोरण बनाया था, जिसका नकशा मि० केलनबेकने तैयार किया था।

दक्षिण अफ्रीका कैसा देश है इसका अंदाजा गोखलेको विला-यतमे ही हो गया था। भारतमंत्रीने दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारको गोखलेके रुतबे, साम्राज्यमे उनके स्थान इत्यादिकी सूचना दे दी थी; पर स्टीमर कंपनीसे टिकट ले रखने या अच्छा केबिन (कमरा) रिजर्व करा रखनेकी बात किसीको कैसे सूझ सकती? गोखलेकी तबीयत नाजुक तो रहती ही थी।

अतः उन्हें जहाजपर अच्छा केबिन चाहिए था। एकान्त भी जरूरी था। स्टीमर कंपनीके यहांसे दो टूक जवाब मिला कि ऐसा केबिन हमारे यहां है ही नहीं। मुझे ठीक याद नहीं कि गोखलेने खुद या उनके किसी मित्रने इंडिया आफिस (भारतमन्त्रीके दफ्तर) को इसकी खबर दी। कंपनीके डाइरेक्टरको इंडिया आफिसकी ओरसे पत्र लिखा गया और जहां कोई था ही नहीं वहां गोखलेके लिए अच्छे-से-अच्छा केबिन हाजिर हो गया। इस प्रारंभिक कड़वाहटका फल मीठा रहा। स्टीमरके कप्तानको भी गोखलेका सुंदर स्वागत करनेकी हिदायत कर दी गई। इससे गोखलेके इस सफरके दिन आनंद और शांतिमें बीते। वह जितने गंभीर थे उतने ही आनंदी और विनोदी भी थे। जहाजपर होनेवाले खेलों आदिमें वह अच्छी तरह शामिल होते और इससे जहाजके यात्रियोंमें खूब लोकप्रिय हो गये थे। यूनियन सरकारने गोखलेसे उसके मेहमान होने और रेलवेका सरकारी सेलून स्वीकार करनेका अनुरोध किया था। मुझसे मशविरा कर लेनेके बाद सेलून और प्रिटोरियामें सरकारका आतिथ्य स्वीकार कर लेनेका निश्चय किया।

गोखले केप टाउन बंदरगाहमें जहाजसे उतरनेवाले थे। १९१२ की २२ वीं अक्तूबरको वह जहाजसे उतरे। उनका स्वास्थ्य जितना मैं सोचता था उससे कहीं ज्यादा नाजुक था। वह एक खास खूराक ही ले सकते थे। अधिक श्रम भी सहन नहीं हो सकता था। जो कार्यक्रम मैंने बनाया था वह उनसे नहीं चल सकता था। जितना अदल-बदल हो सकता था उतना किया। वह बदला ही न जा सके तो स्वास्थ्यकी जोखिम उठाकर भी वह सारा कार्यक्रम कायम रखनेको तैयार हो गये। उनसे पूछे बिना कठिन कार्यक्रम बना डालनेमें मैंने जो मूर्खता की उसका मुझे बहुत पछतावा हुआ। कुछ

रद्दोबदल तो मैंने किया, पर अधिकांश कार्यक्रम तो ज्यो-का-त्यो कायम रखना ही पडा। गोखलेको अधिक एकान्त मिलना आवश्यक था, यह मै नही समझ सका था। ऐसा एकान्त दिलानेमे मुझे अधिक-से-अधिक कठिनाई पडी। पर सत्यके खातिर मुझे नम्रतापूर्वक इतना तो कहना ही होगा कि रोगियो और बडोकी सेवा करनेका मुझे अभ्यास और शौक था, इससे अपनी मूर्खता जान लेनेके बाद मै प्रबधमे इतना सुधार कर सका कि उन्हे यथेष्ट एकान्त और शाति मिल सके। सारे दौरेमे उनके मत्रीका काम मैने ही किया। स्वयं-सेवक ऐसे थे कि उन्हे अधेरी रातमे भी जाकर जवाब ला दे। अत सेवकोके प्रमादसे उन्हे कभी कोई कठिनाई हुई हो, इसकी मुझे याद नही। मि० केलनबेक भी इन स्वयसेवकोमे थे।

केप टाउनमे अच्छी-से-अच्छी सभा होनी चाहिए, यह तो स्पष्ट ही था। श्राइनर-कुटुबके बारेमे मै प्रथम खडमे लिख चुका हू। उसके मुखिया सिनेटर डब्ल्यू० पी० श्राइनरसे इस सभाका सभापतित्व स्वीकार करनेकी प्रार्थना की और उन्होने उसे स्वीकार कर लिया। विशाल सभा हुई। हिदुस्तानी और यूरोपियन बडी सख्यामे उपस्थित हुए। मि० श्राइनरने मधुर शब्दोमे गोखलेका स्वागत किया और दक्षिण अफ्रीकाके हिदुस्तानियोके साथ अपनी हमदर्दी जाहिर की। गोखलेका भाषण छोटा, परिपक्व विचारोसे भरा हुआ, दृढ पर विनययुक्त था। उससे भारतीय प्रसन्न हुए और गोरोका मन गोखलेने हर लिया। अत यह कह सकते है कि गोखलेने जिस दिन दक्षिण अफ्रीकाकी धरतीपर कदम रखा उसी दिन वहाकी पचरगी जनताके हृदयोमे प्रवेश कर गये।

केप टाउनसे जोहान्सबर्ग जाना था। रेलका दो दिनका सफर था। युद्धका कुरुक्षेत्र ट्रांसवाल था। केप टाउनसे आते हुए ट्रासवालका पहला बडा सरहदी स्टेशन क्लर्कस-

डार्प पड़ता। वहा हिंदुस्तानियोकी आवादी भी खासी थी। इससे वहा और जोहान्स्वर्ग पहुचनेसे पहले रास्तेमे पडनेवाले ऐसे ही दो और नगरोमे भी गोखलेको रोकने और सभामे उपस्थित होनेका कार्यक्रम बनाया गया था। इससे क्लर्कस्डॉर्पसे स्पेशल ट्रेनकी व्यवस्था कराई गई। तीनों जगह उन नगरोके मेयरोने सभापतिका आसन ग्रहण किया। कही भी एक घटेसे अधिक समय नही दिया गया। जोहान्स्वर्ग ट्रेन ठीक वक्तपर पहुची, एक मिनटका भी फर्क नही पडा। स्टेशनपर वढिया कालीन आदि बिछाये गये थे। एक मच भी वनाया गया था। जोहान्स्बर्गके मेयर मि० एलिस और दूसरे यूरोपियन उपस्थित थे। मि० एलिसने अपनी मोटर इसके लिये पेश की कि गोखले जबतक जोहान्स्बर्गमे रहे तबतक उनकी सवारीमे रहे। गोखलेको मानपत्र स्टेशनपर ही भेट किया गया। मानपत्र तो उन्हे हर जगह ही मिलता। जोहान्स्बर्गका मानपत्र वहीकी खानसे निकले हुए सोनेकी हृदयाकार तख्तीपर खुदा हुआ था जो दक्षिण अफ्रीकाकी बढ़िया लकडी (रोडेशियाकी टीक) पर जडी हुई थी। इस लकड़ीपर ताजमहल और हिंदुस्तानके कुछ दृश्योके चित्र बड़ी खूबसूरतीसे खोदे गये थे। गोखलेका सबके साथ परिचय कराना, मानपत्र पढना, उसका जवाब देना, दूसरे मानपत्र स्वीकार करना, ये सारे काम २० मिनटके अदर ही निवटा दिये गये। मानपत्र इतना छोटा था कि उसे पढनेमे पाच मिनटसे अधिक नही लगे होगे। गोखलेके उत्तरने भी इससे ज्यादा वक्त नही लिया होगा। स्वयसेवकोका प्रवध इतना सुदर था कि पूर्व निश्चित लोगोसे अधिक एक भी आदमी प्लेटफार्मपर नही आने पाया। शोरगुल विलकुल नही था। वाहर जबर्दस्त भीड थी, फिर भी किसीके आने-जानेमे तनिक भी अडचन नही हुई।

गोखलेको ठहरानेका प्रबंध मि० केलनबेकके एक सुंदर बंगलेमे किया गया था जो जोहान्सबर्गसे पाच मीलके फासलेपर अवस्थित एक पहाड़ीकी चोटीपर बना हुआ था। वहांका दृश्य इतना सुंदर था, शांति इतनी आनददायक थी और बगलेकी बनावट सादी होते हुए भी इतनी कलामय थी कि गोखलेको यह स्थान बहुत ही पसद आया। सब लोगोसे मिलनेका प्रबध शहरमे किया गया था। इसके लिए एक खास दफ्तर किरायेपर लिया गया था। उसमें तीन कमरे थे. एक खास कमरा गोखलेके आराम करनेके लिए, दूसरा मुलाकातके लिए और तीसरा मिलनेको आनेवालोके बैठनेके लिए। नगरके कुछ विशेष व्यक्तियोसें निजी मुलाकातके लिए भी हम गोखलेको ले गये थे। प्रमुख यूरोपियनोने भी अपनी एक निजी सभा की थी जिसमे उनके दृष्टिबिदुको गोखले पूरी तरह समझ ले। इसके सिवा जोहान्सबर्गमें उनके सम्मानमे एक बडा भोज भी दिया गया जिसमे ४०० आदमियोंको निमत्रण दिया गया था। इनमें १५० के लगभग यूरोपियन होगे। भारतीयोका प्रवेश टिकटसे रखा गया था जिसकी कीमत एक गिनी रखी गई थी। इससे इस दावतका खर्च निकल आया। भोजन शुद्ध निरामिष और मद्यपान-रहित ही था। रसोई भी सारी स्वयंसेवकोने ही बनाई थी। इस सुंदर आयोजनका चित्र यहां प्रस्तुत कर सकना कठिन है। दक्षिण अफ्रीकामे हमारे भारतीय भाई हिंदू-मुसलमान छुआ-छूत नही जानते। हां, निरामिषभोजी भारतीय अपने निरा-मिषाहारकी रक्षा करते है। हिंदुस्तानियोंमें कितने ही ईसाई भी थे। वे बहुत करके गिरमिटिया मां-बापकी सतान है। उनमें-से बहुतेरे होटलोमे खाना पकाने और परसनेका धंधा करते हैं। इन भाइयोंकी मददसे ही इतने बडे भोजका प्रबध कर लेना शक्य हुआ। भोजनमें कोई पंद्रह प्रकारकी चीजे रही

होगी। दक्षिण अफ्रीकाके यूरोपियनोंके लिए यह बिलकुल नया और अचरजभरा अनुभव था। इतने अधिक हिंदुस्तानियोंके साथ एक पातमे भोजन करने बैठना, निरामिष भोजन और बिना शराबके काम चला लेना, तीनों अनुभव उनमेंसे बहुतोंके लिए नये थे। दो तो सभीके लिए नये थे।

इस सम्मेलनमें गोखलेने जो भाषण दिया वह दक्षिण अफ्रीकामें उनका सबसे बड़ा और सबसे अधिक महत्त्वका भाषण था। वह लगातार ४५ मिनट बोले। इस भाषणकी तैयारीमे उन्होंने हमारी पूरी हाजिरी ली थी। उन्होंने अपना यह जिंदगीभरका नियम बताया कि स्थानीय लोगोंके दृष्टिबिंदुकी अवगणना न हो और उसका जितना लिहाज किया जा सकता है उतना किया जाय, इसलिए मुझे यह बता देनेको कहा कि मैं अपनी दृष्टिसे उनसे क्या कहलवाना चाहता हूं। यह मुझे लिखकर देना था और इसके साथ यह शर्त थी कि अगर उनके एक वाक्य या विचारका भी वह उपयोग न करें तो मैं बुरा न मानूं। वह मजमून न ज्यादा लंबा हो न छोटा, फिर भी कोई जरूरी बात छूट न जाय। इन सारी शर्तोंका पालन करते हुए मुझे उनके लिए अपने नोट तैयार करने होते थे। यह तो कह ही दूं कि मेरी भाषाका तो उन्होंने बिलकुल ही उपयोग नहीं किया। अंग्रेजी भाषामे पारगत गोखले मेरी भाषाका कही भी उपयोग करेंगे, यह आशा मैं रखता ही क्यों? मेरे विचारोंका उन्होंने उपयोग किया, यह भी मैं नहीं कह सकता। पर उन्होंने मेरे विचारोंकी उपयोगिता स्वीकार की। इससे मैंने मनको यह समझा लिया कि उन्होंने किसी तरह मेरे विचारोंका उपयोग कर लिया होगा। पर उनकी विचारश्रेणी ऐसी थी कि उन्होंने उसमें अपने विचारको कहीं स्थान दिया या नहीं, इसका पता आपको चल ही नहीं सकता था। गोखलेके सभी भाषणोंमें मैं उपस्थित था, पर मुझे एक भी ऐसा अक्षर याद नहीं आता

जब मैंने सोचा हो कि उन्होंने अमुक भाव प्रकट नही किया होता या अमुक विशेषणका व्यवहार न किया होता तो अच्छा होता। उनके विचारोंकी स्पष्टता, दृढता, विनय इत्यादि उनके अतिशय परिश्रम और सत्यपरायणताका प्रसाद थी।

जोहान्सबर्गमे केवल हिंदुस्तानियोकी विराट् सभा भी होनी ही चाहिए थी। मेरा यह आग्रह पूर्वकालसे ही चला आ रहा है कि हम या तो अपनी मातृभाषामे बोले या राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी-में। इस आग्रहकी बदौलत दक्षिण अफ्रीकामें भारतीयोंके साथ मेरा संबंध सरल और निकटका हो गया। इससे मैं सोचता था कि हिंदुस्तानियोके साथ गोखले भी हिंदुस्तानीमे ही बोलें तो अच्छा है। इस विषयमे गोखलेके विचार मुझे मालूम थे। टूटी-फूटी हिंदीसे वह अपना काम चला ही नही सकते थे। इसलिए या तो मराठीमे बोलते या अंग्रेजीमें। मराठीमे बोलना उन्हे बनावटी-सा जान पडा और उसमे बोलें भी तो गुजराती और उत्तर भारतवाले श्रोताओके लिए उसका हिंदुस्तानी उलथा तो करना ही होता। तो फिर अंग्रेजीमे ही क्यों न बोले? सौभाग्यवश मेरे पास एक ऐसी दलील थी जिससे गोखले मराठीमें बोलना मजूर कर लें। जोहान्सबर्गमें कोंकणके बहुतसे मुसलमान बसते थे। थोड़े महाराष्ट्रीय हिंदू तो थे ही। इन सभीको गोखलेका मराठी भाषण सुननेकी बड़ी इच्छा थी और उन्होंने मुझसे कह रखा था कि गोखलेसे मराठीमें बोलनेकी प्रार्थना करूं। मैंने उनसे कहा—"आप मराठीमें बोलेगे तो ये लोग बहुत खुश होंगे और आप जो बोलेगे उसका हिंदुस्तानी तरजुमा मैं कर दूगा।" वह खिलखिलाकर हंस पड़े और बोले—"तुम्हारा हिंदुस्तानीका ज्ञान तो मै सब जानता हूं। यह हिंदुस्तानी तुमको मुबारक हो। पर तुम मराठीका उलथा हिंदुस्तानीमे करने चले हो। यह तो बताओ कि इतनी मराठी तुमने कहां सीखी?" मैंने

जवाब दिया—"जो बात आपने मेरी हिंदुस्तानीके बारेमें कही है वही मराठीकी भी समझिए। मराठीका एक अक्षर भी मैं बोल नहीं सकता। पर जिस विषयका मुझे ज्ञान है उस विषयपर आप मराठीमें जो कुछ कहेंगे उसका भावार्थ मैं जरूर समझ जाऊंगा। इतना तो आप देख लेंगे कि मैं लोगोंके सामने उसका अनर्थ कदापि न करूंगा। मैं आपको ऐसे उलथा करनेवाले दे सकता हूं जो मराठी अच्छी तरह समझते हैं, पर शायद आप इसको पसंद न करें। अतः मुझे निभा लीजिएगा और मराठीमें ही बोलिएगा। कोंकणी भाइयोंके जैसी मुझे भी आपका मराठी भाषण सुननेकी हवस है।"

"तुम अपनी टेक जरूर रखना। यहां तुम्हारे पाले पड़ा हूं, इसलिए छुटकारा थोड़े ही पा सकता हूं।" यों कहकर मुझे रिझाया और इसके बाद ऐसी सभाओंमें ठेठ जंजीबारतक मराठीमें ही बोले और मैं उनका विशेष रूपसे नियुक्त भाषांतरकार रहा। मैं नहीं जानता कि यह बात मैं उन्हें कहां तक समझा सका कि मुहावरेदार और व्याकरण-शुद्ध अंग्रेजीमें बोलनेकी अपेक्षा यथासंभव मातृभाषा, यहां तक कि टूटी-फूटी व्याकरण-रहित हिंदीमें ही बोलना मुनासिब है। पर इतना जानता हूं कि दक्षिण अफ्रीकामें वह महज मुझे खुश करनेकी खातिर मराठीमें बोले। मराठीमें कुछ भाषण देनेके बाद इसके फलसे उन्हें भी प्रसन्नता हुई, यह मैं देख सका। गोखलेने दक्षिण अफ्रीकामें अनेक अवसरोंपर अपने व्यवहारसे यह दिखा दिया कि जहां सिद्धांतका प्रश्न नहीं वहां अपने सेवकोंको प्रसन्न करना गुण है।

: १३ :

गोखलेकी यात्रा—२

जोहान्स्बर्गसे हमें प्रिटोरिया जाना था। प्रिटोरियामें गोखलेको यूनियन सरकारकी ओरसे निमत्रण था। अतः ट्रांसवाल होटलमें उसने उनके लिए जो स्थान खाली रखवाया था वहीं उतरना था। यहां गोखलेको यूनियन सरकारके मंत्रिमंडलसे मिलना था, जिसमें जनरल बोथा और जनरल स्मट्स भी थे। जैसा कि ऊपर बता चुका हूं, उनका कार्यक्रम मैंने ऐसा बनाया था कि रोज करनेके कामोंकी सूचना मैं उन्हें सवेरे या वह पूछें तो अगली रातको दे दिया करता था। मंत्रिमंडलसे मिलनेका काम बड़ी जवाबदेहीका था। हम दोनोंने तै किया कि मैं उनके साथ न जाऊं, जानेकी इच्छा भी प्रकट न करूं। मेरी उपस्थिति-से मंत्रिमंडल और गोखलेके बीच कुछ-न-कुछ पर्दा पड़ जाता। मंत्रिगण जी-भरकर स्थानीय भारतीयोंकी और इच्छा हो तो मेरी भी जो गलतियां मानते हों उन्हें न बता सकते। वे कुछ कहना चाहते हों तो उसे भी खुले दिलसे न कह सकते, पर इससे गोखलेकी जिम्मेदारी दुगनी हो जाती थी। कोई तथ्यकी भूल हो जाय या वे कोई नया तथ्य सामने रखें और उसका जवाब गोखलेके पास न हो अथवा उन्हें हिंदुस्तानियोंकी ओरसे कोई स्वीकृति देनी हो तो उस दशामें क्या करना होगा, यह समस्या उपस्थित हो गई। पर गोखलेने तुरत उसका हल निकाल लिया। मैं उनके लिए भारतीयोंकी स्थितिका अथसे इति तक खुलासा तैयार कर दूं। भारतीय कहांतक जानेको तैयार हैं, यह भी लिख दूं। उसके बाहरकी कोई भी बात सामने आये तो गोखले अपना अज्ञान स्वीकार कर लें। यह निश्चय करके वह निश्चित हो गये। अब करना इतना ही रहा कि मैं उस तरहका

खुलासा तैयार कर दू और गोखले उसे पढ लें। पर वह उसे पढ लें इतना वक्त तो मैंने रखा ही नही था। कितना ही छोटा खुलासा लिखू फिर भी चार उपनिवेशोंमें भारतीयोकी स्थितिका इतिहास दस-बीस पन्ने लिखे विना कैसे दे सकता था। फिर उस खुलासेको पढनेके बाद उनके मनमें कुछ सवाल तो उठते ही। पर उनकी स्मरणशक्ति जितनी तीव्र थी वैसी ही श्रम करनेकी शक्ति अगाध थी। सारी रात जगे और पोलकको और मुझे जगाया। एक-एक बातकी पूरी जानकारी प्राप्त की और उन्होंने भी समझा या नही, इसकी जांच भी करा ली। अपने विचार मुझे सुनाते जाते। अंतमें उन्हें संतोष हुआ। मैं तो निर्भय था ही।

लगभग दो घंटे या इससे कुछ अधिक वह मंत्रिमंडलके पास बैठे और लौटकर मुझसे कहा—"तुम्हें एक बरसके अंदर हिंदुस्तान लौट आना है। सब बातोंका फैसला हो गया। खूनी कानून रद होगा। इमिग्रेशन कानूनसे वर्णभेद निकाल दिया जायगा। तीन पौंडका कर उठा दिया जायगा।" मैंने कहा, "मुझे इसमें पूरी शंका है। मंत्रिमंडलको जितना मैं जानता हूं उतना आप नही जानते। आपका आशावाद मुझे प्रिय है, क्योंकि मैं खुद भी आशावादी हूं; पर अनेक बार धोखा खा चुका हूं। इसलिए इस विषयमें आपकी जितनी आशा मैं नही रख सकता। पर मुझे कोई डर नही। आप मंत्रिमंडलसे वचन ले आये, इतना ही मेरे लिए काफी है। मेरा धर्म तो इतना ही है कि जब आवश्यक हो तब लड लू और यह साबित कर दूं कि हमारी लड़ाई न्यायकी है। इसकी सिद्धिमें आपको मिला हुआ वचन हमारे लिए बहुत लाभजनक होगा। और लडना पडा ही तो लडनेमें उससे हमारा बल दूना हो जायगा। पर अधिक भारतीयोंके जेलमें गये बिना और एक सालके अंदर मैं हिंदुस्तान लौट सकता हूं, ऐसा मुझे नही दिखाई देता।"

यह सुनकर वह बोले—"मैं तुमसे जो कहता हूं उसमें फर्क पडनेवाला नही। मुझे जनरल बोथाने वचन दिया है कि खूनी कानून रद कर दिया जायगा और तीन पौंडका कर उठा दिया जायगा। तुम्हें बारह महीनेके अदर हिंदुस्तान लौटना ही होगा। मै तुम्हारा एक भी बहाना सुननेवाला नही।"

जोहान्सबर्गका भाषण प्रिटोरियाकी यात्राके बाद हुआ था।

ट्रासवालसे गोखले डर्बन, मेरित्सबर्ग आदि स्थानोंमे गये। वहां भी बहुतसे यूरोपियनोंसे मिले-जुले। किम्बरलीकी हीरेकी खान भी देखी। किम्बरली और डर्बनमे भी स्वागत-मडलकी ओरसे जोहान्सबर्गकी जैसी दावते की गईं और उनमे भी बहुतसे यूरोपियन सम्मिलित हुए। यों भारतीय और यूरोपियन दोनोंके मन हर कर गोखलेने १९१२की १७वी नवबरको दक्षिण अफ्रीकाके समुद्र-तटसे प्रस्थान किया। उनकी इच्छासे मैं और मि० केलनबेक जजीबारतक उन्हे पहुचाने गये। स्टीमरपर उनके लिए ऐसे भोजनका प्रबध कर दिया था जो उनकी प्रकृतिके अनुकूल हो। रास्तेमे डेलागोआ बे, इनहामबेन, जजीबार आदि बदरगाहोंपर भी उनका खूब सम्मान किया गया।

स्टीमरपर हमारे बीच होनेवाली बातचीतका विषय केवल हिंदुस्तान या उसके प्रति हमारा धर्म ही होता। उनकी हर बातमे उनकी कोमल भावना, उनकी सत्यपरायणता और उनका स्वदेशाभिमान झलक उठता। मैंने देखा कि स्टीमरपर वह जो खेल खेलते उनमे भी खेलकी बनिस्बत हिंदुस्तानकी सेवाका भाव अधिक होता। उसमे भी संपूर्णता तो होनी ही चाहिए थी।

स्टीमरपर हमें इतमीनानसे बातें करनेकी फुरसत तो रहती ही। इन वार्तालापोमे उन्होने मुझे हिंदुस्तानके लिए तैयार किया। भारतके हरएक नेताके चरित्रका विश्लेषण

करके दिखाया। उनका विश्लेषण इतना सही था कि उन नेताओंके विषयमें जो कुछ मैने स्वय अनुभव किया उसमें और गोखलेके आलेखनमे शायद ही कही फर्क पाया हो।

गोखलेकी दक्षिण अफ्रीकाकी यात्रामे उनके साथ मेरा जो संबंध रहा उसके कितने ही पवित्र संस्मरण ऐसे है जो यहा दिये जा सकते है, पर सत्याग्रहके इतिहासके साथ उनका सबध नही है, इससे मुझे अनिच्छापूर्वक अपनी कलम रोकनी पड रही है। जजीवारसे हुआ वियोग मेरे और मि० केलनबेक दोनोके लिए अतिशय दुःखदायी था, पर यह सोचकर कि देहधारियोके निकट-से-निकट सबधका भी एक दिन अत होता ही है हमने धैर्य धारण किया और दोनोने यह आशा रखी कि गोखलेकी भविष्यवाणी सत्य होगी और हम दोनों एक बरसके अंदर हिंदुस्तान जा सकेंगे। पर यह अनहोनी बात निकली।

फिर भी गोखलेकी दक्षिण अफ्रीकाकी यात्राने हमें अधिक दृढ किया और कुछ दिन बाद जब युद्ध फिर अधिक तीव्ररूपमे आरभ हुआ तब इस यात्राका मर्म और उसकी आवश्यकता हम अधिक समझ सके। गोखले दक्षिण अफ्रीका न गये होते और मंत्रिमंडलसे न मिले होते तो तीन पौडके करको हम युद्धका विषय न बना सके होते। अगर खूनी कानून रद हो जानेपर सत्याग्रह-की लडाई बंद हो जाती तो तीन पौडके करके लिए हमे नया सत्या-ग्रह करना पड़ता और उसे करनेमे अपार कष्ट सहन करना पडता। इतना ही नही, लोग तुरत दूसरे सत्याग्रहके लिए तैयार होते या नही, इसमे भी शका ही थी। इस करको रद कराना स्वतंत्र भारतीयोंका फर्ज था। इसके लिए अर्जिया भेजना आदि सब वैध उपाय किये जा चुके थे। १८९५से यह कर अदा किया जा रहा था। पर कैसा ही घोर कष्ट क्यो न हो, वह लंबे अरसेतक बना रहे तो लोग उसके आदी हो जाते है और उसके विरोध करनेका धर्म उन्हे समझाना कठिन हो जाता है,

दुनियाको उसकी घोरता समझाना भी उतना ही कठिन हो जाता है। गोखलेको मिले हुए वचनने सत्याग्रहियोंका रास्ता साफ कर दिया। या तो सरकार अपने वचनके अनुसार उक्त करको उठा दे, नहीं तो यह वचन-भंग ही लड़ाईका सबल कारण हो जाता। हुआ भी ऐसाही। सरकारने एक वरसके अंदर कर नहीं उठाया। इतना ही नहीं, साफ कह दिया कि वह हटाया नहीं जा सकता।

अतः गोखलेकी यात्रासे तीन पौंडके करको सत्याग्रहके जरिये हटवानेमें हमे मदद तो मिली ही, इस यात्रासे वह दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नके विशेषज्ञ मान लिये गये। दक्षिण अफ्रीकाके बारेमें अब उनके कथनका वजन भी बढ गया। साथ ही दक्षिण अफ्रीकामें बसनेवाले भारतीयोके विषयमे निजी जानकारी हो जानेके कारण इस बातको अधिक समझने लगे कि हिंदुस्तानको उनके लिए क्या करना चाहिए और हिंदुस्तानको यह बात समझानेमे उनकी शक्ति तथा अधिकार बहुत बढ़ गया। हमारी लड़ाई जब फिर छिड़ी तो हिंदुस्तानसे पैसेकी वर्षा होने लगी और लार्ड हार्डिंजने सत्याग्रहियोके साथ अपनी गहरी और ज्वलन्त सहानुभूति दरसाकर उन्हे प्रोत्साहन दिया। हिंदुस्तानसे मि० एंड्रूज और मि० पियर्सन दक्षिण अफ्रीका गये। गोखलेकी यात्राके बिना ये सभी बातें अशक्य होतीं।

वचन-भंग कैसे हुआ और उसके बाद क्या हुआ, यह नये प्रकरणका विषय है।

: १४ :

वचन-भंग

दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रह-संग्राममें इतने सूक्ष्म विचार-

से काम लिया जा रहा था कि प्रचलित नीतिके विरुद्ध एक भी कदम नहीं उठाया जाता। इतना ही नही, वल्कि इस वातका भी ध्यान रखा जाता कि सरकारको अनुचित रीतिसे कष्ट न पहुंचाया जाय। मिसालके लिए, खूनी कानून केवल ट्रांसवालके हिंदुस्तानियोपर लागू किया गया था। इससे सत्याग्रह-नीतिमें केवल ट्रांसवालके भारतीय ही दाखिल किये जाते थे। नेटाल, केप कोलोनी इत्यादिसे सत्याग्रहियोको भरती करनेका कुछ भी प्रयत्न नही किया गया, वल्कि वहांसे आये हुए इसके प्रस्ताव भी लौटा दिये गये। लडाई-की मर्यादा भी इस कानूनको रद करानेतक ही थी। इस वातको न गोरे समझ सकते थे, न भारतीय। आरंभमें भारतीयोंकी ओरसे यह मांग हुआ करती थी कि अगर लडाई शुरू करनेके वाद खूनी कानूनके अतिरिक्त और कष्टोको भी हम उसके उद्देश्योंमें शामिल कर सकते हो तो क्यो न कर लें? मैंने उन्हें धीरजके साथ समझाया कि इसमें सत्यका भंग होता है और जिस युद्धमें सत्यका ही आग्रह हो उसमें उसके भंगकी वात कैसे सोची जा सकती है? शुद्ध युद्धमें तो लडते-लड़ते लडनेवालोका वल वढता हुआ दिखाई दें तो भी युद्ध आरंभ करते समय जो उद्देश्य नियत किये गये हो उनसे आगे जा ही नही सकते। दूसरी ओर लडनेका वल अगर दिन-दिन छीजता दिखाई दे तो भी जिस हेतुके लिए लडाई छेडी गई हो उसका त्याग नही किया जा सकता। इन दोनों सिद्धांतोपर दक्षिण अफ्रीकामें पूरी तरह अमल किया गया। युद्ध आरंभ करते समय जिस वलके भरोसे हमने युद्धका लक्ष्य नियत किया हमने देखा कि आगे चलकर वह वल झूठा निकला, फिर भी जो मुट्ठीभर सत्याग्रही वच रहे थे वे युद्धका त्याग नही कर सके। इस प्रकार लडना अपेक्षाकृत आसान होता है और वलमे वृद्धि होते हुए भी उद्देश्यमें

वृद्धि न करना उससे कही कठिन होता है। इसमें अधिक समय दरकार होता है। ऐसे प्रलोभन दक्षिण अफ्रीकामें अनेक वार हमारे सामने आये; पर मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि उसका लाभ हमने एक बार भी नही उठाया और इसीसे मैंने अकसर कहा है कि सत्याग्रहीके लिए एक ही निश्चय होता है। वह उसे न घटा सकता है, न बढा सकता है। उसमें न क्षयका अवकाश होता है और न वृद्धिका। आदमी जो पैमाना अपने लिए तै करता है, दुनिया भी उसको उसी पैमानेसे नापती है। सरकारने जब जान लिया कि सत्याग्रही ऐसी सूक्ष्म नीति बरतनेका दावा करते है तब उसने उनके ही पैमानेसे उनको नापना शुरू कर दिया, हालांकि वह खुद उस नीतिके एक भी नियम-सिद्धांतसे अपने आपको बंधा नहीं मानती थी। उसने सत्याग्रहियोपर दो-चार बार नीति-भंगका इलजाम लगाया। खूनी कानूनके बाद हिंदुस्तानियोंके खिलाफ कोई नया कानून गढा जाय तो उसका समावेश सत्याग्रहके हेतुओंमें हो सकता है, इस बातको एक बच्चा भी समझ सकता है। फिर भी जब नये दाखिल होनेवाले हिंदुस्तानियोपर नया प्रतिबंध लगाया गया और वह लड़ाईके हेतुओंमें शामिल कर लिया गया तब सरकारने उनपर युद्ध-हेतुओंमें नये विषयोंको शामिल करनेका इलजाम लगाया। यह आरोप सोलहो-आने अनुचित था। अगर नये आनेवाले हिंदुस्तानियोपर ऐसी रुकावटें लगाई गईं जो पहले नही थी तो उनको भी युद्धके हेतुओमें शामिल करनेका हक हमें होना ही चाहिए था और हम देख चुके है कि सोराबजी वगैरह इसीलिए ट्रांसवालमें दाखिल हुए। सरकारको यह बात बर्दाश्त नही हो सकती थी। पर निष्पक्ष लोगोको इस कदमका औचित्य समझानेमें मुझे तनिक भी कठिनाई नही हुई।

गोखलेकी रवानगीके बाद ऐसा मौका फिर आया।

गोखलेने तो सोचा था कि तीन पौडका कर एक वरसके अंदर रद हो ही जायगा और उनके जानेके वाद यूनियन पार्लमेंटका जो अधिवेशन होगा उसमे उसे उठा देनेके कानून-का मसविदा पेश कर दिया जायगा। इसके वदले जनरल स्मटसने यह प्रकट किया कि नेटालके युरोपियन यह कर उठा देनेको तैयार नहीं है, इसलिए यूनियन सरकार उसे रद करनेका कानून पास करनेमें असमर्थ है। वस्तुत ऐसी कोई वात नही थी। यूनियन पार्लमेंटमे चारों उपनिवेशोके प्रतिनिधि वैठते है। अकेले नेटालके सदस्योंकी उसमे कुछ नही चल सकती थी। फिर मंत्रिमडलके पेश किये हुए विलको पार्लमेंट नामंजूर करे वहातक पहुंचाना जरूरी था। जनरल स्मटसने इसमेंसे कुछ भी नही किया। इससे हमें इस क्रूर करको युद्धके कारणोंमें सम्मिलित कर लेनेका सुयोग सहज ही मिल गया। इसके लिए हमें दो कारण मिले : एक तो यह कि चलती लडाईके दरमियान सरकारकी ओरसे कोई वचन दिया जाय और फिर उस वचनका भंग किया जाय तो यह वचन-भंग चलते सत्याग्रहके कार्य-क्रममें दाखिल हो जाता है। दूसरा यह कि हिंदुस्तानके गोखले सरीखे प्रतिनिधिको दिया हुआ वचन तोडा जाय तो यह उनका ही नही, सारे हिंदुस्तानका अपमान है और यह अपमान सहन नही किया जा सकता। केवल पहला ही कारण होता और सत्याग्रहियोमें शक्ति न होती तो उक्त करको रद करनेके लिए सत्याग्रह करना वह छोड़ सकते थे। पर जब उससे हिंदुस्तानका अपमान हो रहा हो तब तो उसे सहन कर लेना संभव ही नही था। इसलिए तीन पौडके करको युद्धके कार्य-क्रममे शामिल कर लेना सत्याग्रहियोको फर्ज जान पडा और जब तीन पौंडके करको युद्धके हेतुओमें स्थान मिल गया तब गिरमिटिया हिंदुस्तानियोंको भी सत्याग्रहमें सम्मिलित होनेका मौका मिल गया। पाठकोंको

यह बात ध्यानमे रखनी चाहिए कि अबतक ये लोग लड़ाईसे बाहर ही रखे गये थे। अत. एक ओर तो लड़ाईका बोझ बढा और दूसरी ओर लड़नेवालोंके भी बढ़नेका समय आया हुआ दिखाई दिया।

गिरमिटियोंसे अबतक सत्याग्रहकी शिक्षा देनेकी तो बात ही क्या, लड़ाईकी चर्चातक नहीं की गई थी। वे निरक्षर थे, इसलिए 'इंडियन ओपीनियन' या दूसरे अखबार कहांसे पढ़ सकते थे? फिर भी मैंने देखा कि ये गरीब लोग सत्याग्रहका निरीक्षण कर रहे थे और जो कुछ हो रहा था उसको समझ रहे थे। कुछको इस लड़ाईमें शामिल न हो सकनेका दुःख भी था। पर जब वचन-भंग हुआ और तीन पौंडका कर भी युद्धके हेतुओमें शामिल किया गया तब उनमें-से कौन लड़ाईमें शामिल होगा, इसका मुझे कुछ भी पता नही था।

वचन-भंगकी बात मैंने गोखलेको लिखी। उन्हे अत्यन्त दुःख हुआ। मैंने उन्हे लिखा कि आप निश्चित रहें, हम मरते दमतक लड़ेंगे और इस करको रद कराके रहेंगे। हां, एक बरसके अंदर जो मुझे हिंदुस्तान लौटना था वह टला और पीछे कब लौट सकूंगा यह कहना अशक्य हो गया। गोखले तो अंकशास्त्री थे। उन्होंने मुझसे पूछा कि तुम्हारे पास अधिक-से-अधिक और कम-से-कम कितने लड़नेवाले हो सकते हैं और उनके नाम मांगे। जहांतक मुझे याद है, मैंने अधिक-से-अधिक ६५ या ६६ और कम-से-कम १६ नाम भेजे थे। मैंने यह भी लिख दिया कि इतनी छोटी-सी तादादके लिए मैं हिंदुस्तानसे पैसेकी मददकी अपेक्षा नही रखूंगा। यह विनती भी की कि हमारे बारेमे आप निश्चिन्त रहें और अपने शरीरको अधिक कष्ट न दें। मैं अखबारोंके जरिये और दूसरे तौरपर भी जान चुका था कि दक्षिण अफ्रीकासे बंबई वापस जानेपर गोखलेपर

कमजोरी दिखाने इत्यादिके आक्षेप किये गये थे। इससे मैं चाहता था कि हिंदुस्तानमें हमें पैसा भेजनेके लिए वह कुछ भी आंदोलन न करें। पर गोखलेसे मुझे यह कड़ा जवाब मिला—"जैसे तुम लोग दक्षिण अफ्रीकामें अपना फर्ज समझते हो वैसे हम भी कुछ अपना फर्ज समझते होंगे। हमें क्या करना उचित है, यह तुमको बतानेकी आवश्यकता नहीं है। मैं तो महज वहांकी स्थिति जानना चाहता था। हमारी ओरसे क्या होना चाहिए इस बारेमें सलाह नहीं मांगी थी।" इन शब्दोंका मर्म मैं समझ गया। इसके बादसे मैंने इस विषयमें एक शब्द भी नहीं कहा और न लिखा। उन्होंने इसी पत्रमें मुझे आश्वासन दिया और चेतावनी भी दी। उन्हें डर था कि जब सरकारने इस तरह वचन-भंग किया है तब लड़ाई बहुत लंबी होगी और ये मुट्ठीभर आदमी कबतक उससे लोहा ले सकेंगे। इधर हम लोगोंने अपनी तैयारियां शुरू की। इस बारकी लड़ाईमें शांतिसे बैठना तो हो ही नहीं सकता था। हमने यह भी समझ लिया कि इस बार सजाएं लंबी होंगी। अतः टाल्स्टायफार्म बंद कर देनेका निश्चय किया गया। मर्दोंके जेलसे छूटनेके बाद कुछ कुटुंब अपने-अपने घर चले गये। जो लोग बाकी रह गये थे उनमें अधिकांश फिनिक्स आश्रमके थे। अतः निश्चय हुआ कि आगेसे सत्याग्रहियोंका केन्द्र फिनिक्स ही हो। तीन पौंड-के करकी लड़ाईके अंदर अगर गिरमिटिये शामिल हुए तो उनसे मिलना-जुलना नेटालमें अधिक सुभीतेसे हो सकता था। इस खयालसे भी फिनिक्सको केन्द्र बनाना तै हुआ।

लड़ाई शुरू करनेकी तैयारी चल ही रही थी कि इतनेमें एक नया विघ्न उपस्थित हो गया, जिससे स्त्रियोंको भी लड़ाईमें शामिल करनेका मौका मिला। कुछ वीर स्त्रियां उसमें शामिल होनेकी मांग पहले ही कर चुकी थीं और जब बिना परवाना दिखाये फेरी करके जेल जाना आरंभ हुआ तब फेरी करने-

वालोंकी स्त्रियोंने भी जेल जानेकी इच्छा प्रकट की थी। पर उस वक्त परदेशमें स्त्रीवर्गको जेल भेजना हम सबको अयोग्य जान पडा। उन्हे जेल भेजनेका कारण भी नही दिखाई दिया और उन्हे जेल ले जानेकी मेरी तो उस वक्त हिम्मत भी नही थी। इसके साथ-साथ यह भी दिखाई दिया कि जो कानून खास तौरसे मर्दोपर ही लागू होता हो उसको रद करानेमे स्त्रियों-को रोकना मर्दोंके लिए जिल्लतकी बात होगी। पर इस वक्त एक ऐसी घटना हुई जिसमे स्त्रियोका खास तौरसे अपमान होता था और हमे जान पडा कि इस अपमानको दूर करनेके लिए स्त्रियां भी बलिदान हो जाएं तो अनुचित न होगा।

: १५ :

ब्याह ब्याह नहीं रहा

मानों अदृश्य रहकर ईश्वर हिंदुस्तानियोंकी जीतका सामान तैयार कर रहा हो और दक्षिण अफ्रीकाके गोरोंके अन्यायको अधिक स्पष्ट रीतिसे प्रकट कर देना चाहता हो, दक्षिण अफ्रीकामें एक ऐसी घटना हुई जिसकी सभावना किसीको भी नही थी। हिंदुस्तानसे बहुतेरे विवाहित लोग दक्षिण अफ्रीका गये थे और कुछने वही ब्याह किया था। हिंदुस्तानमे सामान्य ब्याहोंकी रजिस्टरी करानेका कानून तो है ही नही। धार्मिक क्रिया ही काफी समझी जाती है। दक्षिण अफ्रीकामें भी हिंदुस्तानियोंके लिए यही प्रथा होनी चाहिए थी। हिंदुस्तानी चालीस बरससे उस देशमे बस रहे थे। फिर भी हिंदुस्तानके भिन्न-भिन्न धर्मोंके अनुसार हुए ब्याह नाजायज नही समझे गये थे। पर इस वक्त एक मुकदमा ऐसा हुआ जिसमे केप सुप्रीमकोर्टके एक न्यायाधीशने यह फैसला

दिया कि दक्षिण अफ्रीकाके कानूनमें वही ब्याह जायज माना जायगा जो ईसाई धर्मकी रीतिसे संपन्न हुआ हो और जिसकी रजिस्टरी विवाहके अधिकारी (रजिस्ट्रार आव मेरिजेज) के यहां करा ली गई हो। अर्थात् हिंदू, मुसलमान, पारसी इत्यादि धर्मोकी विधिसे हुए ब्याह इस भयंकर निर्णयसे दक्षिण अफ्रीकामें रद हो गये और बहुत-सी विवाहिता भारतीय महिलाओंका दरजा दक्षिण अफ्रीकामें अपने पतिकी धर्म-पत्नीका न रहकर रखेलीका हो गया और उनकी संतानको बापकी कमाई पानेका हक भी नहीं रहा। यह स्थिति न स्त्रियोंको सहन हो सकती थी, न पुरुषोंको। दक्षिण अफ्रीकामें बसनेवाले हिंदुस्तानियोंमें भारी खलबली मची। मैंने अपने स्वभावके अनुसार सरकारसे पूछा कि सरकार न्यायाधीशके इस निर्णयको मान लेगी या कानूनका उन्होंने जो अर्थ किया है वह सही हो तो भी वह अनर्थ है यह समझकर नया कानून बनाकर हिंदू-मुसलमान इत्यादि धर्मोकी विधिसे हुए ब्याहोंको जायज मान लेगी? सरकारका भाव इस वक्त ऐसा नहीं था कि वह हमारी बातकी परवा करती। इसलिए जवाब इन्कारी का मिला।

उक्त निर्णयके विरुद्ध अपील की जाय या नहीं, इसपर विचार करनेके लिए सत्याग्रह-मंडलकी बैठक हुई। अंतमें सभीने निश्चय किया कि ऐसे मामलेमें अपील हो ही नहीं सकती। अपील करनी ही हो तो सरकार करे या वह चाहे तो अपने वकील (एटर्नी जनरल) की मारफत खुले तौरपर हिंदुस्तानियोंका पक्ष ले, तभी हिंदुस्तानी अपील कर सकते हैं। इसके बिना अपील करना हिंदू-मुसलमान विवाहोंका नाजायज ठहरा दिया जाना सहन कर लेना-सा होगा। फिर अपील की गई और उसमें हमारी हार हुई तो सत्याग्रह करना ही होगा। अतः ऐसे अपमानके बारेमें अपील की ही नहीं जा सकती।

अब ऐसा वक्त आ गया जब शुभतिथि या मंगलमुहूर्तकी राह देखी जा ही नहीं सकती थी। स्त्रियोंका अपमान होनेके बाद धीरज कैसे रहता? थोड़े या बहुत जितने भी आदमी मिल जाएं उन्हीको लेकर तीव्र रूपमे सत्याग्रह आरंभ करनेका निश्चय किया गया। अब स्त्रियोका लड़ाईमे शामिल होना रोका नही जा सकता था। इतना ही नही, हमने उन्हे लडाईमें शामिल होनेका निमंत्रण देनेका निश्चय किया। पहले तो जो बहने टाल्सटाय फार्ममे रह चुकी थी उन्हीको निमत्रण दिया गया। वे बहने तो लड़ाईमें शामिल होनेको बेचैन हो रही थी। मैंने उन्हे लडाईकी सभी जोखिमे बता दी। खाने-पीने, कपड़े-लत्ते, सोने-बैठनेमे पाबदियां होगी, यह समझा दिया। यह चेतावनी दे दी कि जेलमे उन्हे सख्त मशक्कत करनी होगी। कपडे धुलवाये जाएंगे। अमले अपमान करेंगे। पर ये बहने एक भी बातसे नही डरी। सभी बहादुर थी। एकके तो कई महीनेका गर्भ था। कुछकी गोदमें बच्चे थे; पर उन्होंने भी शामिल होनेका आग्रह किया और उनमेसे किसीको भी रोक सकना मेरे वसकी बात नही थी। ये सभी बहने तामिल थी। उनके नाम ये है–

१ श्रीमती थंबी नायडू; २ श्रीमती एन० पिल्ले; ३. श्रीमती के० मुरगेसा पिल्ले, ४. श्रीमती ए० पी० नायडू; ५ श्रीमती पी० के० नायडू, ६. श्रीमती चिन्नस्वामी पिल्ले; ७ श्रीमती एन. एस. पिल्ले; ८ श्रीमती मुदलिगम्; ९. श्रीमती भवानी दयाल; १०. श्रीमती एम० पिल्ले, ११ श्रीमती एम० बी० पिल्ले।

इनमेसे ६ बहनोंकी गोदमें बच्चे थे।

अपराध करके जेल जाना आसान है। निर्दोष होते हुए अपने आपको गिरफ्तार कराना कठिन है। अपराधी गिरफ्तार होना नही चाहता, इससे पुलिस उसके पीछे

लगी रहती है और उसे पकड़ती है। पर जो अपनी खुशीसे और निरपराध होते हुए जेल जाना चाहता है उसको पुलिस तभी पकड़ती है जब वह इसके लिए लाचार हो जाती है। इन बहनोंका पहला यत्न विफल हुआ। उन्होंने बिना परवानेके ट्रांसवालमें दाखिल होकर फेरी की, पर पुलिसने उन्हें गिरफ्तार करनेसे इन्कार किया। उन्होंने फ्रीनिखनसे ऑरेंजिया (ऑरेंज फ्री स्टेट) की सरहदमें बिना अनुमतिके प्रवेश किया। फिर भी किसीने उन्हें न पकड़ा। अब स्त्रियोंके सामने यह सवाल खड़ा हो गया कि वह किस तरह अपने आपको गिरफ्तार कराएं। ज्यादा मर्द गिरफ्तार होनेको तैयार नहीं थे और जो थे उनके लिए अपने आपको गिरफ्तार कराना आसान नहीं था।

हमने वह कदम उठानेका निश्चय किया जिसे आखिरके लिए सोच रखा था। यह कदम बड़ा प्रभावकारी सिद्ध हुआ। मैंने सोच रखा था कि युद्धके अंतिम पर्वमें फिनिक्सके अपने सभी साथियोंको होम दूंगा। यह मेरे लिए अंतिम त्याग था। फिनिक्समें रहनेवाले मेरे अंतरंग सहयोगी और संबंधी थे। सवाल यह था कि अखबार चलानेके लिए जितने आदमी चाहिए उतने आदमियों और सोलह बरससे नीचेके लड़के-लड़कियोंको छोड़कर बाकी सबको जेल-यात्राके लिए भेज दूं। इससे अधिक त्याग करनेके साधन मेरे पास नहीं थे। गोखलेको लिखते हुए जिन सोलह आदमियोंका उल्लेख किया था वे इनमें ही थे। इस मंडलीको सरहद लांघ कर ट्रांसवालमें बिना परवानेके प्रवेश करनेके अपराधके लिए गिरफ्तार कराना था। डर था कि अगर इस कदमकी बात पहले ही प्रकट कर दी गई तो सरकार उनको नहीं पकड़ेगी। इसलिए दो-चार मित्रोंको छोड़कर और किसीको मैंने यह बात नहीं बताई थी। सरहद लांघते समय पुलिस-अफसर सदा

नाम-धाम पूछा करता था। इस वक्त उसको नाम-पता न बताना भी हमारी योजनाके अंदर था। पुलिस-अफसरको नाम-धाम न बताना भी एक जुदा अपराध माना जाता था। डर था कि नाम-पता बतानेमे पुलिस यह जान गई कि वे मेरे सगे-सबधियोंसे है तो वह उन्हें गिरफ्तार नही करेगी। इससे नाम व ठिकाना न बतानेकी बात सोची गई थी। इस कदमके साथ-साथ उन बहनोंको नेटालमें दाखिल होना था जो ट्रासवालमे दाखिल होनेका विफल प्रयत्न कर रही थी। जैसे नेटालसे परवानेके बिना ट्रांसवालमे दाखिल होना अपराध था वैसे ही ट्रांसवालसे नेटालमें बिना परवानेके दाखिल होना भी अपराध था। इसलिए हमने तै किया था कि पुलिस इन बहनोको पकडे तो ये अपने आपको नेटालमे गिरफ्तार करा दें और न पकड़े तो नेटालके कोयलेकी खानोके केन्द्र न्यूकैसलमें जाकर वहांके गिरमिटिया मजदूरोसे खानोसे निकल आनेका अनुरोध करे। इन बहनोंकी मातृभाषा तामिल थी। थोड़ी बहुत हिंदुस्तानी भी आती ही थी। मजदूरवर्गका बड़ा भाग मद्रास इलाकेका और तामिल-तैलगू बोलनेवाला था। उत्तरी हिंदुस्तानवाले भी काफी थे। मजदूर इन बहनोकी बात सुनकर काम छोड़ दें तो सरकार मजदूरोके साथ-साथ उन्हे भी गिरफ्तार किये बिना नही रहती। इसीसे मजदूरोमें और ज्यादा जोश पैदा होनेकी पूरी सभावना थी। इस प्रकारकी व्यूह-रचना मनमें करके मैंने उसे ट्रासवालकी बहनोंको समझा दिया था।

इसके बाद मै फिनिक्स गया। वहां सबके साथ बैठकर बातें की। पहले तो वहा रहनेवाली बहनोंके साथ मशविरा करना था। बहनोको जेल भेजनेका कदम बड़ा भयानक है। यह मै जानता था। फिनिक्समे रहनेवाली अधिकाश बहनें गुजराती थी। अत. उन्हे उक्त ट्रांसवालकी बहनोकी तरह

मुस्तैद या अनुभवी नही मान सकते थे। इसके सिवा यह बात भी थी कि उनमेंसे अधिकांश मेरी रिश्तेदार थी। इस-लिए हो सकता था कि मेरी लाज रखनेके लिए ही जेल जानेकी बात सोचें और पीछे कसौटीके समय डरकर या जेलमे जानेके बाद वहांके कष्टसे घबराकर माफी आदि माग लें तो मेरे दिलको गहरा धक्का लगता और लडाई एकबारगी कमजोर हो जाती। अपनी पत्नीके बारेमें तो मैंने निश्चय कर लिया था कि उसको कभी नही ललचाऊगा। उसके मुहसे तो ना निकल ही नही सकता। और हा निकले तो उस हाकी भी कितनी कीमत समझू, यह मै जान न सकता था। मै समझता था कि ऐसी जोखिमके काममे पत्नी अपनी मर्जीसे जो कुछ करे पतिको वही स्वीकार करना चाहिए और वह कुछ भी कहे तो उसका तनिक भी दुःख नही मानना चाहिए। इसलिए यह तै कर लिया था कि उसके साथ इस बारेमे बात ही नही करूगा। दूसरी बहनोके साथ मैंने बातें की। उन्होंने भी ट्रासवाल-वाली बहनोकी तरह तुरंत बीडा उठा लिया और जेल जानेको तैयार हो गईं। मुझे इस बातका इतमीनान दिलाया कि कैसे ही कष्ट क्यों न सहने पडें, वे अपनी सजाकी मुद्दत पूरी करेंगी। पर इस सारी बातचीतका सार मेरी पत्नीनें भी जान लिया। उसने मुझसे कहा—"आप मुझे इस बातकी खबर नही देते, इसका मुझे दुःख होता है। मुझमें ऐसी क्या खामी है कि मैं जेल नही जा सकती ? मुझे भी वही रास्ता लेना है जिसपर चलनेकी सलाह आप इन बहनोको दे रहे हैं।" मैनें जवाब दिया—"तुम्हारा दिल दुखानेकी बात मैं सोच ही नहीं सकता। इसमे अविश्वासकी बात नही है। मैं तो तुम्हारे जेल जानेसे प्रसन्न ही हूगा। पर मुझे इसका आभास-तक नही होना चाहिए कि तुम मेरे कहनेसे जेल गई हो। ऐसे काम हरएकको अपनी हिम्मतसे ही करना चाहिए। मैं कहू

तो मेरी बात रखनेके लिए तुम सहज ही जेल चली जाओगी। पीछे अदालतमे खडी होते ही कांपने लगो या हिम्मत हार दो अथवा जेलके कष्टोसे कातर हो जाओ तो इसमे तुम्हारा दोष तो मै मानूगा, पर मेरी दशा क्या होगी ? मै तुम्हे किस तरह ग्रहण कर सकूगा ? दुनियाके सामने कैसे मुह दिखा सकूगा ? इसी डरसे मैने तुम्हे जेल जानेको नही ललचाया।" मुझे जवाब मिला—"मै हिम्मत हारकर चली आऊ तो आप मुझे न अपनाये। मेरे लडके कष्ट सह सकते है। आप सब लोग सह सकते है और अकेली मै ही नही सह सकती, यह आप कैसे सोच सकते है ? मुझे तो इस लड़ाईमे शामिल करना ही होगा।" मैने जवाब दिया—"तो तुम्हे शामिल करना ही होगा। मेरी शर्त तो तुम जानती ही हो। मेरा स्वभाव भी जानती हो। अब भी सोचना-विचारना हो तो सोच-विचार लो और भलीभाति विचार कर लेनेके बाद अगर तुम्हारा दिल कहे कि तुम्हे इसमे शामिल नही होना चाहिए तो तुम्हे इसकी आजादी है। और यह भी जान लो कि निश्चय बदलनेमें अभी कोई शर्म भी नही।" जवाब मिला—"मुझे कुछ सोच-विचार करना ही नही है। मेरा निश्चय ही है।"

फिनिक्समे रहनेवाले दूसरे लोगोको भी मैने स्वतंत्र रीतिसे निश्चय करनेकी सलाह दी थी। लडाई थोड़े दिन चले या बहुत दिन, फिनिक्स-आश्रम कायम रहे या जमीदोज हो जाय, जेल जानेवाले तदुरुस्त रहे या बीमार हो जाए, पर कोई पीछे नही हट सकेगा, यह शर्त मैने बार-बार और तरह-तरहसे कहकर समझा दी। सब तैयार हो गये। फिनिक्स-से बाहरके अकेले रुस्तमजी जीवनजी घोरखोदू थे। उनसे यह सारा विचार-विमर्श छिपा रखा जाय, यह नही हो सकता था। वह पीछे रहनेवाले आदमी भी नही थे। वह जेल हो

भी आये थे, पर फिर जानेका आग्रह कर रहे थे। इस जत्थेमें शामिल होनेवालोंके नाम इस प्रकार है

१. सौ० कस्तूर मोहनदास गांधी, २ सौ० जयाकुंवर मणिलाल डाक्टर, ३. सौ० काशी छगनलाल गांधी, ४. सौ० सन्तोक मगनलाल गांधी, ५. श्रीपारसी रुस्तमजी जीवन घोरखोदू, ६. श्रीछगनलाल खुशालचंद गांधी, ७. श्रीरावजी भाई मणिलाल पटेल, ८. श्री मगन भाई हरिभाई पटेल, ९ श्री-सालोमन रायपन, १०. भाई रामदास मोहनदास गांधी, ११. भाई राजगोविन्द, १२. भाई शिवपूजन बद्री, १३ गोविंद राजुलू, १४. श्रीकुप्पु स्वामी मुदालियार, १५ भाई गोकुलदास हंसराज, १६. रेवाशंकर रतनशी सोढा।

आगे क्या हुआ यह अगले प्रकरणमें पढियेगा।

: १६ :

स्त्रियां जेलमें

इस जत्थेको सरहद पारकर बिना परवानेके ट्रांसवालमें दाखिल होनेके जुर्ममें गिरफ्तार होना था। नामोंसे पाठक देखेंगे कि उनमें कुछ ऐसे नाम है,जो प्रकट हो जाते तो पुलिस शायद उन्हें गिरफ्तार नहीं करती। मेरे विषयमें यही बात हुई थी। एक-दो बार गिरफ्तार करनेके बाद सरहद पार करते वक्त पुलिसने मुझे पकडना छोड दिया था। इस जत्थेके कूचकी खबर किसीको नहीं दी गई थी। अखबारोंको तो दे ही कैसे सकते थे? जत्थेके सदस्योंको समझा दिया गया था कि वे पुलिसको भी नाम-धाम न बताए। पूछनेपर उससे कह दें कि हम अदालतमें नाम बतायेंगे।

पुलिसके सामने ऐसे मामले अकसर आते। अपने आपको

गिरफ्तार करानेके आदी हो जानेके बाद हिंदुस्तानी अकसर मजेके लिए पुलिसको तंग करनेकी नीयतसे भी उसको नाम नहीं बताते थे। अत: इस जत्थेके नाम न बतानेमें उसे कोई विचित्रता नहीं जान पड़ी। पुलिसने इस जत्थेको गिरफ्तार किया। मुकदमा चला। सबको तीन-तीन महीनेकी कड़ी कैदकी सजा मिली।

जो बहनें ट्रांसवालमें अपने आपको गिरफ्तार करानेके प्रयत्नमें निराश हुई थीं वे नेटालकी सरहदमें दाखिल हुईं। पुलिसने उन्हें बिना परवानेके प्रवेश करनेके जुर्ममें गिरफ्तार नहीं किया। यह तै हुआ था कि पुलिस उन्हें न पकड़े तो वे न्यू-कैसेल जाकर पड़ाव करें और कोयलेकी खानोंके हिंदुस्तानी मजदूरोंसे अपना काम छोड़ देनेकी विनती करें। न्यूकैसेल नेटालमें कोयलेकी खानोंका केन्द्र है। इन खानोंमें मुख्यत: हिंदुस्तानी मजदूर ही काम करते थे। बहनोंने अपना काम शुरू किया। उसका असर बिजलीकी तरह फैल गया। तीन पौंडके करकी कहानी उन्होंने सुनी तो उनपर गहरा असर हुआ। उन्होंने अपना काम छोड़ दिया। मुझे तार मिला। मैं खुश हुआ, पर इतना ही घबराया भी। मुझे क्या करना है? इस अद्भुत जागरणके लिए मैं तैयार नहीं था। मेरे पास पैसा नहीं था; न इतने आदमी थे जो इस कामको संभाल लें। अपना फर्ज मैं समझता था। मुझे न्यूकैसेल जाना और जो कुछ हो सके वह करना था। मैं उठा और चल दिया।

सरकार अब इन बहादुर बहनोंको क्यों छोड़ने लगी? वे गिरफ्तार हुईं। उन्हें भी वही सजा मिली जो फिनिक्स-वाले जत्थेको मिली थी—तीन-तीन महीनेकी कड़ी कैद और उसी जेलमें रखी गईं।

दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय अब जागे। उनकी नींद टूटी। उनमें नई चेतना आई जान पड़ी। पर बहनोंके

बलिदानने हिंदुस्तानको भी जगाया। सर फीरोजशाह मेहता अबतक तटस्थ थे। १९०१ मे उन्होंने मुझे कडे शब्दोंमें चेतावनी देकर दक्षिण अफ्रीका न जानेको समझाया था। उनका मत मैं पहले बता चुका हूं। सत्याग्रहकी लडाईका भी उनपर थोडा ही असर हुआ था। पर स्त्रियोकी कैदने उनपर जादूका-सा असर डाला। बबईके टाउनहालमे भाषण देते हुए उन्होने खुद कहा कि स्त्रियोकी जेल-यात्राने मेरी शाति भग कर दी। हिंदुस्तानसे अब चुप बैठे नही रहा जा सकता।

बहनोंकी बहादुरीके क्या कहने ! सभी नेटालकी राजधानी मारित्सबर्गमे रखी गईं। यहा उन्हे काफी कष्ट दिया गया। खूराकमे उनका जरा भी खयाल नही रखा गया। काम उन्हे कपडे धोनेका दिया गया। बाहरसे खाना भेजनेकी सख्त मनाही लगभग आखिरतक रही। एक बहनने एक विशेष प्रकारके भोजनका ही व्रत ले रखा था। बडी कठिनाईसे उसे वह भोजन देनेका निश्चय हुआ। पर वह ऐसा होता था कि गलेसे उतारा न जा सके। उसे जैतूनके तेलकी खास जरूरत थी। पहले तो वह मिला ही नही। फिर मिला भी तो बरसोका पुराना और बदबूदार। अपने खर्चसे मंगानेकी प्रार्थना की गई तो जवाब मिला—"यह कोई होटल नही है। जो मिले वह खाना होगा।" यह बहन जब जेलसे निकली तो देहमें ठठरी भर रह गई थी। महाप्रयाससे जान बची।

एक दूसरी बहन भयकर ज्वर लेकर निकली। उस ज्वरने रिहाई (२२ फरवरी १९१४) के बाद कुछ ही दिनोमें उसे प्रभुके पास पहुंचा दिया। उसको मै कैसे भूल सकता हूं? वलिअम्मा सोलह सालकी लडकी थी। मै जब उसको देखने गया तो वह खाटपर पड़ी थी। लंबे कदकी होनेसे उसकी लकडी-जैसी देह डरावनी लगती थी।

मैंने पूछा "वलिअम्मा, जेल जानेका पछतावा तो नही हो रहा है न ?"

"पछतावा क्यो होगा ? मुझे तो फिर गिरफ्तार करे तो इस वक्त भी जेल जानेको तैयार हू ।"

"पर उसका फल मृत्यु हो तो ?"

"हुआ करे । देशके लिए मरना किसे न भायेगा ?"

इस बातचीतके कुछ ही दिन बाद वलिअम्मा स्वर्ग सिधारी । उसकी देह गई, पर यह बाला अपना नाम अमर कर गई है । वलिअम्माकी मृत्युके बाद जगह-जगह शोक प्रकाश करनेवाली सभाए हुई और कौमने इस पवित्र बहनकी स्मृति-रक्षाके लिए 'वलिअम्मा हाल' के नामसे एक सभा-भवन बनानेका निश्चय किया । यह हाल बनानेके धर्मका कौमने अबतक पालन नही किया । उसमे अनेक विघ्न आये । कौममे फूट पडी । मुख्य कार्यकर्ता एकके पीछे एक छोडकर चले गये । पर पत्थर-चूनेका हाल बने या न बने, वलिअम्माकी सेवाका नाश नहीं हो सकता । इस सेवाका हाल तो वह अपने हाथो ही निर्माण कर गई है । उसकी मूर्ति आज भी बहुतसे हृदय-मदिरोंमे विराजती है और जबतक भारतवर्षका नाम है तबतक दक्षिण अफ्रीकाके इतिहासमे वलिअम्माका नाम भी अमर रहेगा ।

इन बहनोका बलिदान विशुद्ध था । ये बेचारी कानून-कायदेकी बारीकियोको नही जानती थी । उनमे बहुतोको देशकी कल्पना नही थी, उनका देशप्रेम केवल श्रद्धापर अवलबित था । उनमे अनेक निरक्षर थी, इसलिए अखबार पढ़ना कहांसे जानती ? पर वे इतना जानती थी कि कौमके मानरूपी वस्त्रका हरण हो रहा है । उनका जेल जाना उनका आर्त्त-नाद था । शुद्ध यज्ञ था । ऐसी हृदयकी प्रार्थनाको प्रभु सुनते है । यज्ञकी सफलता उसकी उसी शुद्धतापर आश्रित होती है । भगवान भावके भूखे है । भक्तिपूर्वक अर्थात् निस्स्वार्थ-

बुद्धिसे अर्पित पत्र, पुष्प या जलको वह सप्रेम स्वीकार करते हैं और उसका करोड़ गुना फल देते है। सुदामाके मुट्ठीभर चावलकी भेटसे उसकी बरसोकी भूख भाग गई। बहुतोंके जेल जानेका चाहे कोई फल न हो, पर एक ही शुद्ध आत्माका भक्तिपूर्वक किया हुआ आत्मार्पण कभी निष्फल नही होता। दक्षिण अफ्रीकामे किस-किसका यज्ञ फला इसे कौन जानता है ? पर इतना हम जानते हैं कि वलिअम्माका यज्ञ तो सफल हुआ ही। दूसरी बहनोका यज्ञ भी जरूर सफल हुआ।

स्वदेश-यज्ञमें, जगत-यज्ञमे असख्य आत्माओका होम हो चुका है, हो रहा है और होगा। यही यथार्थ है; क्योकि कोई नही जानता कि कौन शुद्ध है। पर सत्याग्रही इतना तो समझ ही रखे कि उनमे एक भी शुद्ध हो तो उनका यज्ञ फल उपजानेके लिए काफी है। पृथ्वी सत्यके बलपर टिकी हुई है। असत्—असत्य अर्थात् नही, सत्—सत्य अर्थात् है। जब असत्‌का अस्तित्व ही नही है तब उसकी सफलता क्या होगी ? और जो है, उसका नाश कौन कर सकनेवाला है ? इतनेहीमें सत्याग्रहका सम्पूर्ण शास्त्र समाया हुआ है।

: १७ :

मजदूरोंकी धारा

बहनोके इस त्यागका असर मजदूरोपर अद्भुत हुआ। न्यूकैसलके नजदीककी खानोके मजदूरोने अपने औजार फेंक दिये। उनकी धारा नगरकी ओर बह चली। खबर मिलते ही मैंने फिनिक्स छोडा और न्यूकैसलके लिए रवाना हो गया।

इन मजदूरोका अपना घर नही होता। मालिक ही उनके लिए घर बनवाते है। उनकी सडको-गलियोमें लैम्प

लगवाते हैं। मालिक ही उनको पानी भी देते हैं। अर्थात् मजदूर हर तरह पराधीन होते हैं और जैसा कि गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है :

"पराधीन सपनेहुं सुख नाहीं"

ये हड़ताली मेरे पास अनेक प्रकारकी शिकायतें लाने लगे। कोई कहता—"मालिक रास्तेपरकी रोशनी बंद कर रहे हैं।" कोई कहता—"पानी बंद कर रहे हैं।" कोई कहता—"वे हड़तालियोंका सामान कोठरियोंसे बाहर निकालकर फेंक दे रहे हैं।" एक पठान सैयद इब्राहीमने अपनी पीठ दिखाकर कहा— "यह देखो, मुझे कैसा मारा है! मैंने आपके लिए बदमाशको छोड़ दिया है। आपका यही हुक्म है। मैं पठान हूं और पठान कभी मार खाता नहीं, मार मारता है।"

मैंने जवाब दिया—"भाई, तुमने बहुत ही अच्छा काम किया। इसीको मैं सच्ची बहादुरी कहता हूं। तुम जैसे लोगोंसे ही हम जीतेंगे।"

मैंने यों मुबारकबादी तो दी, पर दिलमें सोचा कि बहुतोंपर ऐसी बीती तो हड़ताल नहीं चलेगी। मारको छोड़ दें तो मालिकोंकी शिकायत किस बातकी करें? हड़ताल करनेवालोंकी रोशनी-पानी आदिकी सुविधाएँ मालिक बंद कर दें तो इसमें शिकायतके लिए अधिक स्थान नहीं। पर हो या न हो, लोग ऐसी स्थितिमें कैसे निभा सकते हैं? मुझे कोई उपाय सोच लेना ही होगा। अथवा लोग थककर कामपर वापस जायं इससे तो यही अच्छा है कि वे अपनी हार कबूल कर लें और कामपर लौट जाएं। पर लोग मेरे मुंहसे ऐसी सलाह हरगिज न सुनेंगे। तब एक ही रास्ता था : मजदूर मालिकोंकी कोठरियां खाली कर दें, यानी 'हिजरत' करें।

मजदूर दस-बीस नहीं थे, सकड़ों थे। हजारों होते भी देर न लगती। उनके लिए मकान कहांसे पैदा करूं? खाना

कहासे लाऊ ? हिंदुस्तानसे पैसा मगाना नही था। वहासे पैसेका जो मेंह बरसा वह अभी आरभ नही हुआ था। भारतीय व्यापारी इतना डर गये थे कि वे मुझे खुले तौरपर कोई मदद देनेको तैयार नही थे। उनका व्यापार खान-मालिको और दूसरे गोरोके साथ था। इसलिए वे खुले तौरपर मेरा साथ कैसे देते ? जब कभी मै न्यूकैसेल जाता, उन्हीके यहा उतरता था। इस बार मैने खुद ही उनका रास्ता आसान कर दिया, दूसरी ही जगह उतरनेका निश्चय किया।

मै बता चुका हू कि जो बहनें ट्रासवालसे आई थी वे द्राविड प्रदेशकी थी। वे एक द्राविड कुटुबके यहा, जो ईसाई था, ठहरी थी। यह कुटुब मध्यम स्थितिका था। उसके पास जमीनका एक छोटा-सा टुकड़ा और दो-तीन कमरोका मकान था। मैने यही उतरनेका निश्चय किया। घरके मालिकका नाम लाजरस था। गरीबको किसका डर हो सकता है ? ये लोग मूलत एक गिरमिटिया कुटुबके थे। इसलिए उन्हे और उनके स्वजनोको भी तीन पौडका कर देना होता। गिरमिटियोके कष्टोकी पूरी जानकारी उन्हे होनी ही चाहिए थी और उनके साथ हमदर्दी भी पूरी होनी चाहिए थी। इस कुटुबने मेरा सहर्ष स्वागत किया। मुझे मेहमान बनाना मित्रोके लिए कभी आसान तो रहा ही नही, पर इस वक्त मेरा स्वागत करना आर्थिक नाशका स्वागत करना था और शायद जेलका स्वागत करना भी होता। ऐसे धनिक व्यापारी थोड़े ही हो सकते थे जो अपने आपको ऐसी स्थितिमे डालनेको तैयार हो। अत मैने अपनी और उनकी मर्यादा समझकर तै किया कि मुझे उनको कठिनाईमें नही डालना चाहिए। लाजरस बेचारेको थोड़ी-सी तनख्वाह खोनी पडती तो वह खो देता। उसे कोई जेल ले जाय तो वह चला जाता। पर अपनेसे भी ज्यादा गरीब गिरमिटियोका कष्ट वह कैसे

अनुद्विग्न चित्तसे सहन करता ? इसने देखा कि ट्रांसवालकी बहनें जो उसीके यहां टिकी हुई थी, गिरमिटियोकी मदद करने आकर ज़ेलखाने पहुच गई। भाई लाजरसने सोचा कि उनके प्रति उसका भी कुछ फर्ज है और मुझे आश्रय दे दिया। उसने मुझे आश्रय तो दिया ही, साथ ही अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। मेरे उसके यहा जानेके बाद उसका घर धर्मशाला बन गया। सैकडो आदमी और हर तरहके आदमी चाहे जब आते और जाते। उसके घरके आसपासकी जमीन आदमियोसे खचाखच भर गई। उसका चूल्हा चौबीसो घटे जला करता। उसकी धर्मपत्नीको इसमे जी-तोड मेहनत करनी पडती । फिर भी पति-पत्नी दोनोंके चेहरे हर वक्त हँसते रहते। उनकी मुखाकृतिमे मैंने कभी अप्रसन्नता नही देखी।

पर गरीब लाजरस क्या सैकडो मजदूरोको खिला सकता था ? मजदूरोको मैंने सुना दिया कि उन्हे अपनी हडतालको स्थायी चीज समझकर मालिकोके दिये हुए झोंपडे खाली कर देने चाहिए। जो चीजे बिक सकती हो बेच डालो, बाकी सामानको कोठरीमें पडा रहने दो। मालिक उसको हाथ नही लगायगे। पर और बदला चुकानेके लिए वे उसे उठाकर फेंक दे तो मजदूरोको यह जोखिम भी उठानी होगी। मेरे पास वे पहननेके कपडे और ओढनेके कबलके सिवा और कोई भी चीज न लाये। जबतक हडताल चलती रहेगी और जबतक वे जेलके बाहर रहेगे तबतक मै उन्हीके साथ रहूगा और खाऊगा-पिऊगा। इन शर्तोंके साथ वे खानोसे बाहर निकल आये तभी वे टिक सकते है और कौमकी जीत हो सकती है। जिसमे इसकी हिम्मत न हो वह अपने कामपर लौट जाय। जो कामपर वापस जाय, उसका कोई तिरस्कार न करे, उसको तंग न करे। इन शर्तोंको माननेसे किसीने इन्कार किया हो

इसकी याद मुझे नही है । जिस दिन मैंने कहा उसी दिनसे हिजरत करनेवालो—गृहत्यागियोका ताता लग गया । सब अपने बीवी-बच्चोको साथ लिए सिरपर कपडोकी गठरी रखे पहुचने लगे । मेरे पास घरके नामपर तो सिर्फ खली जमीन थी । सौभाग्यवश उस मौसममे न वर्षा हो रही थी और न ठड ही पड रही थी ।

मेरा विश्वास था कि भोजनका भार उठानेमे व्यापारी-वर्ग पीछे न रहेगा । न्यूकैसेलके व्यापारियोने पकानेके लिए बरतन दिये और चावल-दालके बोरे भेजे । दूसरे स्थानोसे भी दाल, चावल, सब्जी, मसाले आदिकी वर्षा होने लगी । जितनेकी आशा मैं रखता था उससे कही अधिक ये चीजें मेरे पास आने लगी। सब जेल जानेको तैयार न हो; पर सबकी हमदर्दी तो थी ही। सब इस यज्ञमें यथाशक्ति सहायताके रूपमे अपना भाग अर्पण करनेको तैयार थे । जो कुछ देने लायक न थे उन्होंने अपनी सेवा देकर मदद की । इन अनजान अपढ आदमियोको सम्हालनेके लिए जाने-पहचाने हुए और समझदार स्वयसेवक तो दरकार थे ही । वे मिल गये और उन्होंने अमूल्य सहायता की । उनमेंसे बहुतेरे तो गिरफ्तार भी हुए । यो सबने यथाशक्ति सहायता की और हमारा रास्ता आसान हो गया ।

आदमियोकी भीड बढने लगी । इतने बडे और लगातार बढते जानेवाले मजदूरोके मजमेको एक ही स्थानमे बिना किसी काम-धंधेके समेट रखना नामुमकिन नही तो खतरनाक जरूर था । उनकी शौच आदिकी आदतें तो सुथरी होती ही नही थी । इस समुदायमे कितने ही ऐसे थे जो अपराध करके जेल भी हो आये थे । कोई हत्याका अपराधी था, कोई चोरीके जुर्ममे कैदकी सजा भुगतकर छूटा था, कोई व्यभिचारके अपराधमें जेल काटकर आया था । हडताली मजदूरोमे नीतिका भेद मेरे किये नही हो सकता था । भेद करू भी

तो अपना भेद मुझे कौन वतलाता ? मैं काजी वन वैठूं तो विवेकहीन वनूं । मेरा काम केवल हड़ताल चलाना था । इसमें दूसरे सुधारोंको मिलाना मुमकिन नही था । छावनी-मे नीतिका पालन करना मेरा काम था । आनेवाले पहले कैसे थे, इसकी जाच करना मेरा फर्ज नही था । यह शिवकी वरात एक जगह जमकर वैठ जाय तो अपराध होना निश्चित था । अचरजकी वात तो यह थी कि जितने दिन मैंने यहां विताये वे शातिसे वीते । सव लोग ऐसी शातिसे रहे मानों उन्होंने अपना आपद्धर्म समझ लिया हो ।

मुझे उपाय सूझा . इस दस्तेको ट्रांसवाल ले जाऊं और जैसे पहलेके १६ आदमी गिरफ्तार हो गये वैसे इन्हे भी जेलमे विठा दूं । इन लोगोको छोटे-छोटे जत्थोंमें वांटकर उनसे सरहद पार कराऊं । यह विचार ज्योंही मनमे आया त्योंही उसे रद कर दिया । इसमे वहुत वक्त जाता और सामुदायिक कार्यका जो असर होता वह छोटे-छोटे जत्थोंके जेल जानेका न होता ।

मेरे पास कोई पांच हजार आदमी इकट्ठा हुए होगे । इन सवको ट्रेनसे नही ले जा सकता था । इतना पैसा कहासे लाऊ ? और इसमे लोगोकी परीक्षा भी नही हो सकती थी । न्यूकैसेलसे ट्रांसवालकी सरहद ३६ मील थी । नेटालका सरहदी गांव चार्ल्सटाउन था, ट्रांसवालका वाक्सरस्ट । अंतमे मैंने पैदल यात्रा करनेका ही निश्चय किया । मजदूरोंके साथ मशविरा किया । उनके साथ स्त्रियां, वच्चे आदि थे । अत कुछने आनाकानी की । मेरे पास दिल कड़ा करनेके सिवा दूसरा उपाय ही नही था । मैंने लोगोसे कह दिया कि जिसे खान-पर वापस जाना हो वह जा सकता है । पर कोई वापस जाने-को तैयार न था । जो लोग अपंग थे उन्हे ट्रेनसे भेजनेका निश्चय किया । वाकीके सव लोगोने कहा कि हम पैदल चलकर

चार्ल्सटाउन जानेको तैयार है। यह मंजिल दो दिनमें पूरी करनी थी। अंतमें सभी इस निश्चयसे प्रसन्न हुए। लोगोंने यह भी समझा कि इससे बेचारे लाजरस-परिवारको कुछ राहत मिलेगी। न्यूकैसेलके गोरोंको प्लेग फैलनेका डर लग रहा था और उसके प्रतीकारके लिए अनेक उपाय करनेकी बात सोच रहे थे। वे भयमुक्त हुए और उनकी कार्रवाइयोंके डरसे हम भी मुक्त हुए।

इस कूचकी तैयारी चल रही थी कि मुझे खानमालिकोंसे मिलनेका बुलावा आया। मैं डर्बन गया; पर इस कहानी-का उल्लेख पृथक् प्रकरण में करूंगा।

: १८ :

खानमालिकोंके पास और उसके बाद

खानमालिकोंके बुलावेपर मैं उनसे मिलने डर्बन गया। मैंने समझा कि मालिकोंपर कुछ असर हुआ है। इस बातचीतसे कुछ मिलेगा यह आशा तो मैं नहीं रखता था। पर सत्याग्रहीकी नम्रताकी कोई हद नहीं होती। वह समझौतेके एक भी अवसरको जाने नहीं देता। इससे कोई उसको डरपोक माने तो वह अपने आपको डरपोक मानने देता है। जिसके हृदयमें विश्वास और विश्वाससे उपजनेवाला बल है वह दूसरोंकी अवगणनाकी परवा नहीं करता। वह अपने अन्तर्बलका भरोसा रखता है। इससे सबके सामने नम्र रहकर वह जगतके जनमतको जगाता और अपने कार्यकी ओर खींचता है।

इससे मुझे मालिकोंका निमन्त्रण स्वागत करने योग्य जान पड़ा। मैं उनके पास पहुंचा। मैंने देखा कि हवामें गर्मी है। मुझसे स्थिति समझनेके बदले उनके प्रतिनिधिने मुझसे

जिरह शुरू कर दी। मैंने उसको मुनासिब जवाब दिये। मैंने कहा—"यह हड़ताल बंद कराना आपके हाथमें है।"

उनकी ओरसे जवाब मिला—"हम कोई अधिकारी नहीं हैं।"

मैंने कहा—"आप अधिकारी नहीं हैं, फिर भी बहुत कुछ कर सकते हैं। आप मजदूरोंका केस लड़ सकते हैं। आप सरकारसे तीन पौंडका कर उठा देनेकी मांग करें तो मैं यह नहीं मानता कि वह उसे नामंजूर करेगी। आप दूसरोंका मत अपने अनुकूल बना सकते हैं।"

"पर सरकारके लगाये हुए करके साथ हड़तालका क्या सबब? मालिक मजदूरोंको कष्ट देते हों तो आप उनसे बाकायदा आवेदन करें।"

"मजदूरोंके पास हड़ताल करनेके सिवा इसका रास्ता मुझे नहीं दिखाई देता। तीन पौंडका कर भी मालिकोंकी खातिर ही लगाया गया है। मालिक मजदूरोंकी मेहनत चाहते हैं, पर उनकी आजादी नहीं चाहते। इससे इस करको दूर करानेके लिए मजदूरोंके हड़ताल करनेमें मैं कुछ भी अनीति या मालिकोंके प्रति अन्याय नहीं देखता?"

"तो आप मजदूरोंसे कामपर वापस जानेको नहीं कहेंगे?"

"मैं लाचार हूं।"

"आप इसका नतीजा जानते हैं?"

"मैं सावधान हूं। अपनी जिम्मेदारीका मुझे पूरा खयाल है।"

"बेशक, इसमें आपका जाता ही क्या है? पर इन बहकाये हुए मजदूरोंकी जो हानि होगी वह क्या आप भर देंगे?"

"मजदूरोंने सोच-समझकर और अपने नुकसानको जानते-समझते हुए यह हड़ताल की है। मनुष्यके लिए आत्म-सम्मानकी हानिसे बड़ी हानि मैं सोच ही नहीं सकता। मजदूरोंने इस बातको समझ लिया है, इसका मुझे संतोष है।"

इस तरहकी बातचीत हुई। पूरी बातचीत मुझे इस वक्त याद नही आ सकती। जो बातें याद रह गई हैं उन्हे थोडेमें दे दिया है। मैं इतना जान सका कि मालिकोको अपना पक्ष पंगु जान पड़ा; क्योकि सरकारके साथ उनकी बात-चीत पहलेसे चल रही थी।

डर्बन जाते और वहासे लौटते हुए मैंने देखा कि रेलवेके गार्डो आदिपर इस हड़ताल और हडतालियोकी शांतिका बहुत अच्छा असर हुआ। मेरा सफर तो तीसरे ही दरजेमें चल रहा था। पर वहां भी गार्ड आदि रेलकर्मचारी मुझे घेर लेते, दिलचस्पीभरे आग्रहके साथ हमारी लड़ाईके समाचार पूछते और सब हमारी विजय मनाते। मुझे अनेक प्रकारके छोटे-मोटे सुभीते कर देते। उनके साथ अपना सबध मैं निर्मल रखता। एक भी सुभीतेके लिए मैं उन्हें लालच न देता। अपनी इच्छासे वे भलमनसी बरतें तो मुझे उससे प्रसन्नता थी, पर भलमनसी खरीदनेकी कोशिश कभी नही की। गरीब, अपढ, नासमझ इतनी दृढ़ता दिखायें यह उनके लिए अचभेकी बात थी, और दृढ़ता तथा वीरता ऐसे गुण हैं जिनकी छाप विरोधीपर पडे बिना नही रहती।

मैं न्यूकैसेल लौटा। मजदूरोंकी धारा तो चली ही आ रही थी। उनको सारी बातें बारीकीके साथ समझा दी। यह भी कह दिया कि आप लोग कामपर वापस जाना चाहते हो तो जा सकते है। मालिकोंकी धमकीकी बात भी बताई और भविष्यमे जो जोखिमे उठानी थी उनका वर्णन भी कर दिया। कह दिया कि लड़ाई कब खतम होगी यह भी नही कहा जा सकता। जेलके कष्ट समझा दिया। फिर भी मजदूर अडिग रहे। "जबतक आप लडनेको तैयार होगे तबतक हम हिम्मत हारनेवाले नही। हमें कष्ट सहनेका अभ्यास है। आप हमारी चिता न करे।" यह निर्भय जवाब मुझे उनसे मिला।

मेरे लिए तो अब कूच करना ही बाकी रह गया था। एक दिन शामको लोगोंसे कह दिया कि उन्हें अगले दिन भोरमें कूच शुरू करनी होगी (२८ अक्तूबर १९१३)। रास्तेमें जिन नियमोंका पालन करना था वे सुना दिये गये। ५-६ हजारके मजमेको सम्हालना ऐसी-वैसी बात नहीं थी। उनकी गिनती तो मेरे पास थी ही नहीं, न था नाम-धाम। जो रह गये सो रह गये। उतनेहीको अपने लिए काफी मान लिया। रास्तेके लिए हरएकको तीन पाव रोटी (डेढ़ पौंड) और आधी छटांक शक्करके सिवा और कोई खूराक देनेकी गुंजाइश नहीं थी। इसके अतिरिक्त यह कह दिया था कि हिंदुस्तानी व्यापारी अगर रास्तेमें कुछ देंगे तो वह ले लूंगा। पर लोगोंको रोटी और शक्करसे ही संतोष करना था। बोअर-युद्ध और जूलू-बगावतमें मुझे जो अनुभव प्राप्त हुआ था वह इस वक्त बहुत काम आया। जरूरतसे ज्यादा कपड़े साथ न रखनेकी शर्त तो थी ही। रास्तेमें कोई किसीका माल न ले, कोई सरकारी कर्मचारी या यूरोपियन मिले और गाली दें या मारे भी तो बर्दाश्त कर लें, पुलिस गिरफ्तार करें तो गिरफ्तार हो जाय। मैं गिरफ्तार कर लिया जाऊं तो भी कूच जारी रहे आदि बातें समझा दीं। मेरे स्थानपर एकके बाद दूसरे कौन लोग नियुक्त होंगे यह भी बता दिया।

लोगोंने सब बातें समझ लीं। काफला सहीसलामत चार्ल्सटाउन पहुंचा। वहांके व्यापारियोंने हमारी खूब मदद की। अपने मकानोंको काममें लाने दिया। मस्जिदके सहनमें खाना पकानेकी इजाजत दे दी। कूचके वक्त जो खूराक दी जाती वह पड़ावपर पहुंचनेतक चुक जाती। इसलिए हमें खाना पकानेके बरतन भी चाहिए थे। व्यापारियोंने उन्हें भी खुशीसे हाजिर कर दिया। चावल आदि तो हमारे पास काफी हो गया था। व्यापारियोंने इसमें भी अपना हिस्सा दिया।

चार्ल्सटाउन छोटा-सा गांव कहा जा सकता है। इस वक्त उसमे मुश्किलसे एक हजारकी आबादी रही होगी। उसमे इतने आदमियोंका समावेश कर लेना कठिन था। स्त्रियो और बच्चोंको ही मकानोमे रखा। बाकी सबको मैदानमे ही ठहराया।

यहांकी मधुर स्मृतियां कितनी ही है। कुछ कड़वी भी है। मधुर स्मरण मुख्यत. चार्ल्सटाउनके स्वास्थ्य-विभाग और उसके अधिकारी डाक्टर ब्रिस्कोके है। गांवकी आबादी इतनी बढ़ी हुई देखकर वह घबरा गये; पर कोई कडा उपाय करनेके बजाय मुझसे ही मिले। कुछ सुझाव पेश किये और मेरी मदद करनेकी भी बात कही। यूरोपके लोग तीन बातोका खास तौरसे खयाल रखते है—हम नही रखते—पानीकी सफाई, रास्तेकी सफाई और पाखानेकी सफाई। मुझे यह करना था कि रास्तेपर पानी न गिराने दू, जहां-तहां लोगोको पेशाब न करने दू और कही कूडा-करकट न फेंकने दू। वह जहा बतायें वही लोगोंको टिकाऊं और उस स्थानकी सफाईके लिए अपने आपको जिम्मेदार समझूं। इन सारी सूचनाओको मैंने धन्य-वाद-सहित स्वीकार किया। मुझे पूरी शांति हो गई।

अपने देशवासियोसे इन नियमोका पालन कराना बहुत ही कठिन काम है। पर मजदूर भाइयो और साथियोंने उसे आसान कर दिया। मेरा सदा यह अनुभव रहा है कि सेवक सेवा करे और हुक्म न चलाये तो बहुत काम हो सकता है। सेवक खुद अपनी देहको काममें लगाये तो दूसरे भी लगायेंगे। इसका पूरा अनुभव मुझे इस छावनीमे हुआ। मै और मेरे साथी झाड लगाना, मैला उठाना आदि काम करते तनिक भी नही हिचकते थे। इससे लोगोंने ये काम उत्साहसे उठा लिये। यदि हम ऐसा न करते तो हुक्म किस पर चलाते? सब सरदार बनकर दूसरोंपर हुक्म चलायें तो अतमें काम पडा ही रह

जाता । पर जहां सरदार खुद ही सेवक बन जाय वहां दूसरे सरदारीका दावा कैसे कर सकते हैं ?

साथियोंमें केलनबेक पहुंच गये थे । मिस श्लेजिन भी उपस्थित हो गई थी । इस बहनकी श्रमशीलता, सजग चिता और सचाईकी जितनी भी सराहना करूं कम होगी । हिंदुस्तानियोमे स्वर्गीय पी. के. नायडू और अलबर्ट क्रिस्टोफरके नाम तो मुझे इस वक्त याद आ रहे हैं। दूसरे भी थे जिन्होने भरपूर मेहनत की और अच्छी सहायता की ।

भोजनमें चावल और दाल दी जाती। सब्जी हमारे पास काफी जमा हो गई थी, पर उसको अलग पकानेका सुभीता नहीं था। इसलिए दालमे ही डाल दी जाती । अलग पकानेको समय न मिलता, इतने बरतन भी नही थे । रसोईमे चौबीसो घटे चूल्हा जला रहता; क्योकि चाहे जिस वक्त भूखे-प्यासे लोग आ पहुचते । न्यूकैसेलमे किसीको रहना नही था । सबको रास्तेकी खबर थी । इसलिए खानसे निकलकर वे सीधे चार्ल्सटाउन पहुचते ।

मनुष्योके धीरज और सहनशीलताका विचार करता हू तो भावनाकी महिमा मेरे सामने मूर्तिमान् होकर खड़ी हो जाती है । भोजन पकानेवालोंमे मुखिया मै था । कभी दालमे पानी ज्यादा हो जाता तो कभी वह कच्ची रहती । कभी तरकारी पकी न होती तो कभी भात ही कच्चा रह जाता । ऐसा भोजन प्रसन्न चित्तसे ग्रहण कर लेनेवाले मैंने दुनियामें अधिक नही देखे हैं । इसका उलटा दक्षिण अफ्रीकाकी जेलमें यह अनुभव भी हुआ कि खाना जरा कम, या कच्चा होने या जरा देरसे मिलनेपर सुशिक्षित माने जानेवालोका भी पारा चढ़ जाता था ।

परसनेका काम पकानेसे भी अधिक कठिन था और वह मेरे ही जिम्मे था । कच्चे-पक्केका हिसाब तो मुझे देना ही

होता। भोजन कम हो और खानेवाले ज्यादा हो जायं तो थोडा देकर सबका सतोष कराना भी मेरा ही कर्तव्य होता। बहनोके सामने मै थोडा खाना रखता तो क्षणभर मेरी ओर डाटनेकी निगाहसे देखती और फिर मेरी स्थिति समभकर हँसते हुए चल देती। वह दृश्य मुझे जिदगीभर भूलनेका नही। मै कह देता कि मै लाचार हू। मेरे पास पका हुआ भोजन थोडा है और खानेवाले बहुत है। इसलिए मुझको उतना ही देना होगा कि सभी को थोडा-थोडा मिल जाय। इसपर वे स्थितिको समभ जाती और 'सन्तोपम्' कहकर हँसते हुए चल देती।

ये सब तो मधुरस्मरण हुए। कडवे स्मरण ये है कि लोगोको थोडी फुरसत मिली तो उसका उपयोग आपसके झगडे-टंटेमें होने लगा। इससे भी बुरी बात यह हुई कि व्यभिचारकी घटनाएं हुई। स्त्री पुरुपोको साथ तो रखना ही पडता। भीड भी वैसी ही थी, व्यभिचारीको शर्म क्यों आने लगी ? ये घटनाएं ज्योंही घटित हुई मैं मौकेपर जा पहुचा। अपराधी शर्माये। उनको अलग रखा। पर जो मेरे कानतक नही पहुची, ऐसी घटनाए कितनी हुई होंगी, यह कौन कह सकता है ? इस विपयका अधिक विस्तारसे वर्णन करना बेकार है। इतना यह जतानेके लिए लिख दिया कि सब कुछ आसान नही था और ऐसी घटनाए घटित हुई तब भी किसीने मेरे साथ उजड्डपनका बरताव नही किया। नीति-अनीतिका भेद अधिक न जाननेवाले जंगली जैसे लोग भी अच्छे वातावरणमे कैसे सीधे चलते है, इसे मंने अनेक अवसरोपर देख लिया है और इसे जान लेना अधिक आवश्यक और लाभदायक है।

: १६ :

ट्रांसवालमें प्रवेश—१

अब हम १९१३के नवंबर महीनेके आरंभमें हैं। कूच करनेके पहले दो घटनाओंका उल्लेख कर देना उचित होगा। न्यूकैसेलमें द्राविड़ बहनोंको जेलकी सजा मिली तो डर्बनकी बाई फातिमा महतावसे न रहा गया। इसलिए वह भी अपनी मां हनीफा बाई और ७वरसके लड़केके साथ जेल जानेको निकल पड़ी। मां-बेटी तो पकड़ ली गईं, पर बेटेको गिरफ्तार करनेसे सरकारने साफ इन्कार कर दिया। पुलिसने फातिमा बाईकी उंगलियोंकी निशानी लेनेकी कोशिश की, पर वह निडर रही और उंगलियोंकी निशानी नहीं दी।

इस वक्त हड़ताल पूरे जोरमें चल रही थी। उसमें पुरुषोंकी तरह स्त्रियां भी आकर शामिल हो रही थीं। दो स्त्रियोंकी गोदमें बच्चे थे। एक बच्चेको कूचमें सर्दी लग गई और वह मौतकी गोदमें चला गया। दूसरा बच्चा एक नालेको लांघते हुए माकी गोदसे गिर गया और प्रवाहमें बहकर डूब गया; पर वीर माताने दिल छोटा नहीं किया। दोनोंने कूच जारी रखी। एकनें कहा—"हम मरे हुओंका शोक करके क्या करेंगी? वे कहीं लौटकर आ सकते हैं? जीवितोंकी सेवा करना हमारा धर्म है।" ऐसी शांत वीरता, ईश्वरमें ऐसी दृढ़-आस्था, ऐसे ज्ञानकी मिसालें गरीबोंमें मुझे अकसर मिली हैं।

ऐसी ही दृढ़तासे चार्ल्सटाउनमें स्त्री-पुरुष अपने कठिन धर्मका पालन कर रहे थे। पर हम यहां कुछ शांतिके लिए नहीं आये थे। शांति जिसे दरकार हो वह उसे अपने अंतरमें प्राप्त करे। बाहर तो जहां देखो और देखना आता हो तो "यहां शांति नहीं मिलती" की ही तख्तियां लगी दिखाई देंगी।

पर इसी अशांतिके बीच मीराबाई-सरीखी भक्त हाथमें जहरका प्याला लेकर हँसते हुए मुहको लगाती है। अपनी अंधेरी कोठरीमें बैठा हुआ सुकरात अपने हाथमें जहरका प्याला थामे अपने मित्रको गूढज्ञानका उपदेश करता है और कहता है—जो शांति चाहता हो वह उसे अपने अंतरमें तलाश करे।

इसी शांतिके बीच सत्याग्रहियोका दस्ता पडाव डालकर, सवेरे क्या होगा इसकी चिंता न करते हुए पडा था।

मैंने सरकारको चिट्ठी लिखी थी कि हम ट्रांसवालमें बसनेके इरादेसे प्रवेश करना नही चाहते। हमारा प्रवेश सरकारके वचनभंगके विरुद्ध अमली फरियाद है और हमारे आत्म-सम्मानके भंगसे होनेवाले दुःखका शुद्ध निदर्शन है। हमें तो सरकार यही चार्ल्सटाउनमें गिरफ्तार कर ले तो हम निश्चित हो जाय। वह ऐसा न करे और हममेंसे कोई छिपकर ट्रांसवाल-में दाखिल हो जाय तो हम उसके लिए जिम्मेदार नही होंगे। हमारी लड़ाईमें गुप्त कुछ है ही नही। व्यक्तिगत स्वार्थ किसीको साधना नहीं है। किसीका छिपकर प्रवेश करना हमें पसंद नही होगा, पर जहां हजारों अनजान आदमियोंसे काम लेना हो और जहां प्रेमके सिवा दूसरा कोई बंधन न हो वहा किसीके कामके लिए हम जिम्मेदार नही हो सकते। फिर सरकार यह भी जान ले कि अगर उसने तीन पौंडका कर उठा दिया तो गिरमिटिए कामपर लौट जायंगे और हड़ताल बंद हो जायगी। अपने दूसरे कष्ट दूर करनेके लिए हम उन्हे सत्याग्रहमे शामिल नही करेंगे।

अतः स्थिति ऐसी अनिश्चित थी कि सरकार कब गिर-फ्तार करेगी यह कहा नही जा सकता था। पर ऐसी स्थितिमें सरकारके जवाबकी राह अधिक दिन नही देखी जा सकती थी। एक-दो डाककी ही राह देखी जा सकती थी। इसलिए हमने

निश्चय किया कि सरकार हमें गिरफ्तार न करे तो तुरंत चार्ल्स-टाउन छोड़ दें और ट्रांसवालमे दाखिल हो जायं। रास्तेमें पुलिस न पकड़े तो काफिला रोज आठ दिनतक २० से २४ मील-तक कूच करता जाय। हमारा इरादा आठ दिनमे टाल्सटाय फार्म पहुंचनेका था। हमने सोचा था कि जबतक लड़ाई खतम नही होती तबतक सब वही रहें और फार्ममे काम करके आजीविका पैदा करें। मि० केलनबेकने सारा प्रबंध कर रखा था। काफिले-के रहनेके लिए कच्चे घर बनवाने और यह काम उससे ही लेनेकी बात सोची गई थी। इस बीच छोटे-छोटे खेमे खड़े करके बूढ़े, कमजोर उनमे रखे जायं और सबल शरीरवाले खुले मैदानमे पड़े रहें। इसमे कठिनाई यही थी कि बरसातका मौसम आ रहा था और इस मौसममे सबल-निर्बल सबको कोई आश्रय चाहिए ही। पर मि० केलनबेक इस कठिनाईका उपाय कर लेनेकी हिम्मत रखते थे।

काफिलेने कूचकी दूसरी तैयारियां भी कर ली। चार्ल्स-टाउनके भले अंग्रेज डाक्टर ब्रिस्को (जिलेके हेल्थ अफसर)ने हमारे लिए दवाइयोंका एक छोटा-सा बक्स तैयार कर दिया और अपने कुछ औजार भी दिये, जिन्हें मुझ-सा अनाड़ी आदमी भी इस्तेमाल कर सकता था। यह बक्स हमें खुद लादकर ले जाना था, क्योंकि काफिलेके साथ कोई भी सवारी नहीं रखनी थी। इससे पाठक समझ सकते हैं कि इस बक्समे कम-से-कम दवाएं रही होंगी। वे इतनी भी नही थी कि एक वक्तमे सौ आदमियोके लिए काफी हो सके। इतनी कम दवाएं साथ रखनेका खास कारण तो यह था कि हमें रोज किसी-न-किसी गांवके पास पड़ाव करना था। इसलिए जो दवा चुकती, वह मिल सकती थी और हमें अपने साथ एक भी रोगी या अपंग आदमी को नही रखना था। उन्हें तो रास्तेमें ही छोड़ देनेका निश्चय किया गया था।

खानेके लिए रोटी और शाकके सिवा और कुछ तो था ही नही। पर रोटियां आठ दिन वरावर मिलती रहें, इसका क्या उपाय हो? रोज-की-रोज बांट देनी थी। इसका उपाय तो एक ही था कि हर मंजिलपर हमारे लिए कोई उन्हे पहुंचा दिया करे। यह कौन करे? हिंदुस्तानी वावर्ची तो थे ही नही। फिर हर गावमे डवल रोटी वनाने-बेचनेवाले नही थे। गावोंमे रोटी शहरोसे जाती। अत. कोई वावर्ची तैयार करके दे और रेलवे उन्हे पहुंचा दे तभी हमें रोटिया मिल सकती थी। वोक्सरस्ट (ट्रांसवालके चार्ल्सटाउनके नजदीकका सरहदी स्टेशन) चार्ल्सटाउनसे वड़ा नगर था। वहां डवल रोटी वनाने वालेकी एक वड़ी (यूरोपियन) दूकान थी। उसने खुशीसे हर जगह रोटियां पहुंचा देनेका इकरार किया। हमारी मजबूरी जानकर उसने हमसे वाजार-भावसे अधिक लेनेकी भी कोशिश नही की। वढ़िया आटेकी वनी रोटियां दी। उसने वक्तसे रोटियां रेलवेके पास पहुंचाई और रेलवे कर्मचारियोंने—ये भी यूरोपियन ही थे—उन्हें ईमानदारीके साथ हमारे पास पहुंचा दिया। पहुंचानेमें पूरी सावधानी रखी और हमारे लिए कुछ सुभीते भी कर दिये। वे जानते थे कि हमारी किसीसे शत्रुता नहीं। हमें किसीको नुकसान नही पहुंचाना था। हमे तो कष्ट सहन कर न्याय प्राप्त करना था। इससे हमारे आसपासका वातावरण शुद्ध हो गया और वना रहा। मानव-जातिका प्रेमभाव प्रकट हुआ। सवने अनुभव किया कि हम ईसाई, यहूदी, हिंदू, मुसलमान कोई भी हो, सव भाई-भाई ही हैं।

यों कूचकी सारी तैयारी कर लेनेके वाद मैंने फिर समझौतेकी कोशिश की। चिट्ठियां, तार आदि तो भेज ही चुका था। मैंने तय किया कि मेरा अपमान तो होगा ही; पर उसका खतरा उठाकर भी मुझे टेलीफोन भी कर ही लेना

चाहिए। चार्ल्सटाउनसे प्रिटोरियाको टेलीफोन था। मैंने जनरल स्मट्सको टेलीफोन किया। उनके मंत्रीसे मैंने कहा—"जनरल स्मट्ससे कहिये कि मेरी कूचकी पूरी तैयारी हो चुकी है। वोक्सरस्टके लोग उत्तेजित हैं। वे शायद हमारी जानका भी नुकसान करें। ऐसी धमकी तो दे ही चुके हैं। यह परिणाम वह (जनरल स्मट्स) भी नहीं चाहेंगे। वह तीन पौंडका कर उठानेका वचन दे दें तो मुझे कूच नहीं करना है। मुझे कानून तोड़नेके लिए ही कानून नहीं तोड़ना है। मैं इसके लिए लाचार हो गया हूं। वह मेरी इतनी प्रार्थना न सुनेंगे?" आधे मिनटमें जवाब मिला—"जनरल स्मट्स आपसे कभी कोई सरोकार नहीं रखना चाहते। आपकी मर्जीमें जो आये वह करें।" टेलीफोन बंद!

यह फल मैंने सोच ही रखा था। हां, ऐसी रुखाईकी आशा नहीं रखता था। जनरल स्मट्सके साथ सत्याग्रहके बादका मेरा राजनैतिक संबंध छः सालसे माना जा सकता था। अतः मैं उनसे शिष्ट, विनययुक्त उत्तरकी आशा रखता था, पर उनकी विनयसे मुझे फूल नहीं जाना था। वैसे ही इस अविनयसे ढीला भी नहीं पड़ा। अपने कर्तव्यकी सीधी रेखा मुझे साफ दिखाई दे रही थी। अगले दिन (६ नवंबर १९१३) नियतकालका (६॥ बजे सवेरे) घंटा बजनेपर हमने प्रार्थना की और ईश्वरका नाम लेकर कूच कर दिया। काफिलेमें २०३७ पुरुष, १२७ स्त्रियां और ५७ बच्चे थे।
१०३७ / १२७ / ५७

: २० :

ट्रांसवालमें प्रवेश—२

इस प्रकार मजमा कहिये, काफिला कहिये, यात्रीसमुदाय

कहिये नियत समयपर रवाना हो गया। चार्ल्सटाउनसे एक मीलके फ़ासलेपर वोक्सरस्टका नाला पड़ता है। उसको लांघा और वोक्सरस्ट या ट्रांसवालमें दाखिल हुए। इस नालेके सिरे-पर घुड़सवार पुलिस खड़ी थी। मैं पहले उसके पास गया और लोगोंसे कह दिया था कि जब मैं इशारा करूं तब वे प्रवेश करें। पर मैं पुलिससे बात कर ही रहा था कि शांति-सेनाने हमला बोल दिया और लोग नालेको लांघ आये। घुड़-सवारोंने उन्हें घेर लिया, पर यह काफिला ऐसा न था कि यों रोके रोका जा सके। पुलिसका इरादा हमें गिरफ्तार करनेका तो था ही नहीं। मैंने लोगोंको शांत किया और पंक्तिबद्ध होकर चलनेको समझाया। पांच-सात मिनटमें सारी गड़बड़ दूर हो गई और ट्रांसवालमें हमारा दाखिल होना शुरू हो गया।

वोक्सरस्टके लोगोंने दो दिन पहले ही सभा की थी। उसमें हमें अनेक प्रकारकी धमकियां दी गई थीं। कुछने कहा था कि हिंदुस्तानी ट्रांसवालमें दाखिल हुए तो हम गोलियोंसे उनका स्वागत करेंगे। मि० केलनबेक इस सभामें गोरोंको समझानेके लिए गये थे। कोई उनकी बात सुननेको तैयार नहीं था। कुछ लोग तो उन्हें मारनेके लिए खड़े हो गये। मि० केलनबेक पहलवान हैं। उन्होंने सैंडोसे कसरतकी तालीम ली है। उन्हें डराना कठिन था। एक गोरेने उन्हें द्वन्द्वयुद्ध-के लिए ललकारा। मि० केलनबेकने जवाब दिया—"मैंने शांति-धर्मको स्वीकार किया है, इसलिए यह (द्वन्द्वयुद्ध) तो मुझसे नहीं हो सकेगा। पर मुझपर जिसको प्रहार करना हो वह खुशीसे कर ले। मगर इस सभामें तो मैं बोलकर ही रहूंगा। आपने सभी यूरोपियनोंको इसमें आनेका सार्व-जनिक निमंत्रण दिया है। सभी यूरोपियन आपकी तरह निर्दोष मनुष्योंको मारनेको तैयार नहीं। यही सुनानेके लिए

में यहां आया हूं। एक यूरोपियन ऐसा भी है जो आपको बता देना चाहता है कि आपने हिंदुस्तानियोंपर जो इलजाम लगाये हैं वे गलत हैं। आप जो सोचते हैं वह हिंदुस्तानी नहीं चाहते। उन्हें न आपका राज्य चाहिए, न वे आपसे लड़ना चाहते हैं। उनकी मांग तो शुद्ध न्यायकी है। जो लोग ट्रांसवालमें दाखिल होना चाहते हैं वे वहां बसनेके लिए नहीं जाना चाहते। उनपर अन्यायकारी कर लगाया गया है। उसके खिलाफ असली फरियाद करनेके लिए उन्हें दाखिल होना है। वे बहादुर हैं। वे लड़ाई-झगड़ा नहीं करेंगे। आपसे लड़ेंगे नहीं; पर आपकी गोलियां खाकर भी ट्रांसवालमें दाखिल तो होंगेही। वे आपकी गोलियों या भालोंसे डरकर पीछे कदम हटानेवाले नहीं। उन्हे स्वयं कष्ट सहनकर आपका दिल पिघलाना है। वह पिघलेगा ही। इतना ही कहनेके लिए में यहां आया हूं। यह कहकर मैंने तो आपकी सेवा ही की है। आप चेते, अन्यायसे बचें।" इतना कहकर मि० केलनबेक अपनी जगहपर बैठ गये। लोग कुछ लज्जित हुए। लड़नेको ललकारनेवाला पहलवान तो उनका दोस्त हो गया।

पर इस सभाकी हमें खबर थी, इसलिए वोक्सरस्टके गोरोंकी ओरसे कोई उपद्रव हो तो हम उसके लिए तैयार थे। सरहदपर जो इतनी बड़ी पुलिस इकट्ठी कर रखी गई थी उसका अर्थ यह भी हो सकता है कि गोरोंको मर्यादाका उल्लंघन न करनेसे रोका जाय। जो हो, हमारा जलूस वहांसे शांति-पूर्वक गुजर गया। किसी गोरेके कोई शरारत करनेकी याद मुझे नहीं है। सब यह नया कौतुक देखनेको निकल पड़े। उनमेंसे कितनोंकी आंखोंमें मित्रताकी झलक भी थी।

हमारा मुकाम पहले दिन वोक्सरस्टसे कोई आठ मीलपर पड़नेवाला पामफोर्ड नामका स्टेशन था और हम शामके ५-६ बजेतक वहां पहुंच गये। लोगोंने रोटी और शक्करका

आहार किया और मदानमें लेट गये। कोई भजन गाता था, कोई वातें करता था। कुछ स्त्रियां रास्तेमें थक गईं। अपने बच्चोंको गोदमें लेकर चलनेकी हिम्मत तो उन्होंने की थी। पर और आगे जाना उनकी शक्तिके बाहर था। इसलिए अपनी चेतावनीके अनुसार मैंने उन्हें एक भले हिंदुस्तानीकी दुकानमें छोड़ दिया और कह दिया कि हम टाल्सटाय फार्म पहुंच जाएं तो उनको वहां भेज दें। हम गिरफ्तार कर लिये जाएं तो उनको घर भेज दें। उस व्यापारी भाईने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली।

ज्यों-ज्यों अधिक रात होती गई त्यों-त्यों सब शोरगुल शांत होता गया। मैं भी सोनेकी तैयारीमें था। इतनेमें खड़-खड़ाहट सुनी। मैंने एक यूरोपियनको लालटेन लिए आते देखा। मैं समझ गया। मुझे कोई तैयारी तो करनी ही नहीं थी। पुलिस-अफसरने मुझसे कहा—"आपके लिए मेरे पास वारंट है। मुझे आपको गिरफ्तार करना है।"

मैंने पूछा—"कब?"

जवाब मिला—"अभी।"

"मुझे कहां ले जाइयेगा?"

"अभी तो पासके स्टेशन पर और जब ट्रेन आयेगी तब वोक्सरस्ट ले जाऊंगा।"

मैंने कहा—"तो मैं किसीको जगाये बिना तुम्हारे साथ चलता हूं, पर अपने साथीको कुछ हिदायतें दे दूं।"

"शौकसे दीजिए।"

मैंने बगलमें सोये हुए पी० के० नायडूको जगाया। उनसे अपनी गिरफ्तारीकी खबर देकर कहा कि काफिलेवालोंको सवेरा होनेके पहले न जाना और सवेरा होनेपर नियमानुसार कूच कर देना। कूच तो सूर्योदयसे पहले ही करनी थी। जहां विश्राम करने और रोटी बांटनेका समय आये वहां लोगोंको

मेरी गिरफ्तारीकी बात बता देना। इस बीच जो पूछे उसको बताते जाओ। काफिलेको पुलिस गिरफ्तार करे तो वह गिरफ्तार हो जाये। न गिरफ्तार करे तो निर्द्धारित रीतिसे कूच जारी रखे। नायडूको कोई डर तो था ही नही। उनको यह भी बता दिया कि वह पकड़ लिये जाएं तो क्या करना होगा। वोक्सरस्ट मे मि० केलनबेक तो मौजूद ही थे।

मैं उस पुलिस-अफसरके साथ गया। सवेरा हुआ। वोक्सरस्ट जानवाली ट्रेनमे बैठा। वोक्सरस्ट में मुझपर मुकदमा चलाया गया। सरकारी वकीलने खुद ही १४ तारीखतक मामला मुलतवी रखनेकी प्रार्थना की; क्योंकि उनके पास शहादत तैयार नही थी। मुकदमा मुलतवी हो गया। मैंने जमानतपर छोड़े जानेकी दरख्वास्त दी। कारण यह बताया कि मेरे साथ दो हजार मर्द, १२२ औरतें और ५० बच्चे है। मुकदमेकी तारीखतक मैं उनको ठिकाने पहुंचाकर लौट आ सकता हूं। सरकारी वकीलने जमानतकी दरख्वास्त-का विरोध तो किया, पर मजिस्ट्रेट लाचार था। मुझपर जो आरोप था वह ऐसा नही था जिसमे अभियुक्तको जमानतपर छोड़ना भी मजिस्ट्रेटकी मर्जीकी बात हो। अत उन्होंने मुझे ५० पौंडकी जमानतपर रिहा कर दिया। मेरे लिए मोटर तो मि० केलनबेकने तैयार ही रखी थी। उसमे बैठाकर तुरत मुझको मेरे काफिलेके पास पहुंचा दिया। ट्रांसवालके अखबार 'दी ट्रांसवाल लीडर' का प्रतिनिधि हमारे साथ आना चाहता था। उसे अपनी मोटरमे बैठा लिया। उसने इस यात्रा, मुकदमे और यात्रीदलसे मिलनेका विशद वर्णन अपने पत्रमे प्रकाशित किया। लोगोने हर्षपूर्वक मेरा स्वागत किया। उनके उत्साहकी सीमा नही रही। मि० केलनबेक तुरंत वोक्सरस्ट लौट गये। उन्हे चार्ल्सटाउनमें ठहरे हुए और नये आनेवाले भारतीयोकी सम्हाल करनी थी।

हम आगे बढे, पर मुझे आजाद छोडना सरकारको अनुकूल नही पड़ सकता था। इसलिए अगले दिन मैं फिर स्टेंडरटनमें गिरफ्तार कर लिया गया। स्टेंडरटन औरोकी तुलनामें कुछ बड़ा गांव है। यहा मैं विचित्र रीतिसे गिरफ्तार किया गया। मै लोगोको रोटी बांट रहा था। यहांके हिंदुस्तानी दुकानदारोने मुरब्बेके कुछ डब्बे भेंट किये थे। इससे वितरणमे कुछ अधिक समय लग रहा था। इस बीच मजिस्ट्रेट मेरे पास आकर खडे हो गये। उन्होने वितरणका काम पूरा हो जाने दिया। इसके बाद मुझे एक किनारे बुलाया। उनको मैं पहचानता था। इसलिए मैंने सोचा कि वह मुझसे कुछ बातें करना चाहते होगे। उन्होने हँसकर मुझसे कहा—

"आप मेरें कैदी है।"

मैंने कहा—"तो मेरा दर्जा बढा; क्योंकि पुलिसके बदले खुद मजिस्ट्रेट मुझे गिरफ्तार करने आये है। पर मुझपर अभी मुकदमा चलाइयेगा न ?"

उन्होने जवाब दिया—"मेरे साथ ही चलिए। अदालत तो बैठी ही है।"

लोगोको कूच जारी रखनेकी सलाह देकर मैंने विदा ली। अदालतमें पहुंचते ही देखा कि मेरे कुछ साथी भी पकड लिए गये है। वे थे पी० के० नायडू, बिहारीलाल महाराज, रामनारायणसिंह, रघुनारसू और रहीम खा—ये पांच जने।

मैं तुरंत अदालतके सामने पेश किया गया। मैंने वही कारण देकर जो वोक्सरस्टमे दिये थे, मुहलत और जमानत-की दरख्वास्त दी। यहा भी सरकारी वकीलने विरोध किया। पर मजिस्ट्रेटने २१ नवबरतक मुकदमा मुलतवी कर दिया और मुझे ५० पौंडके जाती मुचलकेपर रिहा कर दिया। भारतीय व्यापारियोने मेरे लिए इक्का तैयार रखा ही था। काफिला अभी तीन मील भी आगे नही पहुचा था कि मैं फिर

उससे जा मिला। अब तो लोगोने और मैंने भी सोचा कि शायद हम टाल्सटाय फार्म पहुंच जायंगे। पर यह खयाल सही नही था। लोग मेरी गिरफ्तारीके आदी हो गये, यह कोई छोटी-मोटी बात नही थी। मेरे पाचो साथी जेलमे ही रहे।

: २१ :

सभी कैद

अब हम जोहान्सबर्गके काफी नजदीक पहुच गये थे। पाठक याद रखे कि सारा रास्ता हमने आठ दिनमे तै करनेका निश्चय किया था। अबतक हम योजित मजिलें पूरी करते आये थे, इसलिए अब पूरी चार मजिलें बाकी रह गई थी। पर जैसे-जैसे हमारा उत्साह बढ रहा था वैसे-वैसे सरकार-की जागृति भी बढनी ही चाहिए थी। हमें अपनी मंजिलपर पहुच जाने दे और इसके बाद गिरफ्तार करे तो यह उसकी कमजोरी और अकुशलता समझी जाती। इसलिए अगर हमे गिरफ्तार करना हो तो मंजिल पूरी होनेके पहले ही गिरफ्तार करना चाहिए।

सरकारने देखा कि मुझको गिरफ्तार कर लेनेपर भी काफिला न निराश हुआ, न डरा, न उसने उपद्रव किया। उपद्रव करे तो सरकारको तोप-बदूकसे काम लेनेको पूरा मौका मिल जाय। जनरल स्मट्सके लिए तो हमारी दृढता और उसके साथ-साथ शांति, यही दुःखकी बात हो गई। उन्होंने तो यहां तक कह डाला—"शात मनुष्यको कोई कबतक सताये?" मरे हुएको मारना कैसे हो? मरेको मारनेमे कोई मजा ही नही आता। इसीसे दुश्मनको जिंदा पकड़नेमे गौरव माना जाता है। चूहा बिल्लीको देखकर भागना छोड दे तो बिल्लीको दूसरा

शिकार ढूंढना ही होगा। सभी मेमने सिंहकी बगलमें जाकर बैठ जाए तो सिंहको मेमनोका आहार छोड ही देना पडे। सिंह सामना न करता हो तो पुरुषसिंह क्या सिंहका शिकार करें ?

हमारी शांति और हमारे निश्चयमें हमारी विजय छिपी हुई थी।

गोखलेकी इच्छा थी कि पोलक हिंदुस्तान जाकर भारत-सरकार और साम्राज्य-सरकारके सामने दक्षिण अफ्रीकाकी परिस्थिति रखनेमें उनकी सहायता करें। मि० पोलकका स्वभाव ऐसा था कि जहां हों वही उपयोगी हो जाए। वह जो काम हाथमें लेते उसीमें तन्मय हो जाते। इससे उन्हें हिंदुस्तान भेजनेकी तैयारी चल रही थी। मैंने तो उन्हें लिख दिया था कि आप जा सकते हैं। पर मुझसे मिले और जबानी पूरी हिदायतें लिये बिना जाना वह पसंद नही करते थे। इसलिए उन्होंने कूचके ही दरमियान आकर मिल जानेकी इजाजत मांगी। मैंने तारसे जवाब दिया कि पकड लिये जानेकी जोखिम उठाकर आना चाहें तो आ सकते हैं। लडनेवाले जरूरी खतरे सदा उठा ही लेते हैं। सरकार सबको गिरफ्तार कर ले तो गिरफ्तार हो जानेकी तो यह लडाई ही थी। जबतक न पकड़े तबतक पकडे जानेके लिए सब सरल और नीतिमय यत्न करते जाना था। अत मि० पोलकने पकडे जानेकी जोखिम लेकर आना पसंद किया।

हम हेडलबर्गके पासतक पहुचे थे। मि० पोलक पासके स्टेशनपर उतरकर और पैदल ही आकर हमसे मिले। हमारी बातें चल रही थी। लगभग पूरी भी हो चली थी। इस वक्त दिनके कोई तीन बजे होगे। हम दोनो काफिलेके आगे-आगे चल रहे थे। दूसरे साथी भी हमारी बातें सुन रहे थे। मि० पोलकको शामको डर्बन जानेवाली ट्रेन पकडनी थी। पर जब राम-

चंद्रजी-सरीखे पुरुषको राजतिलकके ही समय वनवास मिला तो पोलककी क्या हकीकत थी ? हम बातें कर रहे थे कि एक घोड़ागाड़ी सामने आकर खड़ी हो गई। उसमें एशियाई महकमेके प्रधान (ट्रांसवालके प्रधान इमिग्रेशन आफिसर) मि० चमनी और एक पुलिस-अफसर थे। दोनों नीचे उतरे। मुझको थोड़ी दूर ले जाकर एकने कहा, "मैं आपको गिरफ्तार करता हूं।"

इस तरह चार दिनके अंदर मैं तीन बार गिरफ्तार किया गया। मैंने पूछा, "और काफिलेको ?"

"वह होता रहेगा।"

मैं कुछ नहीं बोला। पोलकसे कहा कि आप काफिलेके साथ जायें। पुलिस-अफसरने मुझे सिर्फ अपनी गिरफ्तारीकी खबर लोगोंको दे देनेकी इजाजत दी। ज्योंही लोगोंसे शांति रखने आदिके लिए कहना आरंभ किया, उक्त अफसर साहब बोल उठे—"अब आप कैदी हैं, भाषण नहीं दे सकते।"

मैंने अपनी मर्यादा समझ ली। समझनेकी जरूरत तो नहीं थी, क्योंकि मुझसे बोलना बंद करनेके साथ ही उक्त अफसरने गाड़ीवानको जोरसे गाड़ी हांकनेका हुक्म दिया। क्षणभरमें काफिला अदृश्य हो गया।

उक्त अधिकारी जानता था कि घड़ीभर तो मेरा ही राज्य है, क्योंकि वह तो हमारे अहिंसा व्रतपर विश्वास रखकर ही इस वीरान मैदानमें दो हजारके मजमेके सामने अकेला आया हुआ था। वह यह भी जानता था कि उसने मुझे चिट्ठीसे कैद किया होता तो भी मैं अपने आपको उसके हवाले कर देता। ऐसी हालतमें मैं कैदी हूं, इसकी याद मुझे दिलाना अनावश्यक था। मैं लोगोंसे जो कहता वह अधिकारियोंके लिए भी उपयोगी ही होता। पर उन्हें तो अपना रूप दिखाना ही चाहिए। इसके साथ ही मुझे यह भी कह देना चाहिए कि

अनेक अधिकारी हमारी कैदको समझते थे। वे जानते थे कि कैद हमारे लिए अंकुश या दुःखरूप नही है, हमारे लिए तो वह मुक्तिका द्वार है। इससे हमे हर तरहकी जायज आजादी देते। इतना ही नही, गिरफ्तार करनेमे उनको आसानी हो और उनका वक्त बचे इससे हमारी मदद लेते और मिलनेसे उपकार मानते। दोनों तरहके नमूने इन प्रकरणोमे पाठकोको मिलेगे।

मुझे एकसे दूसरी जगह घुमाते हुए अंतमें हेडलबर्गके थानेमे ले जाकर रखा। रात वही बिताई।

पोलक काफिलेको लेकर आगे बढ़े और ग्रेलिग्स-टैड पहुचे। वहां भारतीय व्यापारियोका अच्छा जमाव था। रास्तेमें सेठ अहमद मुहम्मद काछलिया और सेठ आमद मुहम्मद भायात मिले। क्या होनेवाला है, इसकी खबर उन्हें मिल गई थी। मेरे ही साथ पूरे काफिलेको भी गिरफ्तार कर लेनेका प्रबंध कर लिया गया था। इसलिए मि० पोलकने सोचा कि काफिलेको ठिकाने पहुचा दिया तो एक दिन देरसे भी डर्बन पहुचकर हिंदुस्तान जानेवाले जहाजको पकड़ सकते हैं। पर ईश्वरने कुछ और ही सोच रखा था।

१० तारीखको लगभग ९ बजे सवेरे काफिला बालफोर पहुंचा जहा काफिलेको गिरफ्तार कर नेटाल पहुचा देनेके लिए तीन स्पेशल ट्रेनें खड़ी थी। यहा लोगोंने कुछ हठ पकडी। कहा—"गांधीको बुलाओ। वह कहे तो हम गिरफ्तार होंगे और ट्रेनमें सवार होंगे।" यह हठ अनुचित थी। उसको न छोडनेसे हमारी बाजी बिगड़ती, सत्याग्रहीका तेज घटता। जेल जानेमें गांधीको-क्या काम? सिपाही कही सेनानायकका चुनाव करता है या उनमेंसे किसी एकका ही हुक्म माननेका आग्रह कर सकता है? मि० चमनीने इन लोगोको समझानेमे मि० पोलक और सेठ काछलियाकी मदद ली। वे कठि-

नाईसे उन्हे समझा सके कि उनकी तो मुराद ही जेल जाना है और जब सरकार गिरफ्तार करनेको तैयार है तो हमे उसके न्योतेका स्वागत करना चाहिए। इसीमें हमारी सज्जनता और विजय है। उन्हे समझ लेना चाहिए कि मेरी इच्छा दूसरी हो ही नही सकती। लोग समझ गये और ट्रेनमें सवार हो गये।

इधर मै फिर मजिस्ट्रेटके सामने पेश किया गया। उस वक्त ऊपरकी घटनाकी मुझे कुछ भी खबर नही थी। मैंने फिर अदालतसे मुहलतकी प्रार्थना की। बताया कि दो अदालते मुहलत मंजूर कर चुकी है। यह भी कहा कि हमारी मजिल अब थोड़ी ही बाकी है और प्रार्थना की कि सरकार या तो काफिलेको गिरफ्तार कर ले या मुझे उनको उनके स्थान टाल्सटाय फार्ममे छोड आने दे। अदालतने मेरी प्रार्थना तो स्वीकार नही की; पर मेरी दरख्वास्त तुरंत सरकारके पास भेज देना मजूर किया। इस वक्त मुझे डडी ले जाना था। मुझपर असल मुकदमा गिरमिटिया मजदूरोको नेटाल छोड़कर चले जानेका बहकानेका तो वही चलाया जानेवाला था। अत मुझे उसी दिनकी ट्रेनसे डडी ले गये।

उधर मि० पोलक वालफोरमे गिरफ्तार नही किये गये, बल्कि काफिलेकी गिरफ्तारीमे अधिकारियोको उनसे जो मदद मिली उसके लिए उन्हे धन्यवाद भी दिया गया। मि० चमनीने तो यह भी कहा कि आपको गिरफ्तार करनेका सरकारका इरादा ही नही है। पर यह तो था मि० चमनीका, और जहातक उन्हे मालूम था, सरकारका विचार था, किन्तु सरकारका विचार तो घड़ी-घड़ी बदला करता है। सरकारने अतमे तै किया कि मि० पोलकको हिंदुस्तान नही जाने देना चाहिए और उनको तथा मि० केलनबेकको, जो खूब काम कर रहे थे, गिरफ्तार कर लेना चाहिए। फलतः

मि० पोलक चार्ल्सटाउनमे गिरफ्तार कर लिए गये। मि० केलनबेक भी पकड लिए गये। दोनो वोक्सरस्ट जेलमे बद किए गये।

मुझपर डंडीमे मुकदमा चलाया गया और नौ महीनेकी कडी कैदकी सजा मिली (११ नवंबर)। अभी वोक्सरस्टमें दूसरा मुकदमा वर्जित व्यक्तियोको ट्रासवालमे दाखिल होनेकी प्रेरणा और इसमे सहायता करनेका बाकी था। मुझे वोक्सरस्ट ले गये। वहां मैंने मि०केलनबेक और मि० पोलकको देखा। यों हम तीनो वोक्सरस्ट जेलमें मिले। इससे हमारे हर्षका पार न रहा।

वोक्सरस्टमे मुझपर जो मुकदमा चलाया गया उसमें अपने खिलाफ मुझको ही शहादत देनी थी। पुलिसको मिल सकती थी; पर कठिनाईसे। इसलिए उसने मेरी मदद ली। यहांकी अदालतें केवल अभियुक्तके अपराधी होना स्वीकार कर लेनेपर सजा नही करती थी।

मेरा काम तो हुआ; पर मि० केलनबेक और मि० पोलकके खिलाफ कौन शहादत दे? शहादत न मिले तो उनको सजा देना नामुमकिन था। उनके खिलाफ झूट शहादत हासिल कर लेना भी कठिन था। मि० केलनबेकको तो अपना अपराध स्वीकार कर लेना था, क्योकि उनका इरादा काफिलेके साथ रहनेका था। पर मि० पोलकका विचार तो हिंदुस्तान जानेका था। इससे हम तीनोने मिलकर यह तै किया कि मि० पोलकने अपराध किया है या नही, इस सवालके जवाबमें हम 'हां' या 'ना' कुछ भी न कहें।

इन दोनों साथियोके विरुद्ध मैं गवाह बना। हम यह नही चाहते थे कि मुकदमे ज्यादा वक्त ले, इसलिए तीनो मुकदमे एक-एक दिनमें ही खतम हो जायं, इसमें अपनी ओरसे पूरी मदद दी। ऐसा हुआ भी। हम तीनोंको तीन-तीन महीनेकी

कैदकी सजा मिली। हमने सोचा कि ये तीन महीने तो हम साथ रह सकेंगे, पर सरकारका सुभीता इसकी इजाजत नही देता था।

इस बीच थोड़े दिन हम वोक्सरस्ट जेलमे सुखसे रहे। यहां रोज नये कैदी आते और बाहरकी खबर लाते। इन सत्याग्रही कैदियोमे एक हरवतसिंह नामका बूढा था। उसकी उम्र ७५ से ऊपर थी। वह किसी खानमे काम नही करता था। अपना गिरमिट तो वह बरसो पहले पूरा कर चुका था। इसलिए वह हड़तालमें शामिल नही था। मेरी गिरफ्तारीके बाद लोगोमे उत्साह बहुत ही बढ गया था और बहुतेरे नेटालसे ट्रांसवालमे दाखिल होकर गिरफ्तार हो रहे थे। हरवतसिंह भी उन्हीमे था। मैने उससे पूछा—"आप जेलमे क्यो आये? आप जैसे बूढोको मैने जेलमे आनेका निमंत्रण नही दिया है?"

हरवतसिंहने जवाब दिया—"मै कैसे रह सकता था, जब आप, आपकी धर्मपत्नी और आपके लड़के तक हम लोगोके लिए जेल चले गये?"

"लेकिन आपसे जेलके दुःख बर्दाश्त नही हो सकेंगे। आपके छूटनेके लिए मै कोशिश करूं?"

"मै हरगिज जेल नही छोड़ूंगा। मुझे एक दिन तो मरना है ही। फिर ऐसा दिन कहां, जो मेरी मौत यहां हो जाय!"

इस दृढ़ताको मै कैसे डिगाता? वह डिगाए डिगती भी नही। मेरा सिर इस निरक्षर ज्ञानीके सामने झुक गया। जैसी हरवतसिंहकी भावना थी वैसा ही हुआ। हरवतसिंहकी मृत्यु जेलमें हुई। उसका शव वोक्सरस्टसे डर्बन मंगाया गया और सैकड़ों भारतीयोकी उपस्थितिमें उसका सम्मानपूर्वक अग्निसंस्कार किया गया। ऐसे हरवतसिंह इस लड़ाईमे एक ही नही, अनेक थे। पर जेलमें मरनेका सौभाग्य

केवल अकेले उसीको मिला। इससे दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके इतिहासमे वह उल्लेखका अधिकारी हो गया।

इस प्रकार लोग आकृष्ट होकर जेल आयें यह सरकारको पसंद नही हो सकता था। फिर जेलसे छूटनेवाले मेरा सदेसा ले जाय यह भी उसको गवारा नही हो सकता था। अत. हम तीनोको अलग कर देने, एकको भी वोक्सरस्टमे न रहने देने और मुझे ऐसी जेलमे ले जानेका निश्चय किया गया जहा कोई हिंदुस्तानी जा ही न सके। फलत मै आरेंजियाकी राजधानी ब्लूम फोनटीनकी जेलमें भेजा गया। आरेंजियामे कुल मिलाकर ५० से अधिक हिंदुस्तानी नही थे। वे सभी होटलोमे नौकरी करते थे। ऐसे प्रदेशकी जेलमें हिंदुस्तानी कैदी हो ही नही सकते थे। उस जेलमे मै अकेला ही हिंदुस्तानी था। बाकीके सभी कैदी गोरे या हबशी थे। मुझे इसका दु.ख नही था, बल्कि मैंने इसको सुख माना। मुझे न कुछ सुनना था, न देखना। नया अनुभव मिले यह मेरे मनको भानेवाली बात थी। फिर मुझे पढ़नेका समय तो बरसोंसे, कहिये १८९३ के बादसे, मिला ही नही था। अब एक बरस मिलेगा यह जानकर मुझे तो खुशी हुई।

मै ब्लूम फोनटीन पहुचाया गया। वहा एकांत तो यथेच्छ मिला। कठिनाइया भी बहुत थी, पर सभी सह्य थी। उनका वर्णन करके पाठकोका समय नही लूंगा। फिर भी इतना बता देना जरूरी है कि वहाका डाक्टर मेरा मित्र हो गया। जेलर तो केवल अपने अधिकारको ही समझता था, पर डाक्टर कैदियोके हककी रक्षाका ध्यान रखता था। मेरा यह काल शुद्ध फलाहारका था। न दूध लेता, न घी। अन्न भी न खाता। केले, टमाटर, कच्ची मूगफली, नीबू और जैतूनका तेल, बस यही मेरी खूराक थी। इनमे एक भी चीज सडी आये तो भूखों मरना पडता। इसलिए डाक्टर खास

तौरसे ध्यान रखते और उन्होंने मेरी खूराकमें बादाम, अखरोट और ब्रेजीलनट बढा दिया। खुद सारे फलोको देखते और उनके अच्छे होनेका इतमीनान करते । मुझे जो कोठरी दी गई थी उसमे हवा बहुत ही कम आती थी । उसका दरवाजा खुला रखवानेकी उन्होने पूरी कोशिश की, पर उनकी चली नही । जेलरने धमकी दी कि दरवाजा खुला रखा गया तो मै इस्तीफा दे दूगा । जेलर बुरा आदमी नही था, पर उसका स्वभाव एक ही सांचेमे ढला हुआ था, वह कैसे बदला जाय ? उसे उपद्रवी कैदियोसे काम पडता था । इसलिए मुझ जैसे भले कैदीके साथ भेदभाव करता तो दूसरे कैदियोके उसपर हावी हो जानेका सच्चा डर था । मै जेलरका दृष्टिबिंदु ठीक तौरसे समझ सकता था और इससे डाक्टर और जेलरके बीच मेरे बारेमें जो झगडा होता उसमे मेरी हमदर्दी जेलरकी ओर होती । जेलर अनुभवी और सीधे रास्तेपर जानेवाला था और अपने रास्तेको साफ देख सकता था ।

मि० कैलनबेक प्रिटोरियाकी जेलमे भेजे गये और मि० पोलक जरमिस्टनकी जेलमे ।

पर सरकारकी सारी योजना बेकार थी । आसमान टूटे तो पैवद क्या काम देगा ? नेटालके गिरमिटिए हिंदुस्तानी पूरे तौरसे जग गये थे । दुनियाकी कोई भी ताकत उनको रोक नही सकती थी ।

: २२ :

कसौटी

सोनेकी परख करनेवाला सदा उसको कसौटीपर घिसता है। फिर और परीक्षा करनी हो तो उसे भट्टीमें डालता है, उसे

पीटता है, मैल हो तो उसे निकाल डालता है और अतमें उसका कुदन बनाता है। ऐसी ही कसौटी हिंदुस्तानियोकी हुई। वे हथौडेसे पीटे गये, भट्टीमे डाले गये, तपाये गये और जब वे परीक्षामे सच्चे उतरे तभी उनकी कीमत आंकी गई।

यात्रियोको जो स्पेशल ट्रेनमें सवार कराके ले गये तो वन-भोजके लिए नही; बल्कि उनको निहाई पर चढानेके लिए ले गये। रास्तेमें उनको खाना देनेका भी प्रबंध नही था। नेटाल पहुचे कि तुरत उनपर मुकदमा चलाया गया। उनको कैदकी सजा मिली। यह तो समझी हुई बात थी; पर हजारो आदमियोको जेलमें रखना तो खर्च बढाना और हिंदुस्तानियोकी मनचाही करना होता। कोयलेकी खानें बद रहती। ऐसी स्थिति अधिक दिन चले तो तीन पौंडका कर रद करना ही पड़ता। इसलिए यूनियन सरकारने एक नयी युक्ति सोची। गिरमिटिये जहां-जहांसे आये थे उन्ही स्थानोको, एक नया कानून बनाकर, उसने जेल बना दिया और इन जेलोका दारोगा खानोके गोरे कर्मचारियोको बना दिया। इस प्रकार जो काम मजदूरोने छोड दिया था वही सरकारने उनसे जबर्दस्ती कराया। गुलामी और नौकरीमे यह फर्क है कि नौकर काम छोड दे तो उसपर दीवानी अदालतमें नालिश ही की जा सकती है और गुलाम काम छोडे तो जबर्दस्ती कामपर वापस लाया जा सकता है, यानी अब मजदूर पूरे तौरपर गुलाम हो गये।

पर इतनाही काफी नही था। मजदूर बहादुर थे। उन्होंने खानोमे काम करनेसे साफ इन्कार कर दिया। इसके फल-स्वरूप उन्हे कोडोकी मार सहनी पडी। अक्खड आदमियोने जो क्षणभरमे अधिकारी बन बैठे थे उन्हे लातें मारी, गालियां दी और दूसरे अत्याचार किये। उसका तो कही उल्लेखतक नही हुआ है। गरीब मजदूरोनें इस सबको धीरजके साथ सह लिया। इन अत्याचारोंके तार हिंदुस्तान पहुचे। सब तार गोखलेके

नाम भेजे जाते। उन्हे एक दिन भी ब्योरेवार तार न मिलता तो सीधे पूछते। इन तारोंका प्रचार वह अपनी रोगशय्यासे करते, क्योंकि इन दिनों वह सख्त बीमार थे। पर दक्षिण अफ्रीकाका काम इस दशामें भी खुद देखनेका आग्रह रखते थे और इस काममे न रात देखते, न दिन। फल यह हुआ कि सारा हिंदुस्तान भडक उठा और दक्षिण अफ्रीकाका सवाल वहां प्रधान प्रश्न बन गया।

यही वक्त था जब लार्ड हार्डिजने मद्रासमे (दिसंबर १९१३) वह प्रसिद्ध भाषण दिया जिसने दक्षिण अफ्रीका और विलायतमें खलबली मचा दी। वाइसराय दूसरे उपनिवेशो या साम्राज्यके अगभूत देशोंकी आलोचना नही कर सकता। पर लार्ड हार्डिजने यूनियन सरकारकी कड़ी टीका ही नही की, सत्याग्रहियोंके कामका पूरा बचाव भी किया, यहातक कि सविनय कानून भंग-का भी समर्थन किया। विलायतमें उनके साहसकी कुछ कडवी आलोचना अवश्य हुई, फिर भी उन्होने अपने कार्यपर पश्चात्ताप न कर उसका औचित्य प्रकट किया। उनकी इस दृढताका असर बहुत अच्छा हुआ।

इन अपनी खानोमे कैद दुखी और हिम्मतवाले मजदूरों-को छोडकर हम क्षणभर खानोके बाहरकी स्थितिपर निगाह डाले।

खाने नेटालके उत्तरी भागमे अवस्थित थी, पर हिंदुस्तानी मजदूरोंकी बडी-से-बडी तादाद नेटालके नैऋत्य और वायव्य कोणोमे थी। (वायव्य कोणमें फिनिक्स, वेरू-लम, टोंगाट इत्यादि स्थान पडते है, नैऋत्यमे इसीपिंगो और अमजिन्टो इत्यादि।) वायव्य कोणके मजदूरोंके साथ मेरा खास परिचय था। उनमेसे बहुतेरे बोअर-युद्धमे भी मेरे साथ रह चुके थे। नैऋत्य दिशाके मजदूरोंके साथ मेरा इतना नजदीकका साबका नही पड़ा था। उस ओर

मेरे साथी भी बहुत थोडे थे। फिर भी हडताल और जेलकी बात विद्युत् गतिसे फैल गई। दोनो कोणोसे हजारो मजदूर यकायक निकल पड़े। कितनोंने यह सोचकर अपना सामान बेच डाला कि लडाई लबी होगी और हमे खाना कोई देगा नही। मैंने तो जेल जाते समय साथियोको चेता दिया था कि ज्यादा मजदूरोंको हडताल करनेसे रोकें। मुझे आशा थी कि खानोंके मजदूरोंकी मददसे ही लड़ाईकी सब मंजिल पार कर लूगा। अगर सारे मजदूर यानी लगभग दस हजार लोग हडताल कर दे तो उनके भरण-पोषणका भार उठाना कठिन होगा। इतनी बडी सेनासे कूच कराने जितनी सामग्री भी अपने पास नही थी। न इतने मुखिया थे, न इतना पैसा। फिर इतने आदमियोको इकट्ठा कर शांति-भग बचाना भी नामुमकिन होता।

पर बाढ आये तो किसीके रोके रुक सकती है? मजदूर हर जगह अपने आप काम छोडकर निकल पडे। स्वयसेवक भी उन स्थानोमें स्वेच्छासे संघटित हो गये।

सरकारने अब बंदूकसे काम लेनेकी नीति अपनाई। लोगोको हडताल करनेसे जबर्दस्ती रोका। उनके पीछे घुडसवार दौडाये और वे अपने स्थानपर पहुचा दिये गये। वे तनिक भी उपद्रव करे तो फैर कर देनेका हुक्म था। हडतालियोके एक समूहने उन्हे कामपर वापस ले जानेकी कोशिशका विरोध किया। किसी-किसीने पुलिसपर ईंट-पत्थर भी फेके। उनपर गोलियोंकी बौछार कर दी गई। बहुतेरे घायल हुए, दो-चार मरे भी। पर मजदूरोका जोश इससे ठडा नही हुआ। स्वयंसेवकोंने बडी कठिनाईसे वेरूलमके पास हडताल करनेसे लोगोंको रोका। पर सब मजदूर कामपर वापस नही गये। कुछ तो डरसे छिप गये और फिर कामपर वापस नही गये।

एक घटना उल्लेखयोग्य है। वेरूलममे बहुतसे मज-

दूर काम छोड़कर निकल पड़े थे। वे किसी उपायसे कामपर वापस नहीं जाते थे। जनरल ल्यूकिन अपने सिपाहियोंके साथ वहां मौजूद थे और हड़तालियोंपर गोली चलानेका हुक्म देनेको तैयार थे। स्वर्गीय पारसी रुस्तमजीका छोटा लड़का बहादुर सोराबजी जो उस वक्त मुश्किलसे १८ बरसका रहा होगा, डर्बनसे यहां पहुंच गया था। जनरलके घोड़ेकी लगाम थामकर वह बोल उठा, "आप फैर करनेका हुक्म नहीं दे सकते। मैं अपने आदमियोको शांतिसे कामपर लौटा देनेकी जिम्मेदारी लेता हूं।" जनरल ल्यूकिन इस नौजवानकी बहादुरीपर मुग्ध हो गये और उसे अपना प्रेम-बल आजमा लेने-की मुहलत दे दी। सोराबजीने लोगोको समझाया। वे समझ गये और अपने कामपर लौट गये। इसतरह एक नवयुवक-की मौकेकी सूझ, निर्भयता और प्रेमसे खूनखराबी होते-होते बची।

पाठकोंको जान लेना चाहिए कि ये गोलियोंकी बौछार आदि काम गैरकानूनी ही माने जा सकते है। खानोके मजदूरो-के साथ व्यवहार करनेमें सरकारकी कार्रवाईकी जाहिरा शक्ल बाकायदा थी। वे हड़ताल करनेके लिए नहीं, बल्कि ट्रासवालकी सरहदमें बिना परवानोके प्रवेश करनेके जुर्ममें गिरफ्तार किये गये थे। नैऋत्य और वायव्य कोणोमें हड़ताल करना ही अगर अपराध मान लिया गया था तो वह किसी कानूनके रुसे नहीं; बल्कि अधिकारके बलसे। अतमें तो शक्ति ही कानून बन जाती है। अगरेजीमें एक कहावत है जिसके माने यह है कि बादशाह कभी कोई गलती करता ही नहीं।[1] हुकूमतका सुभीता ही आखिरी कानून है। यह दोष सार्वभौम है। सच पूछिये तो इस तरह कानूनको भूल जाना सदा दोप ही नहीं होता। कुछ

[1] दी किंग कैन डू नो रोग।

मौकोंपर कानूनसे चिपके रहना ही दोष बन जाता है। जब राजशक्ति लोकसंग्रह करती हो और जब उसका नियन्त्रित करने वाला बंधन उस शक्तिका नाश करनेवाला बन रहा हो तब उस बंधनका अनादर धर्म-सगत और विवेकका अनुसरण है। ऐसे अवसर कभी-कभी ही उपस्थित होते है। जहा राज्य अकसर निरंकुश होकर व्यवहार करता है वहा वह लोकोपकारी नही हो सकता। यहा राज्यके निरकुश होनेका कोई कारण नहीं था, हडताल करनेका हक अनादि है। यह जान लेनेके लिए सरकारके पास काफी मसाला था कि हडताल करनेवालोको उपद्रव कदापि नही करना था। हड़तालका बड़े-से-बडा परिणाम इतना ही हो सकता था कि तीन पौडका कर रद हो जाता। शांतिप्रिय लोगोके विरुद्ध शातिमय उपाय ही उचित माने जा सकते है। फिर यहा राजशक्ति लोकोपकारी नही थी। उसका अस्तित्व केवल गोरोके भलेके लिए था। आमतौरसे वह हिंदुस्तानियोंकी विरोधिनी थी। इसलिए ऐसी एक-पक्षीय राजशक्तिकी निरकुशता किसी तरह उचित और क्षन्तव्य नही मानी जा सकती।

अतः मेरी समझसे यहा शक्तिका शुद्ध दुरुपयोग हुआ। जिस कार्यकी सिद्धिके लिए शक्ति या अधिकारका यों दुरुपयोग किया जाता है वह कभी सिद्ध नही होता। कभी-कभी क्षणिक सिद्धि मिलती दिखाई देती है, पर स्थायी सफलता कभी नही मिलती। दक्षिण अफ्रीकामे गोलिया बरसानेके ६ महीनेके अदर ही जिस तीन पौडके करको कायम रखनेके लिए यह अत्याचार किया गया वही रद हो गया। यो अकसर दुख सुखके लिए होता है। इन क्लेशोकी पुकार हर जगह सुनी गई। मै तो यह मानता हूं कि जैसे एक रेलमे उसके हर पुरजे-का अपना स्थान होता है वैसे ही हर-एक सघर्ष-सग्राममे हर चीजकी अपनी जगह होती है और जैसे कीट, मैल आदि

कलकी गति रोक देते हैं वैसे ही कितनी चीजें युद्धकी गति भी रुद्ध कर देती है। हम तो निमित्तमात्र होते है, इसलिए हम सदा यह नही जानते कि क्या हमारे प्रतिकूल है और क्या अनुकूल। अत. हमे केवल साधनको जाननेका अधिकार है और साधन पवित्र हो तो फलके विषयमे हम निर्भय और निश्चित रह सकते है।

इस लडाईमे मैंने यह देखा कि ज्यों-ज्यो लड़नेवालोका कष्ट बढा त्यो-त्यो उसका अंत निकट आता गया। कष्ट उठानेवालोकी निर्दोषिता ज्यो-ज्यों अधिक स्पष्ट होती गई त्यों-त्यो भी युद्धका अत निकट आता गया। फिर इस युद्धमे मैंने यह भी देखा कि ऐसे निर्दोष, नि.शस्त्र और अहिंसक युद्धमें आडे वक्तपर आवश्यक साधन अनायास जुट जाते है। बहुतसे स्वयंसेवकोने, जिन्हे मैं आजतक नही जानता, अपने आप आकर हमारी मदद की। ऐसे सेवक बहुत करके निस्स्वार्थ होते हैं। इच्छा न होते हुए भी अदृश्य रीतिसे सेवा कर देते है। न कोई उनकी सेवा कही लिखता है और न कोई उन्हे प्रमाणपत्र देता है। कितने ही तो इतना भी नही जानते कि उनके ये अमूल्य कार्य भगवानकी वहीमे दर्ज किये जाते हैं।

दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय परीक्षामे पास हुए। उन्होंने अग्निमे प्रवेश किया और उससे बिना बाल बाका हुए बाहर निकले। युद्धका अंत किस तरह आरभ हुआ यह अलग प्रकरणमे देखेंगे।

: २३ :

अंतका आरंभ

पाठकोने देखा होगा कि जितना बल लगाया जा सकता था उतना और जितनेकी उससे आशा रखी जा सकती थी उससे अधिक शांत बल कौमने लगा दिया। उन्होंने यह भी देखा होगा कि बल लगानेवालोका बहुत बडा भाग ऐसे गरीब और दलित जनोंका था जिससे कुछ भी आशा नहीं रखी जा सकती थी। उन्हे यह भी याद होगा कि दो या तीनको छोड़कर फिनिक्स-आश्रमके सभी जिम्मेदार कार्यकर्ता इस वक्त जेलमे थे। फिनिक्ससे बाहर रहनेवालोंमे स्वर्गीय सेठ अहमद मुहमद काछलिया बचे थे। फिनिक्समें मि० वेस्ट, मिस वेस्ट और मगनलाल गाधी थे। सेठ काछलिया साधारण देखभाल करते थे। मिस श्लेजिन ट्रासवालका सारा हिसाब-किताब और सरहद लांघनेवालोंकी देख-रेख रखती थी। मि० वेस्टपर 'इंडियन ओपीनियन' के अग्रेजी भागका काम सम्हालने और गोखलेके साथ तारद्वारा पत्रव्यवहार रखनेकी जिम्मेदारी थी। जब परिस्थिति क्षण-क्षणमे नया रग बदला करती हो उस वक्त डाकसे होनेवाले पत्रव्यवहारकी जरूरत ही क्यो होती? तार पत्रके जैसे लबे भेजने पडते थे।

अब फिनिक्स न्यूकैसेलकी तरह वायव्यकोणके हडतालियोंका केन्द्र हो गया। सैकड़ों वहां आकर सलाह और आश्रय लेने लगे। इस दशामे सरकारकी निगाह फिनिक्सकी ओर गये बिना कैसे रहती? आसपास रहनेवाले गोरोकी त्यौरी भी चढने लगी। फिनिक्समें रहना कुछ अशोमे खतरनाक हो गया। फिर भी छोटे-छोटे लडके-लडकिया भी जोखिमभरे काम कर रहे थे। इतनेमे वेस्ट पकडे गये। सच

पूछिये तो वेस्टको गिरफ्तार करनेका कोई कारण नही था। हमने यह तै कर रखा था कि वेस्ट और मगनलाल गांधी अपने आपको गिरफ्तार करानेका एक भी प्रयत्न न करे। इतना ही नही, जहातक हो सके गिरफ्तारीके मौकोंसे दूर भी रहे। इसलिए वेस्टने गिरफ्तार करनेके लिए सरकारको कोई कारण दिया ही नही था, पर सरकार कुछ सत्याग्रहियोका सुभीता थोडे ही देखनेवाली थी या उसे गिरफ्तार करनेका मौका थोडे ही ढूढना था। अधिकारवालेको कोई काम करनेकी इच्छा होना ही उसका अवसर है। अत वेस्टकी गिरफ्तारीका तार ज्योंही गोखलेके पास पहुंचा, उन्होने हिंदुस्तानके कुछ योग्य आदमियोको दक्षिण अफ्रीका भेजनेका यत्न आरभ कर दिया। लाहौरमे जब दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहियोंकी सहायताके लिए सभा हुई थी तो सी० एफ० एंड्रूजने, जितना पैसा उनके पास था, सब दे दिया था। तभीसे गोखलेकी नजर उनपर पड रही थी। अत वेस्टकीगिरफ्तारीकी खबर मिलते ही उन्होने एंड्रूजसे तारसे पूछा कि आप तुरत दक्षिण अफ्रीका जानेको तैयार है? एंड्रूजने जवाबमें तुरंत 'हां' कह दिया। इसी क्षण उनके परम प्रिय मित्र पियर्सन भी तैयार हो गये और वे दोनो पहले स्टीमरसे दक्षिण अफ्रीका जानेको रवाना हो गये।

पर अब तो युद्ध समाप्तिके पास पहुच गया था। हजारो निरपराध लोगोको जेलमे बंद रखनेकी शक्ति दक्षिण अफ्रीकाके सरकारके पास नही थी। वाइसराय भी इसे सहन नही कर सकते थे। सारी दुनिया यह देख रही थी कि जनरल स्मट्स क्या करते हैं। ऐसे मौकेपर राज्य आमतौरसे जो किया करते हैं, दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारने भी वही किया। जाच-पडताल तो कुछ करनी नही थी। जो अन्याय हुआ था वह जाहिर था। उसे दूर करनेकी आवश्यकता हर आदमी देख रहा था। जनरल

स्मट्स भी देख सकते थे कि अन्याय हुआ है और वह दूर होना चाहिए; पर उनकी दशा सांप-छछूंदरकी-सी हो रही थी। उन्हें न्याय करना था, पर न्याय करनेकी शक्ति वह खो बैठे थे, क्योंकि दक्षिण अफ्रीकाके गोरोंको उन्होंने यह इतमीनान दिला दिया था कि वह खुद तीन पौंडका कर रद नहीं करेंगे और न दूसरे सुधार ही। पर अबतो उक्त करको उठाकर और दूसरे सुधार करके ही छुटकारा था। ऐसी विकट स्थितिसे निकलनेके लिए लोकमतसे डरकर चलनेवाले राज्य सदा कमीशन नियुक्त किया करते हैं। उसके जरिये महज नामकी जांच कराई जाती है, क्योंकि वह क्या सलाह देगा यह पहलेसे जाना-समझा हुआ होता है। यह आम रवाज है कि कमीशन जो सिफारिश करे उसपर अमल होना ही चाहिए। इसलिए कमीशनकी सिफारिशकी आड लेकर राज्य पीछे वही न्याय किया करते हैं जिसे करनेसे पहले इन्कार कर चुके होते हैं। जनरल स्मट्सने कमीशनमें तीन सदस्य नियुक्त किये। भारतीय जनताने कमीशनके बारेमें कुछ शर्तें पेश की और जबतक वे पूरी न कर दी जाएं तबतक कमीशनका बहिष्कार करनेकी प्रतिज्ञा की। इन शर्तोंमेंसे एक यह थी कि सब सत्याग्रही कैदी छोड दिये जाएं और दूसरी यह कि कमीशनमें कम-से-कम एक सदस्य तो हिंदुस्तानी कौमकी ओरसे होना ही चाहिए। पहली शर्त तो अशत. कमीशनने ही मंजूर कर ली थी। उसने सरकारसे सिफारिश की थी कि कमीशनके कामको आसान बनानेके लिए मि० केलनबेक, मि० पोलक और गांधी बिना किसी शर्तके छोड दिये जायं। सरकारने इस सिफारिशको मंजूर किया और हम तीनोंको एक साथ (१८ दिसंबर १९१३) छोड दिया। हम मुश्किलसे दो महीने जेलमें रहे होंगे। दूसरी ओर मि० वेस्टको सरकारने गिरफ्तार तो कर लिया, पर उनपर मुकदमा

चलानेके लिए कोई मसाला नही था। इसलिए उन्हे भी छोड़ना पड़ा।

ये घटनाएं एंड्रूज और पियर्सनके पहुंचनेके पहले ही हो चुकी थीं। इसलिए इन दोनों मित्रोंको मैने ही डर्बन जाकर जहाजसे उतारा। उन दोनोको इन घटनाओंकी कुछ भी खबर नही थी। इसलिए सुनकर उन्हें सुखद आश्चर्य हुआ। इन दोनों मित्रोके साथ मेरी यह पहली ही मुलाकात थी।

छोडे जानेसे हम तीनोंको मायूसी ही हुई। बाहरकी हमें कुछ भी खबर नही थी। कमीशनकी खबरसे हमें अचरज हुआ। पर हमने देखा कि हम कमीशनकी कोई सहायता करनेमे असमर्थ है। इतना जरूर समझा कि उसमें हिंदुस्तानियोकी ओरसे कोई एक आदमी तो होना ही चाहिए। इसपर हम तीनो डर्बन पहुंचे और वहांसे जनरल स्मट्सको इस आशयका पत्र लिखा :

"हम कमीशनका स्वागत करते हैं। पर उसके दो सदस्यो—मि० एसेलेन और मि० वाइलीकी नियुक्ति जिस रीतिसे हुई है उसपर हमें सख्त एतराज है। उनके व्यक्तित्वसे हमारा कुछ भी विरोध नही। वे प्रसिद्ध और सुयोग्य नागरिक है। पर दोनों अनेक बार भारतीयोको नापसंद करनेका भाव प्रकट कर चुके है। इसलिए उनसे बिना जाने अन्याय हो जाना संभव है। मनुष्य अपना स्वभाव यकायक बदल नही सकता। ये दोनो सज्जन अपना स्वभाव बदल लेंगे यह मानना प्रकृतिके नियमके विरुद्ध है। फिर भी हमारी माग यह नही है कि वे कमीशनसे अलग कर दिये जाएं। हमारा सुझाव इतना ही है कि एक-दो तटस्थ पुरुष उसमें बढा दिये जाएं और इसके लिए हम सर जेम्स रोज इनिस और ऑनरेबल डब्ल्यू० पी० श्राइनरके नाम पेश करते है। दोनों नामी व्यक्ति अपनी न्यायवृत्तिके लिए सुविख्यात हैं। हमारी

दूसरी प्रार्थना यह है कि सभी सत्याग्रही कैदी छोड दिये जाए। यह न होनेसे हमारा अपना जेलके बाहर रहना कठिन हो जायगा। अब उन्हे जेलमें बंद रखनेका कोई कारण नही है। तीसरे अगर हमें कमीशनके सामने गवाही देनी है तो हमें खानोंमें और जहा-जहा गिरमिटिए काम करते है वहा-वहां जानेकी आजादी होनी चाहिए। हमारी ये प्रार्थनाए स्वीकार न की गई तो हमे खेदके साथ फिर जेल जानेके उपाय ढूढने होगे।"

जनरल महोदयने कमीशनमे और किसीको लेनेसे इन्कार किया और कहा कि कमीशन किसी पक्षके लिए नही नियुक्त हुआ है। वह केवल सरकारके सतोषके लिए बनाया गया है। यह जवाब मिलनेपर हमारे पास एक ही इलाज रह गया और हमने जेलकी तैयारी करके यह विज्ञप्ति निकाली कि १९१४ की पहली जनवरीको जेल जानेवालोंकी डर्बनसे कूच शुरू होगी। १८ दिसबर (१९१३) को हम छोडे गये थे, २१ को हमने उपर्युक्त पत्र लिखा और २४ को जनरल स्मट्सका जवाब मिला।

पर इस उत्तरमे एक बात ऐसी थी जिससे मैंने जनरल स्मट्सको फिर पत्र लिखा। उनके जवाबमें इस आशयका वाक्य था—"कमीशन निष्पक्ष और अदालती बनाया गया है, और उसकी नियुक्ति करते समय अगर भारतीयोसे मशविरा नही किया गया तो खानवालो और शक्करवालोसे भी नही किया गया।" इस वाक्यको देखकर मैंने जनरल महोदयको निजी पत्रमें लिखा कि अगर सरकार न्याय ही करना चाहती हो तो मुझे आपसे मिलना है और कुछ तथ्य आपके सामने रखने है।" इसके जवाबमे जनरल स्मट्सने मुलाकातका अनुरोध स्वीकार किया। इससे कूच कुछ दिनके लिए तो मुलतवी हो ही गई।

उधर गोखलेने जब सुना कि हम नई कूच करनेवाले हैं तब उन्होंने लंबा तार भेजा। उसमें लिखा कि ऐसा करनेसे लार्ड हार्डिंजकी और मेरी स्थिति भी कठिन हो जायगी और दूसरी कूच मुलतवी रखने और कमीशनके सामने इजहार देनेकी जोरदार सलाह दी।

हमारे ऊपर धर्मसंकट आ पड़ा। कमीशनके सदस्योंमें और आदमी नहीं लिए गये तो भारतीय जनता उसका बहिष्कार करनेकी प्रतिज्ञा कर चुकी थी। लार्ड हार्डिंज नाराज हों, गोखले दुःखी हों तो भी प्रतिज्ञा कैसे तोड़ी जाय? मि० एंड्रूजने गोखलेकी भावना, उनके नाजुक स्वास्थ्य और हमारे निश्चयसे उनके दिलको लगनेवाले धक्केपर विचार करनेकी सलाह दी। मैं तो जानता ही था। नेताओंने इकट्ठे होकर स्थितिपर विचार किया और अंतमें निश्चय किया कि चाहे जो जोखिम उठानी पड़े, पर बहिष्कार तो कायम रहना ही चाहिए। इसलिए हमने गोखलेको लगभग सौ पौंड खर्च करके लंबा तार भेजा। उससे श्रीएंड्रूज भी सहमत हुए। उसका आशय यह था:

"आपका दुःख समझता हूं। मैं सदा ही चाहूंगा कि बड़ी-से-बड़ी वस्तुका त्याग करके भी आपकी सलाहका अनुसरण करूं। लार्ड हार्डिंजने हमारी जो सहायता की है वह अमूल्य है। मैं यह भी चाहता हूं कि यह मदद हमें अंततक मिलती रहे। पर मैं चाहता हूं कि आप हमारी स्थितिको समझें। इसमें हजारों आदमियोंकी प्रतिज्ञाका प्रश्न आता है। प्रतिज्ञा शुद्ध है। हमारी सारी लड़ाईकी इमारत प्रतिज्ञाओंकी नींवपर खड़ी की गई है। प्रतिज्ञाओंका बंधन नहीं होता तो हममेंसे बहुतेरे आज गिर गये होते। हजारोंकी प्रतिज्ञापर एक बार पानी फिर जाय तो नैतिकबंधन-जैसी कोई चीज रहेगी ही नहीं। प्रतिज्ञा करते समय लोगोंने पूरी तरह

विचार कर लिया था। उसमें कोई अनीति तो है ही नहीं। बहिष्कारकी प्रतिज्ञा करनेका कौमको अधिकार है। मैं चाहता हूं कि आप भी हमें यह सलाह दें कि ऐसी प्रतिज्ञा किसी-की खातिर भी नहीं तोड़ी जानी चाहिए और हर हानि-जोखिम उठाकर भी उसका पालन होना चाहिए। यह तार आप लार्ड हार्डिजको दिखाइयेगा। मै चाहता हूं कि आपकी स्थिति कठिन न हो जाय। हमने अपनी लड़ाई ईश्वरको साक्षी और उसकी सहायताका भरोसा रखकर शुरू की। बड़ोंकी और बड़े आदमियोंकी सहायता हम चाहते और मांगते है। वह मिल जाय तो प्रसन्न होते है। पर मेरी नम्र राय है कि वह मिले या न मिले, प्रतिज्ञाका बंधन कदापि न टूटना चाहिए। उसके पालनमें आपका समर्थन और आशीर्वाद चाहता हूं।"

यह तार गोखलेको मिला। इसका असर उनके स्वास्थ्य-पर तो हुआ; पर उनकी सहायतापर नहीं हुआ या हुआ तो यही कि उसका जोर और बढ़ गया। लार्ड हार्डिजको उन्होंने तार भेजा; पर हमारा त्याग नहीं किया। उलटे हमारी दृष्टिका बचाव किया। लार्ड हार्डिज भी दृढ़ रहे।

मै एंड्रूजको साथ लेकर प्रिटोरिया गया। इसी वक्त यूनियन रेलवेमें गोरे कर्मचारियोंकी जबर्दस्त हड़ताल हुई। इस हड़तालसे सरकारकी स्थिति नाजुक हो गई। मुझसे कहलाया गया कि हिंदुस्तानियोंकी कूच बोल दो। मैंने जाहिर किया कि मुझसे हड़तालियोंकी इस रीतिसे मदद नहीं होने की। हमारा उद्देश्य सरकारको हैरान करना नहीं है। हमारी लड़ाई जुदी और दूसरे तरीकेकी है। हमें कूच करना ही होगा तो भी हम जब रेलवेकी गड़बड़ शांत हो जायगी तब करेंगे। इस निश्चयका गहरा असर हुआ। रायटरने उसका तार विलायत भेजा। लार्ड अम्पटहिलने वहांसे

धन्यवादका तार भेजा। दक्षिण अफ्रीकाके अंग्रेज मित्रोंने भी धन्यवाद दिया। जनरल स्मट्सके एक मंत्रीने मजाकमें कहा—"मुझे तो आपके लोग तनिक भी नही भाते। मै उनकी जरा भी मदद करना नही चाहता। पर उनका हम करें क्या? आप लोग हमारे संकटकालमें हमारी सहायता करते है। हम आपको कैसे मारें? मै तो बहुत बार चाहता हूं कि आप लोग भी अंग्रेज हड़तालियोंकी तरह दंगा-फसाद करें। तब हम तुरंत सीधा कर दे। आप तो दुश्मनको भी दु:ख देना नही चाहते। आप तो स्वयं दु:ख सहकर विजय प्राप्त करना चाहते है। भलमनसी और शिष्टताकी मर्यादाका कभी उल्लघन नही करते। यहां हम लाचार हो जाते है।"

इसी तरहके भाव जनरल स्मट्सने भी प्रकट किये।

पाठकोंको मालूम होना चाहिए कि सत्याग्रहीके सौजन्य और विनयका यह पहला उदाहरण नहीं था। जब वायव्य कोणके हिंदुस्तानी मजदूरोंने हड़ताल की तो बहुत-सी ईख जो काटी जा चुकी थी, ठिकाने—कारखानेमें—नहीं पहुंच जाती तो मालिकोंको भारी नुकसान उठाना पड़ता। इसलिए १२०० भारतीय मजदूर उस कामको पूरा करनेके लिए कामपर वापस गये और उसके पूरा हो जानेपर ही अपने साथियोंके साथ शामिल हुए। फिर जब डर्बन म्युनिसिपैलिटीके गिर-मिटियोंने हड़ताल की तो उसमें भी जो लोग भंगीका और अस्पतालका काम करते थे वे वापस भेजे गये और वे खुशीसे अपने कामोंपर लौट गये। भगी और अस्पतालके काम करने-वाले अपना काम छोड दे तो शहरमे बीमारी फैलती और रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषा न हो पाती। सत्याग्रही ऐसे परि-णामकी इच्छा नही कर सकता। इसलिए ऐसे कर्मचारी हड़तालसे अलग रखे गये। सत्याग्रही जो भी कदम उठाये उसमें उसे विरोधीकी हिम्मतका विचार कर ही लेना चाहिए।

ऐसी भलमनसीके अनेक दृष्टांतोंका अदृश्य प्रभाव चारों ओर पडता हुआ मैं देख सकता था और उससे भारतीयोंकी प्रतिष्ठा बढती और समझौतेके लिए हवा अनुकूल होती जा रही थी।

: २४ :

प्राथमिक समझौता

इस प्रकार समझौतेके लिए वातावरण अनुकूल होता जा रहा था। मैं और मि० एंड्रूज जब प्रिटोरिया पहुंचे उसी वक्त सर बेंजामिन राबर्टसन, जिन्हें लार्ड हार्डिंजने स्पेशल स्टीमरमें भेजा था, पहुंचनेवाले थे। पर हमें तो जनरल स्मट्सने जो दिन नियत किया था उसी दिन पहुंचना था। इससे सर बेंजामिनकी राह देखे बिना ही हम रवाना हो गये थे। राह देखनेका कारण भी नहीं था। लडाईका अंतिम परिणाम तो हमारी शक्तिके अनुसार ही होनेवाला था।

हम दोनों प्रिटोरिया पहुंचे; पर जनरल स्मट्ससे मुझे अकेले ही मिलना था। वह रेलवेके गोरे कर्मचारियोंकी हडतालमें उलझ रहे थे। यह हडताल ऐसी भयानक थी कि यूनियन सरकारने फौजी कानून जारी किया था। इन कर्मचारियोंका उद्देश्य मजदूरी बढवाना मात्र नहीं था; बल्कि राज्यकी लगाम अपने हाथमें कर लेना था। मेरी पहली मुलाकात बहुत ही छोटी हुई। पर मैंने देखा कि जनरल स्मट्सकी जो स्थिति पहले यानी कूच शुरू कर देनेके समय थी वह आज नहीं थी। पाठकोंको याद होगा कि उस वक्त उन्होंने मुझसे बात करनेसे 'भी इन्कार कर दिया था। सत्याग्रहकी धमकी तो जैसे उस वक्त थी वैसे ही आज थी। फिर

भी उस वक्त उन्होंने समझौतेकी बातचीत करनेसे इन्कार कर दिया था। इस वक्त वह मुझसे मशविरा करनेको तैयार थे।

भारतीय जनताकी मांग तो यह थी कि कमीशनमें हिंदुस्तानियोका कोई प्रतिनिधि होना चाहिए। पर इस बातपर जनरल स्मट्स अटल थे। उन्होंने कहा—"यह वृद्धि किसी तरह नही हो सकती। उसमें सरकारकी प्रतिष्ठा घटेगी और में जो सुधार करना चाहता हूं उन्हे नहीं कर सकूगा। आपको मालूम होना चाहिए कि मि० एसेलेन हमारे आदमी हैं। सुधार करनेके बारेमें वह सरकारके खिलाफ नही जायेंगे; बल्कि उसके अनुकूल ही रहेंगे। कर्नल वाइली नेटालके प्रतिष्ठित पुरुष हैं और आप लोगोंके विरोधी भी माने जा सकते हैं। अतः वह भी तीन पौंडका कर उठा देनेमें सहमत हो जायं तो हमारा काम आसान हो जायगा। हमारे अपने झगडे-झंझट इतने है कि हमें क्षणभरकी फुरसत नही है। अतः हम चाहते हैं कि आपका सवाल ठिकाने लग जाय। आप जो मांगते है उसे देनेका हमने निश्चय कर लिया है; पर कमीशनकी सम्मतिके बिना वह दिया नही जा सकता। आपकी स्थिति भी मैं समझ सकता हूं। आपने कसम खा ली है कि जबतक हम आपकी ओरसे किसीको कमीशनमें नही ले ले तबतक आप उसके सामने शहादत न देंगे। आप शहादत भले ही पेश न करे; पर जो लोग देने आयें उन्हें रोकनेका आदोलन न करे और सत्याग्रहको मुलतवी रखें। मै मानता हूं कि इससे आपका लाभ ही होगा और मुझे शांति मिलेगी। आप लोग हड़तालियोंपर जुल्म होनेकी बात कहते है। इस बातको आप साबित नही कर सकेंगे; क्योकि आप शहादत नही दे रहे है। इस बारेमे आपको खुद सोच-विचार लेना है।"

इस प्रकारके भाव जनरल स्मट्सने प्रकट किये। मुझे तो ये सारे भाव कुल मिलाकर अनुकूल मालूम हुए। सिपाहियों

और जेलके दारोगाओंके दुर्व्यवहारके बारेमें हमने बहुत शिकायतें की थी, पर कमीशनका बहिष्कार करनेके कारण उन्हें साबित करनेका सुयोग हमारे पास नहीं था। यह धर्मसंकट था। हममें इस विषयमें मतभेद था। एक पक्षका विचार था कि भारतीयोंने सिपाहियोंपर जो इलजाम लगाया है वे साबित किये ही जाने चाहिए। इसलिए उसकी सलाह थी कि अगर हम कमीशनके सामने शहादत न दे सकें तो कौम जिन्हें अपराधी मानती है उनके खिलाफ अपनी शिकायतें इस रूपमें प्रकाशित कर दे कि अभियुक्तकी मरजी हो तो मानहानि-की नालिश दायर कर सके। मैं इस पक्षका विरोधी था। कमीशनके सरकारके विरुद्ध निर्णय करनेकी संभावना बहुत कम थी। मानहानिका दावा दायर करने लायक तथ्य प्रका-शित करनेमें कौमको भारी झमेलेमें पडना पड़ता और इसका नतीजा इतना ही होता कि हमें अपनी शिकायतें साबित कर देनेका संतोष मिल जाता। वकीलकी हैसियतसे मैं जानता था कि मानहानिवाली बातोंको साबित करनेमें कैसी कठिनाइयां होती हैं; पर मेरी सबसे वजनदार दलील तो यह थी कि सत्याग्रहीको कष्ट सहन करना था। सत्याग्रह आरंभ करनेके पहले सत्याग्रही जानते थे कि हमें मरणान्त कष्ट सहना होगा और उसे सहनेको वे तैयार भी थे। ऐसी दशामें यह साबित करनेमें कोई विशेषता नहीं थी कि हमें कष्ट सहने पडे। बदला लेनेकी वृत्ति तो सत्याग्रहीमें होनी ही नहीं चाहिए। इसलिए जहां अपने कष्ट साबित करनेमें असाधारण कठि-नाइयां सामने आ जायें वहां शांत रहे, यही सही रास्ता माना जायगा। सत्याग्रहीको तो मूलवस्तुके लिए ही लडना होता है। मूलवस्तु तो थी उक्त कानून। जब उनके रद कर दिए जाने या उनमें यथोचित सुधार हो जानेकी पूरी संभवना हो तो वह दूसरे झंझटोंमें क्यों पड़ेगा? दूसरे सत्याग्रहीका मौन

अन्यायकारी कानूनोंके विरुद्ध उसकी लडाईमें समझौता होते समय तो सहायक ही होगा। इस तरहकी दलीलोंसे विरोधी पक्षके बडे भागको मैं समझा सका और अंतमें हमने कष्टों-की शिकायतें बाकायदा साबित करनेका विचार त्याग दिया।

: २५ :

पत्र-व्यवहार

प्राथमिक समझौतेके लिए जनरल स्मट्सके और मेरे बीच पत्रव्यवहार हुआ। मेरे पत्रका आशय यह था:

"अपनी प्रतिज्ञाके कारण हम आपके सूचनानुसार कमी-शनके काममे मदद नहीं कर सकते। इस प्रतिज्ञाको आप समझ सकते है और उसकी कद्र भी करते हैं; पर आपने हिंदुस्तानी कौमके साथ मशविरा करनेका सिद्धांत स्वीकार कर लिया है। इसलिए मैं अपने देशवासियोंको यह सलाह दे सकता हू कि कमीशनके सामने शहादतें पेश करना छोडकर दूसरी तरहसे उसकी सहायता करें और कम-से-कम उसके काममें रुकावट तो नही ही डालें। इसके सिवा जबतक कमीशनका काम चलता रहे और नया कानून नही बने तबतक सरकारकी स्थिति कठिन न हो जाय इस खयालसे सत्याग्रह मुलतवी रखनेकी सलाह भी मैं उन्हें दे सकता हूं। सर बेंजामिन राबर्टसनकी, जिन्हें वाइसरायने यहां भेजा है, सहायता करनेकी सलाह भी मैं अपने देशवासियोंको दूंगा। जेलमें और हडतालके दौरानमें हमारे ऊपर जो जुल्म-ज्याद-तियां हुई उनके बारेमें मुझे कहना होगा कि अपनी प्रतिज्ञाके कारण हम इन शिकायतोंको साबित भी नही कर सकते। सत्याग्रहीकी हैसियतसे हमसे जहातक हो सकता है, अपने

कष्टोकी शिकायत नही करते और न उनका मुआवजा मांगते हैं। पर इस समयके हमारे मौनका अर्थ यह न किया जाय कि हमारे पास साबित करनेका कोई मसाला तो है ही नहीं। मैं चाहता हूं कि आप मेरी स्थिति समझ सके। इसके अतिरिक्त चूकि हम सत्याग्रह मुलतवी रख रहे है इसलिए लडाईके सिलसिलेमें जो लोग इस वक्त जेलमे है उन्हें रिहाई मिलनी ही चाहिए।

हमारी मांग क्या है, यह भी यहां जता देना आवश्यक जान पड़ता है :

१. तीन पौंडका कर उठा दिया जाय।

२. विवाह हिंदू-धर्म, इस्लाम इत्यादिकी रीतिसे हुआ हो तो जायज माना जाय।

३. पढे-लिखे भारतीय इस देशमे दाखिल हो सकें।

४. ऑरेंजिया (आरेंज फ्री स्टेट)के बारेमें जो कौल-करार हुआ है उसमें सुधार किया जाय।

५. यह आश्वासन दिया जाय कि मौजूदा कानूनोंका व्यवहार इस तरह किया जायगा कि जो हक आज भोगे जा रहे हैं उनको नुकसान न पहुंचे।

इन बातोके विषयमें आपसे संतोषजनक उत्तर मिले तो मैं कौमको सत्याग्रह मुलतवी रखनेकी सलाह दू।"

यह पत्र मैंने १९१४की २१वी जनवरीको लिखा। उसी दिन उसका जो जवाब मिला उसका आशय यह था .

"आप कमीशनके सामने इजहार नही दे सकते इसका सरकारको खेद है, पर वह आपकी स्थिति समझ सकती है। आप जो कष्टोंकी बात न उठानेका विचार प्रकट कर रहे है उसको भी सरकार समझती है। इन कष्टोंसे सरकार तो इन्कार ही करती है; पर जब आप उसका सबूत नही पेश कर रहे है तो सरकारको इस विषयमें कुछ करना नही रह जाता। सत्याग्रही कैदियोंकी रिहाईके बारेमें तो सरकार आपका पत्र मिलनेसे

पहले ही हुक्म दे चुकी है । हिंदुस्तानी कौमके कष्ट जो आपने गिनाये हैं उनके बारेमें सरकार कमीशनकी रिपोर्ट मिलनेतक कोई कदम नही उठायेगी ।"

यह पत्रव्यवहार होनेसे पहले हम दोनों—मैं और मि० एंड्रूज—अनेक बार जनरल स्मट्ससे मिल चुके थे, पर इस बीच सर बेंजामिन राबर्टसन भी प्रिटोरिया पहुंच गये थे । सर बेंजामिन यद्यपि लोकप्रिय अधिकारी माने जाते थे, गोखलेकी सिफारिशी चिट्ठी भी अपने साथ लाये थे, फिर भी मैंने देखा कि आम अंग्रेज अफसरोकी कमजोरियोसे वह सर्वथा मुक्त नही थे । पहुंचनेके साथ ही उन्होंने कौममें फूट डालना और सत्याग्रहियो-को डरवाना शुरू कर दिया । प्रिटोरियामें हुई मेरी पहली मुलाकातमे उनकी अच्छी छाप नही पड़ी । डरानेके बारेमे मुझे जो तार मिले थे उनका जिक्र भी मैंने उनसे कर दिया । मुझे तो सबके साथ एक ही रीतिसे यानी सफाई और सचाईका व्यवहार करना था । अत हम मित्र हो गये; पर मैंने अनेक बार देखा है कि डरनेवालेको तो अधिकारी डराते हैं और सीधे तथा न डरनेवालेके साथ वह सीधे रहते हैं ।

इस प्रकार प्राथमिक-अस्थायी समझौता हुआ और सत्या-ग्रह आखिरी बार सदाके लिए मुलतवी किया गया । बहुतेरे अंग्रेज मित्रोको प्रसन्नता हुई और उन्होंने अंतिम समझौतेमें मदद करनेका मुझे भरोसा भी दिलाया । कौमसे इस समझौते-को मंजूर करा लेना जरा टेढी खीर थी । जगा हुआ जोश ठंडा पड जाय, यह किसीको भी रुचनेवाली बात नही थी । फिर जन-रल स्मट्सका विश्वास कोई क्यो करने लगा ? कुछ भाइयोने १९०८के समझौतेकी याद दिलाई और कहा—"एक बार जनरल स्मट्सने कौमको धोखा दिया, अनेक बार आपपर अपनी मागोमें नई बाते शामिल कर लेनेका दोष लगाया, कौमपर भारी मुसीबतें गुजारी, फिर भी आपने नही समझा,

यह कैसे दुःखकी बात है ? यह आदमी फिर धोखा देगा और आप फिर सत्याग्रह करनेकी बात कहेंगे। उस वक्त कौन आपका विश्वास करेगा ? लोग बार-बार जेल जायें और बार-बार धोखा खायें, यह कैसे हो सकता है ? जनरल स्मट्स-जैसे आदमी-के साथ तो एक ही समझौता हो सकता है जो मांगना वह ले लेना। उनसे वचन नहीं लेने चाहिए। जो वादा करके मुकर जाय उसे उधार कोई कैसे दे सकता है ?"

मै जानता ही था कि इस तरहकी दलीलें कितनी ही जगह पेश की जायेंगी इससे मुझे अचरज नहीं हुआ। सत्या-ग्रही कितनी ही बार धोखा क्यों न खाये जबतक वचनपर विश्वास न करनेका स्पष्ट कारण नहीं हो तबतक विपक्षीके वचनका विश्वास करेगा ही। जिसने दु.खको सुख मान लिया हो वह जहां अविश्वास करनेका कारण न हो वहां केवल दुःखके नामसे डरकर अविश्वास नहीं करेगा, बल्कि अपनी शक्तिपर भरोसा रखकर विपक्षके विश्वासघातकी ओरसे निश्चित रहकर कितनी ही बार विश्वासघात क्यों न किया जाय फिर भी विश्वास करता ही जायगा और यह मानेगा कि ऐसा करनेसे सत्यका बल बढ़ेगा और विजय निकट आयेगी। अत जगह-जगह सभाएं करके मै अंतमें लोगोंको समझौता स्वीकार करानेके लिए समझा सका और वे भी सत्याग्रहका रहस्य अब अधिक समझने लगे। इस वक्तके समझौतेमें मि० एंड्रूज मध्यस्थ और साक्षी थे। वैसे ही वाइसरायके राजदूतके रूपमें सर बेंजामिन रावर्टसन भी थे। इसलिए इस समझौतेके मिथ्या होनेका डर कम-से-कम था। मैने हठकरके समझौता करनेसे इन्कार कर दिया होता तो यह उलटा कौमका दोष समझा जाता और जो विजय छ महीने बाद हमें मिली उसकी प्राप्तिमे अनेक प्रकारके विघ्न आते। सत्याग्रही किसी भी कालमें इसका कारण नहीं प्रस्तुत करता कि कोई उसकी ओर उगलीतक

उठा सके । 'क्षमा वीरस्य भूषणम्' वाक्य ऐसे ही अनुभवके आधारपर लिखा गया है। सत्याग्रहमें निर्भयता रहनी ही चाहिए। फिर निर्भयको भय क्या ? और जहां विरोधीका विरोध जीतना है, उसका नाश नही करना है, वहां अविश्वास कैसा ?

इस तरह कौमके समझौता स्वीकार कर लेनेके बाद हमें महज यूनियन पार्लामेंटके बैठनेकी राहभर देखनी बाकी रही। इस बीच पूर्वोक्त कमीशनका काम जारी था। हिंदुस्तानियोंकी ओरसे बहुत ही कम गवाह उसके सामने गये। उस वक्त कौमपर सत्याग्रहियोंका कितना ज्यादा असर था इसका अकाट्य प्रमाण इससे मिल गया। सर बेंजामिन रावर्टसनने भी हिंदुस्तानियोको गवाही देनेके लिए समझाया; पर लडाईके कट्टर विरोधी थोडेसे भारतीयोके सिवा और सब लोग अविचल रहे। इस बहिष्कारका असर तनिक भी बुरा नही हुआ। कमीशनका काम मुख्तसर हो गया और रिपोर्ट झटपट प्रकाशित हो गई। रिपोर्टमें कमीशनके सदस्योंने भारतीय जनताके कमीशनके काममें सहायता न करनेकी अवश्य कड़ी आलोचना की थी। सैनिकोंके दुर्व्यवहारके आरोपको उड़ा दिया, पर कौमको जो-जो चीज चाहिए थी उस सबको देनेकी सिफारिश कमीशनने की। यानी उसने तीन पौंडका कर उठा देने, ब्याहके विषयमें हिंदुस्तानियोंकी मांग मंजूर करने और दूसरी अनेक छोटी-मोटी रियायते देने और सारा काम बिना ढिलाई किये करनेकी सिफारिश की। इस तरह कमीशनकी रिपोर्ट जैसा कि जनरल स्मटसने कहा भारतीयोंके अनुकूल निकली। मि० एंड्रूजने विलायत जानेके लिए विदा ली। सर बेंजामिन रावर्टसन भी रवाना हो गये। हमें यह आश्वासन दिया गया था कि कमीशनकी रिपोर्टके अनुसार कानून बनाया जायगा। यह कानून क्या था, इसपर अगले प्रकरणमें विचार करूंगा।

: २६ :

युद्धका अंत

कमीशनकी रिपोर्ट निकलनेके थोड़े ही दिन बाद जिस कानूनके जरिये समझौता होनेवाला था उसका मसविदा यूनियन गजटमें प्रकाशित हुआ। इस मसविदेके प्रकाशित होते ही मुझे केप टाउन जाना पड़ा। यूनियनकी विधान-सभा (यूनियन पार्लमेंट) की बैठकें वहीं हो रही थीं, अब भी वहीं होती हैं। इस बिलमें ९ धाराएं हैं और पूरा बिल 'नवजीवन'के दो कालमोंमें आजायगा। उसका एक भाग भारतीयोंके बीच हुए ब्याहके विषयमें है, जिसका आशय यह है कि जो ब्याह हिंदुस्तानमें वैध माना जाता है वह दक्षिण अफ्रीकामें भी जायज समझा जायगा; पर एक ही वक्तमें किसीके एकसे अधिक पत्नियां हों तो उनमेंसे एक ही दक्षिण अफ्रीकामें कानूनन जायज पत्नी मानी जायगी। दूसरे भागके द्वारा उस तीन पौंडके करको रद करना है जो हरएक गिरमिटिएको, अगर वह स्वतंत्र भारतीयके रूपमें दक्षिण अफ्रीकामें रहना चाहता हो तो हर साल देना पड़ता था। तीसरे भागमें जिन लोगोंको दक्षिण अफ्रीकामें रहनेके प्रमाणपत्र मिले हुए थे उन प्रमाण-पत्रोंका महत्व बताया गया है। यानी यह बताया गया है कि जिसके पास यह प्रमाणपत्र हो उसका दक्षिण अफ्रीकामें रहनेका हक किस दरजेतक साबित होता है। इस बिलपर यूनियन पार्लमेंटमें खासी और मीठी बहस हुई।

दूसरी बातोंका, जिनके लिए कानूनकी जरूरत नहीं थी, स्पष्टीकरण जनरल स्मट्सके और मेरे बीच हुए पत्रव्यवहारमें किया गया। उसमें इन विषयोंका खुलासा किया गया था। पढ़े-लिखे भारतीयोंके केप कालोनीमें प्रवेशके अधिकारकी रक्षा,

जिन्हे दक्षिण अफ्रीकामे दाखिल होनेकी खास परवानगी प्राप्त थी उनका अधिकार, जो हिंदुस्तानी १९१४के पहले दक्षिण अफ्रीकामें दाखिल हो चुके हों उनकी हैसियतें और जिन्होंने एकाधिक स्त्रियोंसे व्याह कर लिया हो उन्हे कृपारूपमें अपनी दूसरी पत्नीको भी लाने देना। जनरल स्मट्सके पत्रमें इस आशयका वाक्य भी है :

"प्रचलित कानूनोंके बारेमे यूनियन सरकारकी सदा यह इच्छा रही है और आज भी है कि उनपर न्यायपूर्वक और जो अधिकार आज भोगे जा रहे हैं उनकी रक्षा करते हुए ही अमल किया जाय।" यह पत्र ३० जून १९१४ को लिखा गया था। उसके जवाबमें उसी दिन मैंने जनरल स्मट्सको जो पत्र लिखा उसका आशय यह है

"आपका आजकी तारीखका पत्र मुझे मिला। आपने धीरज और सौजन्यके साथ मेरी बातें सुन ली इसके लिए अहसानमद हूं।

हिंदुस्तानियोंको राहत देनेवाले कानून (इंडियन रिलीफ बिल्स) के पास हो जाने और हमारे बीच हुए पत्रव्यवहारसे सत्याग्रह-संग्रामकी समाप्ति हो रही है। यह लड़ाई १९०९ ई० के सितंबर महीनेमें शुरू हुई। हिंदुस्तानी कौमको इसमे बहुत कष्ट और पैसेका नुकसान उठाना पड़ा। सरकारको भी चिंताग्रस्त रहना पड़ा।

"आप जानते हैं कि मेरे कुछ भाइयोकी मांग बहुत ज्यादा थी। अलग-अलग प्रांतोंमे व्यापारके परवानेके कानूनोंमे जैसे ट्रांसवालका 'गोल्ड लॉ', ट्रांसवाल टाउन शिप्स ऐक्ट और १८८५का ट्रांसवालका नं० ३ कानून, इनमें कुछ भी अदल-बदल नही हुआ, जिससे भारतीयोंको निवास, व्यापार और जमीनकी मालिकीका पूरा-पूरा हक मिले। इससे उनको असंतोष हुआ है। कुछ लोगोंको तो इस कारण असंतोष है कि एकमे

दूसरे सूबेमें जानेकी पूरी आजादी नहीं दी गई। कुछ लोगोंको इस बातसे असंतोष है कि हिंदुस्तानियोंको राहत देनेवाले कानून-में विवाहके प्रश्नके विषयमें जितना किया गया है उससे अधिक होना चाहिए था। उनकी मुझसे यह मांग है कि ये सभी बातें सत्याग्रहकी लड़ाईमें शामिल कर ली जायं। पर मैंने उनकी माग मंजूर नहीं की। अतः यद्यपि ये बातें सत्याग्रहके विषयके रूपमें शामिल नहीं की गईं तो भी इस बातसे तो हर्गिज इन्कार नहीं किया जा सकता कि किसी दिन सरकारको इन प्रश्नोंपर और विचार करके राहत देना मुनासिब होगा। जबतक यहां बसनेवाली हिंदुस्तानी कौमको नागरिकके पूरे-पूरे हक नहीं दे दिये जायं तबतक पूरे संतोषकी आशा नहीं रखी जा सकती।

"अपने भाइयोंसे मैंने कहा है कि आप लोगोंको धीरज रखना है और हरएक योग्य साधनके द्वारा लोकमतको ऐसा बनाना है जिससे इस पत्रव्यवहारमें दरसायी हुई शर्तोंसे भी भविष्यकी सरकार आगे जा सके। मैं आशा रखता हूं कि दक्षिण अफ्रीकाके गोरे जब यह समझेंगे कि हिंदुस्तानसे गिरमिटिए मजदूरोंका आना अब बंद हो चुका है और दक्षिण अफ्रीकामें नये आनेवालोंसे संबंध रखनेवाले कानून (इमिग्रेशन रेगुलेशन ऐक्ट) से स्वतंत्र भारतीयोंका इस देशमें आना भी लगभग बंद हो गया है और यह भी समझेंगे कि भारतीयोंकी महत्वाकांक्षा यहांके राजकाजमें कोई अधिकार स्थापित करनेकी नहीं है तब वे देखेंगे कि मैंने जो बताये हैं वे हक हिंदुस्तानियोंको मिलने ही चाहिए और उसीमें न्याय भी है। इस बीच इस मसलेको हल करनेमें पिछले कुछ महीनोंसे सरकारने जो उदार नीति ग्रहण कर रखी है वही उदार नीति, जैसा कि आपके पत्रमें बताया गया है, वर्तमान कानूनोंपर अमल करनेमें बरती गई तो मेरा विश्वास है कि संपूर्ण यूनियनमें

हिंदुस्तानी कौम कुछ शांति भोगते हुए रह सकेगी और सरकारके लिए हैरानीका कारण नहीं होगा।

उपसंहार

इस प्रकार आठ बरसके बाद सत्याग्रहका यह महान संग्राम समाप्त हुआ और ऐसा जान पड़ा कि सारे दक्षिण अफ्रीकामें बसनेवाले भारतीयोंको शांति मिली। मै खेद और हर्ष दोनोंके साथ इंगलैण्डमे गोखलेसे मिलकर हिंदुस्तान जानेके लिए दक्षिण अफ्रीकासे रवाना हुआ। जिस देशमें मै पूरे २१ बरस रहा, अगणित कड़वे-मीठे अनुभव प्राप्त किये, जिस देशमें मैं अपने जीवनके कार्य, उद्देश्यके दर्शन कर सका उस देशको छोड़नेमें मुझे बहुत दु:ख हुआ और मैं खिन्न हुआ। हर्ष यह सोचकर हुआ कि इतने बरसोंके बाद हिंदुस्तान वापस जाकर मुझे गोखलेकी मातहती और रहनुमाईमें सेवा करनेका सौभाग्य प्राप्त होगा।

इस युद्धका जो ऐसा सुंदर अंत हुआ उसके साथ दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंकी आजकी स्थितिकी तुलना करते हुए क्षणभरके लिए दिलमें यह सवाल उठता है कि भारतीयोंने इतने सारे दु:ख किस लिए उठाये ? अथवा सत्याग्रहके शस्त्रकी श्रेष्ठता ही कहां सिद्ध हुई ? इसके उत्तरपर यहां विचार कर लेना चाहिए। सृष्टिका एक नियम है कि जो वस्तु जिस साधनसे मिलती है उसकी रक्षा उस साधनसे ही होती है। अर्थात् दंडसे मिली हुई वस्तुकी रक्षा दंड ही कर सकता है, सत्यसे प्राप्त वस्तुका संग्रह सत्यके द्वारा ही हो सकता है। इसलिए दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय आज भी सत्याग्रहके हथियारसे काम ले सकें तो अपने आपको सुरक्षित बना सकते हैं। सत्या-

ग्रहमे ऐसी विशेषता तो है ही नही कि सत्यसे मिली हुई वस्तु सत्यका त्याग कर देनेपर भी बनाये रखी जा सके। ऐसा परिणाम हो सकता हो तो वह इष्ट भी नही समझा जायगा। अत: अगर दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंकी स्थिति आज दुर्बल है तो हमे समझ लेना चाहिए कि इसका कारण सत्याग्रहियोंका अभाव है। यह कथन दक्षिण अफ्रीकाके आजके भारतीयोंके दोषका सूचक नही है, बल्कि वहाकी वस्तुस्थिति बताता है। व्यक्ति या समुदाय, जो चीज अपने आपमे नही है, वह कहासे लायेगा ? सत्याग्रही सेवक एकके बाद एक इस दुनियासे कूच कर गये। सोराबजी काछलिया, नायडू, पारसी रुस्तमजी, इत्यादिके स्वर्गवाससे सत्याग्रहके अनुभवियोमेसे थोडे ही बच रहे है। जो रह गये है वे आज भी जूझ रहे है।

अंतमें इन प्रकरणोंको पढ जानेवाले इतना तो समझ ही गये होगे कि अगर यह संग्राम नही किया होता और बहुतेरे भारतीयोने जो कष्ट सहे वे न सहे गये होते तो आज दक्षिण अफ्रीकामें हिंदुस्तानियोंके कदम ही न रह गये होते। इतना ही नही, दक्षिण अफ्रीकामें भारतीयोंकी विजयसे दूसरे ब्रिटिश उपनिवेशोंके हिंदुस्तानी भी कमोबेश बच गये। कुछ न बच सके तो यह दोष सत्याग्रहका नही है, बल्कि इससे साबित हो गया कि उन उपनिवेशोंमें सत्याग्रहका अभाव है और हिंदुस्तानमें उनकी रक्षा करनेकी शक्ति ही नहीं है। सत्याग्रह अमूल्य शस्त्र है, उसमे नैराश्य या हारके लिए अवकाश नही, यह बात अगर इस इतिहासमें थोडे-बहुत अशमें भी सिद्ध हो सकी हो तो मै अपने आपको कृतार्थ समझूगा।

समाप्त